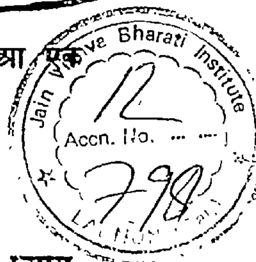
विधवा-विवाह मीमांसा



निष्पक्ष भाव से लिखा हुआ एक
उपयोगी ग्रन्थ



क—

श्री० गङ्गाप्रसाद जी ध्याय,
एम० ए०

'चाँद' र्यालय, चन्द्रलोक,
इलाहाबाद

(नवीन संशोधित संस्करण)

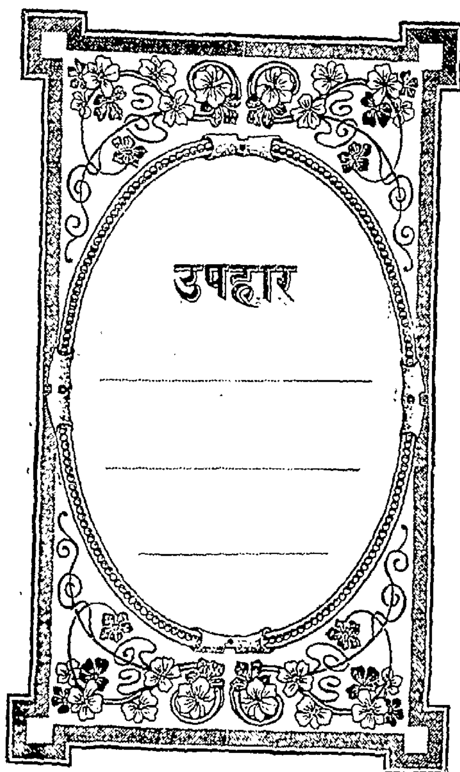
जून, १९३०

तीसरी बार, २०००] [मूल्य ३) रु०

THIRD EDITION
Two Thousand Copies

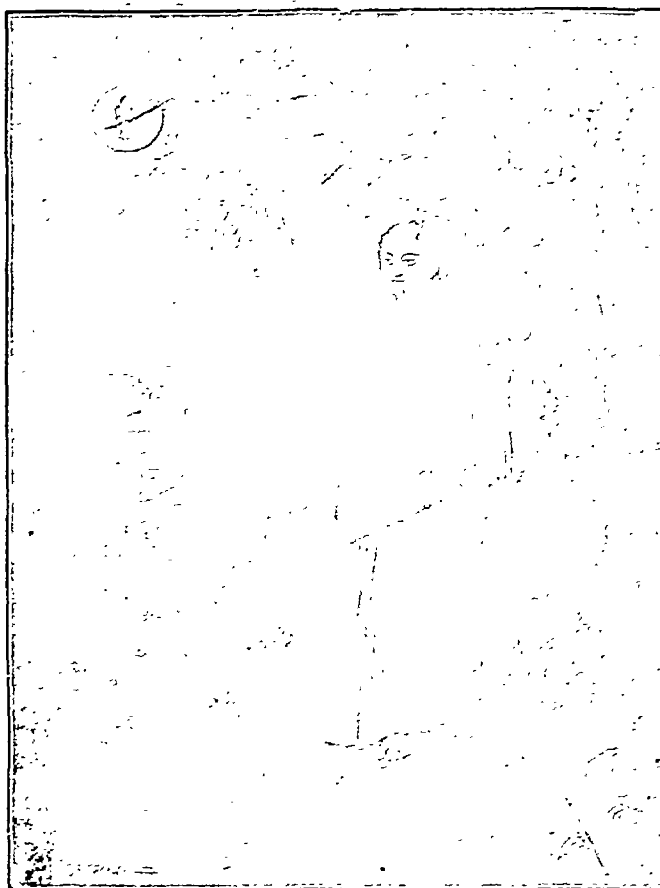
Printed and Published
by
SHUKDEVA ROY
at
The Fine Art Printing Cottage
Chandralok
28, Edmonstone Road
Allahabad

June
1930


उपहार

गोद में ईसाइयत इस्लाम की
बेटियाँ बहुएँ लिटा कर हम लटे !
आह घाटे पर हमें घाटा हुआ
मान वेदों का घटा कर हम घटे !!

—अयोध्यासिंह उपाध्याय, 'हरिऔध'



अभागिनी विधवा

कामिनी यह अस्वामिनी होकर, मारती चित्त मार कर धाड़ें !
मस्म सारा समाज हो जावे, चित्त से आह ! आह जो काढ़ें !!



विधवा का हृदय

[ले० श्री० "विक्रम"]

(१)

बहो न मेरे तन को छूकर, हे सौरभ से भरे समीर ।
हा ! दूषित कर देंगे मुझको, मधुर मयन के कोमल तीर ॥
भरो न मुझमें हे बसन्त तुम, सुन्दरता का मधुर विकास ।
मँडराएँगे रसिक भ्रमर नाहक़ मुझ हतभागिनि के पास ॥

(२)

कहाँ भूल कर आए हो तुम, मेरे प्यारे मनोविनोद ?
चिर विषाद ने अब तो भर ली, आजीवन को मेरी गोद ॥
सखि आशे ! अब इस जीवन में किसको देती हो सन्तोष ?
भरा हुआ है विपुल निराशा से मेरे मानस का कोष ॥

(३)

है अनन्त मेरे वियोग के अखिल मरुस्थल का विस्तार ।
रच [illegible] है विधि ने मेरे हित असीम दुख का [illegible]र ॥
है अगाध मेरी विपदा का भरा हुआ यह पारावार ।
जिसमें किञ्चित् अस्फुट स्मृति का है केवल मुझको आधार ॥

(४)

अतुल निराशा मेरा धन है, नीरवता मेरा व्यापार।
विरह-व्यथा निशि-दिन पीती हूँ, चिर-चिन्ता मेरा आहार॥
तन मेरा प्रज्वलित चिता है, जीवन मेरा घोर मसान।
ज्वालामुखी हृदय है मेरा, मानस मेरा वन ु सान॥

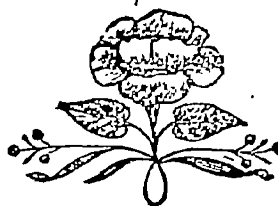
(५)

मैं वह जीवन की सरिता हूँ, सूख गया, जि का सुख-नीर।
मैं वह नीरव व्याकुलता हूँ, हुई निराशा में जो धीर॥
मैं वह निर्जल मा -सर हूँ, जिसमें अब उड़ती है धूल।
मैं वह शुष्क लता हूँ वन की, जिसमें अब न खिलेंगे फूल॥

(६)

मैं वह करुणामय गाथा हूँ, सुन जिसको पिघले पाषाण।
मैं वह विधि के हाथ सताई, जिसका यम के कर कल्याण॥
मैं वह जीवनधारी शव हूँ, जिसका जीना मरण-समान।
मैं वह हतभागिनि विधवा हूँ, जि का यह करुणामय गान!!

—'चाँद'



दो शब्द



इस पुस्तक को प्रकाशित करते हमें भय था कि इस ग्रन्थ का विशेष आदर हिन्दी-संसार में न होगा; पर हमारा यह भय सर्वथा मिथ्या सिद्ध हुआ। केवल ९ मास के भीतर पहला संर समाप्त हो गया। दूसरा रण प्रकाशित हुआ और वह भी हाथोंहाथ बिक गया। पुस्तक की इस प्रकार बढ़ती हुई माँग को देख कर, हमें शघ्रि ही तीसरा संस्करण निकालना पड़ा। हमें पुस्तकें इतनी जल्द निकल जाने का उतना हर्ष नहीं हुआ, वि ा यह देख कर कि भा सियों का ध्यान अन्त में हमारी अभागी विधवा बहिनों की ओर बहुत तेज़ी से आकर्षित हो रहा है।

सभी यिक पत्र-पत्रिकाओं ने भी पुस्तक की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। विधवा-विवाह के विरोधियों ने भी इस क को मँगा कर बड़े चाव से पढ़ा है। जहाँ तक हमें स्मरण है, ऐसे भाइयों तक ने पुस्तक के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा, बल्कि उन्हें भी पुस्तक में दी गई दलीलों और प्रमाणों को स्वीकार पड़ा है। क्या यह अतिशयोक्ति होगी, यदि हम यह समझें कि प्रस्तुत पुस्तक ने ही बहुत से विधवा-वि के विपक्षियों को पक्षपाती बना दिया है? हर ज में पुस्तक का -

रूप से आदर हुआ है, . " सन्देह नहीं। हमें वा में खेद है कि इतनी अधिक माँग होते हुए भी आज से पहले हम इसे प्रकाशित न कर सके और सैकड़ों पाठकों को निराश तक हो जाना पड़ा। इधर और भी माँग बढ़ जाने के कारण अन्य कई महत्त्वपूर्ण नए-नए ग्रन्थों के प्रकाशन को रोक कर, पहले हम इसी पुस्तक का नवीन संस्करण प्रकाशित कर रही हैं।

यदि इस पुस्तक द्वारा हमारे समाज का कुछ भी भला हो सका अथवा समाज की कुछ भी सहानुभूति हमारी विधवा बहिनों के पक्ष में हो सकी, तो निश्चय ही हम इसे अपना, समाज का तथा विधवा बहिनों का सौभाग्य समझेंगी तथा अन्य सामाजिक पुस्तकों को प्रकाशित करने का प्रयत्न करेंगी। हमारी सेवा को सफल करने का भार सर्वथा हमारे देशवासियों के सहयोग और सहानुभूति पर निर्भर है।

—विद्यावती सहगल



प्रस्तावना



स महत्वपूर्ण पुस्तक की प्रस्तावना लिखना मेरी शक्ति के सर्वथा बाहर की बात है, किन्तु किया क्या जावे, मजबूरी है। विधवाओं के प्रसङ्ग को आम तौर से लोग छूत की बीमारी ते हैं। विधवाओं के विषय में ीत करने वाले "आर्य" समझे जाते हैं। कई पुश्त से ग़ुलामी की कठोर ज़ञ्जीरों से जकड़े रहने के आत्मिक बल का क्रमशः घटते जाना उतना ही स्वाभाविक है, जितना जीवन के बाद मृत्यु।

साधारण जनता की बात तो दूर रही, स्वयं बड़े-बड़े नेतागण इस विषय से उदासीनता प्रकट करते हैं। कई पुश्त से अन्धपरम्परा के चक्कर में पड़े रहने के कारण हमारी आत्मा का इतना अधिक ह्रास हो चुका है और गन्दी सोसाइटियों में पलते रहने के हममें इतनी अधिक मात्रा में दुर्बलताएँ समा गई हैं कि आज अधिकांश जनता में, यह जानते हुए भी कि अमुक कार्य उचित है, इतना भी नैतिक बल शेष नहीं रह गया है कि वह इस घोर अन्याय का विरोध कर सकें! वे जानते हैं सामाजिक सङ्गठन का प्रश्न राष्ट्रोन्नति का एक अङ्ग है। वे यह भी जानते हैं कि विधवाओं के सुधार का प्रश्न सारे राष्ट्र का प्रश्न है, विधवाओं का जीवन पहले

की अपेक्षा कहीं कष्टपूर्ण हो रहा है। यह सब बातें बहुत लोग समझने लगे हैं। वे विधवा-विवाह और ख़ास कर विधवाओं का विवाह तो अवश्य ही हो जाने के पक्ष में हैं; किन्तु सवाल यह है कि करे कौन? "Who should bell the cat?" पुरुषों को समाज का भय, नेताओं को अपने नेतृत्व मारे जाने का भय और स्त्रियों को नाक कट जाने का भय—केवल यही तीन ऐसी हैं, जिनके द्वारा समाज-सुधार का कोई भी नहीं हो रहा है। अतएव पहले हमें स्थितिपालकता के रोग से मुक्त होना चाहिए। जब तक हममें यह रोग घुसा रहेगा, हम देशोन्नति का कोई भी कार्य नहीं कर सकते, न लिक और न राजनीतिक।

हिन्दू-समाज की स्थितिपालकता के विषय में मैं अपने ीं शब्दों को दोहराना हूँ, जो मैं "चाँद" के विधवा- में सविस्तार रूप से कह चुका हूँ।

किसी विचार पर या किसी रस्म पर अन्धवि ा, ी असत्यता और दुष्परिणामों से आँखें बन्द कर लेना ही स्थिति-पा है। स्थिति ा हठता की भी द्योतक हो सकती है तथा वृद्धि और साहस के की भी। स्थितिपा से जीवन भी ज़ाहिर होता है और मृत्यु भी।

अङ्गरेज़ी क़ौम यूरोपियन जातियों से अधिक स्थिति क कही जाती है, किन्तु इनकी स्थितिपालकता और भारतवर्ष की स्थितिपालकता में ज़मीन और अ ान का फ़र्क़ है। फ़्रान्सीसियों ने राष्ट्रीयता, स्वतन्त्रता और आदि राजनीतिक र्श से

प्रेरित होकर अपने देश की राजनीतिक संस्थाओं को -
दिया, प्राचीन राजनीतिक मर्यादा का कर दिया, राजा का और राजसत्ता का नामोनिशान मिटा दिया; किन्तु अङ्गरेज़ी क़ौम स्थिति थी, उसने इस का कोई भी नहीं किया। अपनी राजनीतिक ओं को ज्यों का त्यों , किन्तु , आदि सिद्धान्तों से उन्होंने फ़ान्सीसियों से कम फ़ायदा नहीं । उनका राजा और राज-सत्ता अब भी है, किन्तु उन्हें हम फ़ान्सीसियों से राजनीतिक दृष्टि से कम नहीं कह सकते। प्रजावाद (Democracy) के सिद्धान्त का इङ्गलैण्ड में फ़ान्स से कम नहीं होता। इङ्गलैण्ड की फ़ान्स की जनता से, राजनीतिक दृष्टि से, कम र नहीं कही जा सकती।

इङ्गलैण्ड में स्थितिपा है, किन्तु बुद्धि और की कमी नहीं है। जिस विचार की सत्यता या जिन सिद्धान्तों की और हितैपिता का अङ्गरेज़ों को वि हो है, उसके स्वीकार करने के लिए और जिन विचारों की असत्यता और जिन सिद्धान्तों के दुष्परिणामों का उन्हें ज्ञान हो , है उन्हें त्यागने के लिए उनमें काफ़ी साहस है। यह दूसरी बात है कि किसी दुष्परिणामकारिणी प्रथा को वह बाहरी रूप से रक्खें। किन्तु उस प्रथा के अहित-कर्ता का वे मेव कर देंगे। सर्प को चाहे वे न मारें, किन्तु उसके दाँत ज़रूर तोड़ देंगे। अङ्गरेज़ों के कार्यक्षेत्र में उनकी इस बुद्धि और साहसयुक्त स्थितिपालकता का देख सकते हैं।

भारतवर्ष में जो स्थितिपालकता है, वह इससे बिल्कुल भिन्न है। दो-तीन हज़ार वर्षों से अभाग्यवश हिन्दू-जाति में कुछ ऐसी स्थिरता आ गई है कि इसने सामाजिक क्षेत्र में, नैतिक क्षेत्र में, साहित्यिक क्षेत्र में, वैज्ञानिक क्षेत्र में—किसी भी क्षेत्र में उन्नति कौन कहे, कान पर जूँ तक नहीं रेंगने दिया है। आज से दो हज़ार वर्ष पहले, जब कि भारतीय ब्रह्म और जीव, प्रकृति और पुरुष के अध्यात्म प्रश्नों को हल करने में लगे हुए थे, पश्चिमी देशों के निवासी वृक्षों के कोटरों में रहते थे और चर्म का बदबूदार वस्त्र पहनते थे। आज पश्चिमी देश-निवासी वायुयान द्वारा आकाश की सैर करते हैं, वरुण देवता के समान जलमग्न नौकाओं में बैठ कर समुद्र-तल पर राज्य करते हैं और हम ज्यों के त्यों बने हैं। अपने इतिहास पर नज़र करते हुए शरम मालूम होती है। जो ज़माना कि औरों की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करने का था, हमारे और अन्धकार में प्रवेश करने का रहा है। जिस समय पश्चिमीय देश-वासी अपनी बुद्धि, साहस और वीरता के कौशल से अपने समाज की निर्बलताएँ दूर करके अपने को दृढ़ बना रहे थे, हम बच्चों को गङ्गा में डाल कर गङ्गा माई को खुश करते थे और विधवाओं को मृत पति के साथ ज़िन्दा जला कर विधवा-समस्या के हल कर सकने की अपनी अनुपम बुद्धिमत्ता और दयालुता का परिचय देते थे! भारत की स्थितिपालकता और इङ्गलैण्ड तथा अन्य देशों की स्थितिपालकता में इसलिए बड़ा अन्तर है। हमारी स्थितिपालकता के जन्मदाता हमारी साहसशून्यता, व्यक्तिगत स्वार्थपरायणता और बुद्धिहीनता है। हमारी स्थितिपालकता, हमारे निशक्ति और

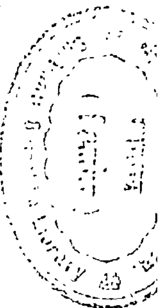
निस्तेज होने का परि है। हमारे समाज में इतनी बुद्धि नहीं कि वह यह समझ सके कि कौन सी बात हमें नुक़सान पहुँचाती है और कौन सी नहीं। अगर किसी अङ्ग ने यह अनुभव भी किया कि हानि होती है तो साहस की इतनी कमी है कि वह उसके मिटाने की हिम्मत नहीं करता। हिन्दू-समाज के अधिकांश व्यक्ति विधवाओं की यातनापूर्ण स्थिति के समझ सकने के बुद्धि ही नहीं रखते। जिन्हें बुद्धि है, उनके मर्यादित अन्धविश्वास ने दयालुता की इतनी कमी पैदा कर दी है कि वह उनकी यातनाओं का अनुभव नहीं करते। जिनमें दया और बुद्धि दोनों हैं, जो समझते हैं कि विधवाओं के कारण समाज कमज़ोर होता जाता है और वर्तमान रस्म व रिवाज उन पर अत्याचार करते हैं, उनमें इतना साहस नहीं कि उसके मिटाने की हिम्मत कर सकें। इसलिए हिन्दू-समाज जिक मामलों में आज क़रीब-क़रीब बिलकुल ही वैसा है जैसा १००-१५० वर्ष पहले था। यह स्थितिपालकता, स्थिरता और मुरदा-दिली का चिन्ह है—साहसहीनता का द्योतक है। अगर कोई वस्तु विधवाओं की अवस्था सुधारने में विशेष रूप से मार्ग-कण्टक होती है तो वह यही है।

स्थितिपालकता विशेष रूप से पूर्वीय देशों में बहुत ज़ोरों से पाई जाती है। क्या टर्की क्या ईरान, क्या चीन, क्या जापान—सभी हिन्दुस्तान के समान स्थितिपालक थे और हैं। यही स्थितिपालकता इनके राजनीतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक और साहित्यिक पतन का कारण रही है। जापान भी कुछ दिन पहले स्थितिपालकता के नशे में था, किन्तु जब से उसने आँख खोली है—स्थितिपालकता

को सदा के लिए नमस्कार किया है, तब से ी दिन दूनी रात चौगुनी तरक्क़ी हो रही है। टर्की को देखिए, किसी ज़माने में वह भी बड़ा स्थितिपालक देश था और यूरोपीय राष्ट्रों से 'Sickman' (रुग्ण पुरुष) की उपाधि हासिल कर चुका था, किन्तु आज उसने आँख खोली है। मुस्तफ़ा शा अपनी पत्नी को बेपर्द रखते हैं और एक मुसलमान के लिए ी स्त्री को बेपर्द रखना पुरानी साधारण परिमाण की उदारता नहीं है। इतना ही नहीं, टर्की ने अपनी केंचुल बिलकुल उतार दी है और इसलिए वह उन्नति कर रहा है। चीन अभी पुरानी पीनक में है। ईरान भी हाफ़िज़ की ग़ज़लों के तरानों से पैदा होने वाले सरूर से नहीं है, हिन्दुस्तान पर भी स्थितिपालकता की केंचुल चढ़ी हुई है, जिसके वह बिलकुल मन्द, गतिहीन और स्थिर-सा हो रहा है। जिस दिन इसने अपनी पुरानी केंचुल को उतार फेंका, सामाजिक प्रश्नों पर उदारता, बुद्धिमत्ता और साहस से विचार करना आरम्भ किया, यह और टर्की के समान उन्नति के रास्ते पर बढ़ता जायगा।

अतएव अब हमारे सामने केवल इतना ही है कि "जो सदा से होता आया है वही होगा" इस भोले विचार को दूर करने के लिए हम अपने सामाजिक प्रश्नों पर उदारतापूर्ण विचार करें, इसी में हमारा है, हमारी भावी सन्तान का कल्याण है, हिन्दू-समाज का कल्याण है, देश का कल्याण है, राष्ट्र का ण है, अथवा यों कहिए कि विश्व का कल्याण है।

संसार के भिन्न-भिन्न देशों में विधवाओं की संख्या नीचे दिए गए कोष्टक से प्रकट होगी:—



संसार की १५ वर्ष और १५ वर्ष से अधिक उम्र की स्त्रियाँ

नं० १	नाम देश २	संख्या ३	फ़ी हज़ार ४ अविवाहित	५ विवाहित	६ विधवा	७ दी हुई
१	इङ्गलैण्ड और वेल्स	१,१५,१८,८००	३९५	४९७	१०८	...
२	स्कॉटलैण्ड	१५,५६,२००	४४५	४४३	११२	...
३	आयरलैण्ड	१५,६३,०००	४९७	३७१	१३२	...
४	जर्मनी	१,८८,४५,८००	३५२	५२०	१२५	३
५	आस्ट्रिया	८७,९९,०००	३६७	५१०	१२३	...
६	हङ्गरी	६२,४८,६००	२३३	६२५	१४०	२
७	रूस (१८९७)	३,६०,१५,४००	२२४	६४१	१३४	१
८	फ़िनलैण्ड	९,०५,७००	६८०	५०१	११८	१
९	फ़्रान्स	१,४५,२८,३००	२८६	५४८	१६६	...
१०	इटली	१,०८,३४,८००	३१८	५४८	१३	...
११	पोर्चगाल	१६,३२,९००	४०६	४६८	१२५	१

नं०	नाम देश	संख्या	अविवाहित	विवाहित	विधवा	तलाक़ दी हुई
१२	स्वीज़रलैण्ड	११,७४,६००	४१०	४५६	१२३	८
१३	नॉरवे	७,६७,३००	४१४	४७०	११५	१
१४	स्वीडन	१८,०६,६००	४१२	४६८	११८	२
१५	डेनमार्क	८,४५,०००	३७५	५०३	११६	३
१६	इंग्लैण्ड	१७,०१,३००	३६६	४६४	१०५	२
१७	बेलजियम	२३,११,७००	३६४	४६५	१०६	...
१८	सरविया	६,६७,०००	१५१	७२७	११६	३
१९	रोमेनिया	१७,४३,६००	१६४	६५४	१४६	६
२०	बलगेरिया	१०,६१,१००	२०५	६८७	१०५	३
२१	लगमवर्ग	८०,४००	३८०	४६६	१२०	१
२२	यूनाईटेडस्टेट अमेरिका	२४,२२,६००	३१२	५७१	११२	५
२३	जापान (१६०३)	१,५४,११,८००	४६६	५३४	...	...
२४	हिन्दुस्थान	८,६६,७८,१००	४५	६६६	२८६	...

भारतवर्ष में संसार के सब देशों से, सबसे अधिक विधवाएँ पाई जाती हैं, जैसा कि निम्न-लिखित अङ्कों से प्रकट होगा :—

देश	विधवाएँ	देश	विधवाएँ
युनाईटेड किङ्गडम	७ फ़ी सदी	हॉलैण्ड	७ फ़ी सदी
डेनमार्क	८ "	बेलजियम	८ "
नॉरवे	८ "	फ़्रान्स	१२ "
स्वीडन	८ "	इटली	९ "
फ़िनलैण्ड	८ "	सरविया	७ "
स्वीज़रलैण्ड	८ "	ऑस्ट्रेलिया	६ "
जर्मनी	९ "	न्यूज़ीलैण्ड	५ "
परशिया	९ "	केपकोलोनी	५ "
बेवेरिया	८ "	भारतवर्ष	१८ "
वरटम्बर	८ "		

समस्त भारतवर्ष में १५ और ४० वर्ष के बीच* की अवस्था वाली स्त्रियाँ १० फ़ी सदी विधवाएँ हैं। हिन्दुओं में मुसलमानों से अधिक विधवाएँ पाई जाती हैं। इस अवस्था की हिन्दुओं में १२ फ़ी सैकड़ा और मुसलमानों में ९ फ़ी सैकड़ा पाई जाती हैं। भारतवर्ष के किसी प्रान्त में विधवाओं की संख्या बहुत अधिक है और किसी में बहुत कम।

उत्तर पश्चिमीय सीमा-प्रान्त में ६ फ़ी सदी, काश्मीर में ७,

* १५ और ४० वर्ष के बीच की कुल स्त्रियाँ ६ करोड़ ११ लाख ८५ हज़ार ६८८ हैं, से ६० लाख ७१ हज़ार २०६ विधवाएँ हैं। (Vide Census of India 1921, Vol. I, Part II, p. 46).

मध्यप्रान्त, बरार और पञ्जाब में ८, बम्बई, मद्रास, संयुक्त-प्रान्त, अवध, कोचिन और मध्यभारत की देशी रियासतों में ११, मैसूर और आसाम में १२ और बङ्गाल में १६ फ़ी सैकड़ा विधवाएँ पाई जाती हैं।

भिन्न-भिन्न देशों में अविवाहित प्रौढ़ ि ँ की संख्या इस प्रकार है :—

देश	अविवाहित प्रौढ़	देश	अविवाहित प्रौढ़
युनाईटेड किङ्गडम	६० फ़ी सदी	हॉलैण्ड	६० फ़ी सदी
डेनमार्क	५८ "	बेलजियम	५८ "
नॉरवे	६१ "	फ्रान्स	४७ "
स्वीडन	६० "	इटली	५५ "
फ़िनलैण्ड	५६ "	सर्विया	५१ "
स्वीज़रलैण्ड	५६ "	ऑस्ट्रेलियन-कामन् वेल्थ	६२ "
जर्मनी	५७ "	न्यूज़ीलैण्ड	६१ "
परशिया	५७ "	केपकोलोनी	६२ "
बेवेरिया	५६ "	भारतवर्ष	२४ "
वरहमवर्ग	५६ "	जापान	६४ "
वैडन्	५६ "		

बङ्गाल को छोड़ कर और प्रान्त में ऊँची जातों में, नीची जातों से अधिक विधवाएँ हैं। बिहार और उड़ीसा में ब्राह्मण, बामन, और राजपूतों में २० और ४० वर्ष की अवस्था के दरमियान की स्त्रियों में २३ से २५ फ़ी सदी तक विधवाएँ हैं। चमार र, भनुक, धोबी, गोआला, कुम्हार, कोरी, लुहार, मुसैर

और तेलियों में केवल १३ फ़ी सदी विधवाएँ हैं। बम्बई में ब्राह्मणों में २६'७ फ़ी सदी और ˝ में २६'६ फ़ी सदी विधवाएँ पाई जाती हैं। मध्यप्रान्त, बरार, संयुक्तप्रान्त, पञ्जाब और मद्रास की भी यही दशा है। निम्न-लिखित अङ्क भी विधवाओं की दशा पर बहुत-कुछ प्रकाश डालते हैं :—

फ़ी हज़ार हिन्दू-विधवाएँ *

स्त्रियों की उम्र	१८८१	१८९१	१९०१	१९११	१९२१
०— ५ वर्ष	०	१	१	१	१
५—१० ,,	२	३	५	४	५
१०—१५ ,,	१९	१४	१८	१५	१७
१५—२० ,,	४४	३५	४४	३७	४१
२०—३० ,,	९६	८१	८२	८२	९२
३०—४० ,,	२२५	२०८	२१४	२००	२१४
४०—६० ,,	५१७	५१३	५०३	५०१	४९४
६० और उसके ऊपर	८४६	८४९	८२५	८३०	८१४

इन अङ्कों को देखने से पता चलता है कि समाज-सुधारकों के कठिन परिश्रम करते हुए भी हिन्दू-समाज ने इस प्रश्न को, अर्थात् विधवाओं की संख्या कम करने में, आशाजनक सफलता प्राप्त नहीं की। १८८१ से १९११ तक अर्थात् गत ३० वर्षों में हिन्दू-विधवाओं की संख्या ज्यों की त्यों ही रही। १९११ में, १९०१ से कम विधवाएँ पाई जाती थीं, किन्तु १८९१ के अङ्कों से मुक़ाबला करने पर

* Vide Census of India 1921 Vol. I, Part II, p. 164.

मालूम होता है कि १९११ में, १८९१ से विधवाओं की संख्या कहीं ज़्यादा बढ़ गई थी। १८८१ में हिन्दुओं में १८७ फ़ी हज़ार विधवाएँ पाई जाती थीं। १८९१ में १७६, १९०१ में १८०, १९११ में १७३ और १९२१ में १७५। इसलिए हम यह तो नहीं कह सकते कि विधवाओं की संख्या पहले से बढ़ती जा रही है, किन्तु यह ज़रूर कह सकते हैं कि विधवाओं के सम्बन्ध में हिन्दू-समाज ने जगत्प्रसिद्ध सङ्कीर्णता और स्थितिपालकता का परिचय दिया है।

विधवाओं की इतनी भारी संख्या भारत में देख कर किस भारतीय का दिल न भर जायगा? सवाल उठता है कि विधवाओं का हित कैसे हो सकता है? विधवाओं की यातनाएँ कैसे कम की जा सकती हैं? और विधवाओं की संख्या कैसे कम की जा सकती है? किन्तु यह एक ऐसा जटिल प्रश्न है, जिसका उत्तर एक शब्द अर्थात् 'हाँ' व 'नहीं' में नहीं दिया जा सकता और न एक नियम बना देने से भारतीय समाज का कुछ उपकार ही हो सकता है। यही कारण है कि आज तक अनन्य समाज-सुधारकों को, उनके निरन्तर प्रयत्न करने पर भी, सफलता प्राप्त नहीं हुई और तब तक हो भी नहीं सकती, जब तक व्यक्तिगत रूप से जनता स्वयं अपना सुधार न करे। कारण स्पष्ट ही है :—

भारतवर्ष एक ऐसा विचित्र देश है, जहाँ अनगिन्ती सम्प्रदाय हैं और उनके अनुयायी अपने उन्हीं सम्प्रदायों को अपनी धरोहर समझ कर विपक्षी सम्प्रदायों की निन्दा और तिरस्कार करने में ही अपना अमूल्य जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों का रहन-सहन, सभ्यता और भेष ही

नहीं है, वल्कि उनकी भाषाएँ भी अपनी हैं, धर्म अपने हैं, आचार-विचार अपने हैं, धर्म-ग्रन्थ अपने हैं, देवता अपने हैं। कहने का सारांश यह है कि सभी सम्प्रदायों का परमात्मा भी -अलग है। याद रहे, हम केवल एक धर्म अर्थात् हिन्दू-धर्म के सम्बन्ध में ही कह रहे हैं, अन्य धर्मों के बारे में नहीं। जिस देश में तीन हज़ार तीन सौ पहत्तर भिन्न-भिन्न जाति (Main Castes) के लोग वसते हों और जहाँ १८०० भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती हों उस देश में एकाएक एक विश्व-धर्म (Universal Religion) को ठूँसने का करना कभी भी अच्छा फल नहीं दे सकता, वल्कि उसके द्वारा लाभ तो नहीं, पर हानियाँ अधिक होती हैं। एक सम्प्रदाय से दूसरों का लड़ पड़ना एक ऐसी वात है जिसे हम राह चलते हुए हर रोज़ महसूस करते हैं। ऐसी स्थिति में और ऐसे में, जहाँ इतने मतमतान्तर हों, एक धर्म का दाख़िल करना असम्भव है। सुप्रसिद्ध विद्वान् लाला कन्नोमल जी ने 'चाँद' के 'विधवा-अङ्क' में ठीक ही कहा है कि हिन्दू-समाज के सामने एकाएक विधवा-विवाह का पेश करना, हिन्दू-समाज में बम फेंक देने के समान है। हम आपके इस विचार से अक्षरशः सहमत हैं।

भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के जन्मदाताओं की हमारी निगाह में उतनी ही इज़्ज़त और श्रद्धा है जितनी मुहम्मद या कृष्ण की, अली या शङ्कर की अथवा राम या रहीम की। हम सभी सम्प्रदायों तथा उनके कों को केवल इस वात का विश्वास दि चाहते हैं कि सामाजिक सुधार-सम्बन्धी आन्दोलन की ओर तुरन्त ध्यान

देना इस समय प्रत्येक विचारशील स्त्री अथवा पुरुष का पहिला कर्तव्य होना चाहिए। हमारी राय में यदि इन विचारों को सामने रखते हुए प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने रीति-रिवाजों में सुधार कर ले तो बात की बात में वास्तविक सुधार हो सकता है। लम्बे-चौड़े व्याख्यान किसी ख़ास आन्दोलन को भले ही चलाने में समर्थ हो सकें, पर वे किसी धर्म को सर्वव्यापी बनाने में कदापि सफल नहीं हो सकते।

बाल-विवाह के दुष्परिणामों को देख कर उन्हें तुरन्त रोकना, विधवाओं से अच्छा व्यवहार करना, बेचारी अबोध बाल-विधवाओं की ओर करुणा-दृष्टि करना, वृद्ध-विवाह की प्रथा को समूल नष्ट करना, स्त्रियों में स्त्रीत्व मानना और उनकी उचित शिक्षा की ओर ध्यान देना अथवा अपनी भावी सन्तान की रक्षा करना—इनमें से कोई बात भी ऐसी नहीं है, जो किसी व्यक्ति-विशेष के निजी धर्म को नष्ट करती हो अथवा उन्हें गुमराह करती हो।

प्रत्येक धर्म अथवा रीति-रिवाज उसके (उस रिवाज अथवा धर्म के जन्मदाता के) अपने निजी सिद्धान्त मात्र होते हैं। मुहम्मदसाहब का जो अपना यक़ीन था, वही मुसलमानों का ईमान है। महात्मा ईसा के जो कुछ अपने निजी विचार थे, वही ईसाइयों का सर्वस्व है। प्रातःस्मरणीय बाल-ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द सरस्वती महोदय के जो सिद्धान्त हैं, आज प्रत्येक आर्य-समाजी भाइयों के लिए वे ही मन्तव्य हैं। जो सांसारिक अथवा आध्यात्मिक सिद्धान्त महात्मा बुद्ध के थे, वे ही बौद्धधर्म के सिद्धान्त कहलाते हैं।

यदि प्राचीन, भारतीय ही नहीं, दुनिया के इतिहास पर हम एक बार दृष्टि डालें तो सहज ही पता चलता है कि समय-समय पर प्रत्येक देशों में महान पुरुषों का जन्म इसलिए होता रहता है कि वे उस देश की जनता को आने वाली विपत्तियों से सचेत कर दें और उन्हें सच्चा मार्ग बतला कर उचित रास्ते पर चलने की सलाह दें। हम प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हैं कि भारत में आज कितनी ही महान आत्माएँ चलते-फिरते पुरुषों के रूप में देश का उपकार कर रहीं हैं। महात्मा गाँधी उन पवित्र आत्माओं में से एक हैं, जिनकी ओर हमने इशारा किया है। महात्मा जी के अनुयायी असहयोग-आन्दोलन का पक्ष समर्थन करते हैं, और माननीय चिन्तामणि महोदय के अनुयायी आज मिनिस्ट्री के उच्च पद पर चढ़ कर ही देश का सुधार करने में भलाई का अनुभव कर रहे हैं। सम्भव है, लक्ष्य दोनों के एक हों, पर मतभेद दोनों दलों में है और दोनों दलों के अनुयायी भी अपने उस नेता को ही अपना नेता मानते हैं जिसने उस आन्दोलन (यहाँ पर 'आन्दोलन' शब्द का अर्थ सामाजिक अथवा राजनैतिक सुधार ही समझ लेने में विशेष सुविधा होगी) का जन्म दिया है।

इन सब बातों से पाठकों को यह समझने में सुविधा हुई होगी कि प्रत्येक धर्म एक व्यक्ति-विशेष के अपने निजी सिद्धान्त (Self conviction) मात्र होते हैं। आज भी प्रत्येक सम्प्रदायों का लक्ष्य केवल उन सिद्धान्तों का प्रचार करना मात्र है, जिसके वे अनुयायी हैं, अथवा यों कहिए कि वे उस धर्म अथवा रीति-रिवाज के जन्मदाता के सिद्धान्तों का प्रचार करते हैं।

संसार में कोई भी ऐसी जाति नहीं है, जिसने अपने वीरों को देवताओं के समान न माना हो। यह एक मानी हुई बात है कि प्राणि-मात्र अपने से अधिक शक्ति रखने वाले की ओर झुकते हैं और जब कभी वे किसी ऐसे महान पुरुष को देखते हैं, जिसमें उनसे बढ़ कर पराक्रम और बुद्धि होती है और उनकी बुद्धि की कल्पना भी उनके विचार में नहीं आती, तो उनका अन्तःकरण उनकी महान शक्ति की ओर आकर्षित हो जाता है और वे स्वतः उस शक्तिशाली पुरुष को र समझने लगते हैं। बात बहुत ही स्वाभाविक है, पर वास्तविक ज्ञान न होने के कारण हम इन सिद्धान्तों की खोज नहीं करते और फलतः अन्धपरम्परा के विश्वास में पड़ कर आज भी वही बातें करते हैं जो दस हज़ार वर्ष पहले हमारे पूर्वज करते थे। भारतवासी वास्तव में कैसे भोले हैं?

जिस प्रकार संसार की अन्य वस्तुएँ प नशील हैं, ठीक उसी प्रकार धर्म-ग्रन्थों की रचना भी समय-समय पर होती आई है। हमारे कहने का सारांश यह है कि कोई भी धर्म,

के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता। अतएव सिद्ध यह हुआ कि प्रकृति के नियमों की अपेक्षा विवेक से लेने से शीघ्र और सरलता से उन्नति हो सकती है। हमारे सामने इस वही समय उपस्थित है कि "दैवेच्छा बलीयसी" के उस महान को, जिसे हम पचासों पीढ़ियों से जपते आए हैं, छोड़ कर अपने विवेक से प्रकृति के वर्तमान नियमों को ढूँढ़ निकालें और उन्हें काट-छाँट कर ऐसा बना लें जो हमारे लिए तथा हमारी भावी सन्तान के लिए पथ-प्रदर्शक हों और जिसके द्वारा भविष्य में हमारा ह्रास न हो।

यह हम पहले ही कह आए हैं कि ˋ˙ में, जहाँ कि इतनी भिन्न-भिन्न मुख्य जातें (Main Caste) हैं और जहाँ हज़ारों भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं, वहाँ किसी भी एक धर्म का एकाएक प्रचार करना, कभी भी ो क फल नहीं दे । यही कारण है कि तक कोई भी महान सुधारक, निरन्तर प्रयत्न करते रहने पर भी, प्राप्त नहीं कर । तात्पर्य यह कि यदि कुछ लोग स विधवाओं का पुनर्विवाह ही करा देने की कोशिश करें तो उसमें वे आजीवन सफलता प्राप्त नहीं कर सकते और न उन्हीं को सफलता हो सकती है जो विधवा-विवाह का विरोध कर रहे हैं, बल्कि यह सुधार तभी सम्भव है जब प्रत्येक व्यक्ति भारतीय विधवाओं की वास्तविक से भली-भाँति परिचित हो और इस विषय के सुधार की को महसूस करे।

भारतीय विधवाएँ जब तक कई कोटि (Sections) में न बाँटी जावें, इस प्रश्न का सन्तोषजनक हो ही नहीं सकता। अतएव सबसे पहले हम -विधवाओं की शोचनीय दशा पर ही विचार करेंगे।

यों तो में आज विधवाओं की ३॥ करोड़ के भी पहुँच चुकी है, लेकिन उनमें बाल-विधवाओं की दशा बहुत ही शोचनीय है। लाखों विधवाएँ इतनी छोटी हैं जिनके दूध के दाँत भी नहीं टूटे हैं, ों विधवाएँ ५ से १० वर्ष की आयु की हैं और ˜ विधवाएँ ऐसी हैं, जिनकी आयु १० से १५ वर्ष की है, जैसा कि दिए गए ब्योरा से पता चलेगा। १५ से

२५ वर्ष तक की विधवाओं की संख्या भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इस प्रकार है :—

पञ्जाब	४२,४२६	यू० पी०	१,६७,४२१
बम्बई	८४,१४०	मद्रास	२,१२,६२२

भारत भर में ऐसी विधवाओं की संख्या १४,८४,५१५ है। पर हमें यह देख कर वास्तव में आश्चर्य होता है कि विधवाओं की इतनी लम्बी-चौड़ी संख्या देख कर भी भारतवासियों के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती।

बाल-विधवाओं की यह अपार संख्या सामने रखते हुए इस बात की आशा करना कि वे सभी सदाचारपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करेंगी, पत्थर से पानी निकालने की के समान मूर्खता-पूर्ण है और ख़ास कर ऐसी स्थिति में, जब कि भारतीय पुरुष-समाज इतना पतित होता जा रहा है! विधवाओं की शिक्षा का न तो कोई उचित प्रबन्ध ही है और न उनके लिए ऐसी संस्थाएँ (Rescue Homes) ही हैं, जहाँ वे विधवाएँ, जो सर्वथा अनाथ हैं, रह कर सदाचारपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकें और शिक्षा पा सकें। ज़रा सोचने की बात है कि ऐसी विकट स्थिति में, जब न तो उनके कहीं रहने का प्रबन्ध है, न शिक्षा का और न उदरपूर्ति ही का कोई साधन है, हमें यह मानना ही पड़ेगा कि ऐसी हालत में, उनका कर्तव्य-भ्रष्ट हो जाना उतना आश्चर्यजनक नहीं है जितना सदाचारी रहना।

पतिव्रत धर्म क्या है? जो बहिनें इसका महत्व जानती हैं जो दाम्पत्तिक प्रेम का भली-भाँति अनुभव कर चुकी हैं—

जो बहिनें जानती हैं कि भारतीय विवाह-प्रणाली अन्य यूरोपीय देशों के समान काम-वासना की तृप्ति का साधन मात्र अथवा " Matrimonial contract " नहीं है, बल्कि स्त्री और पुरुष की दो भिन्न-भिन्न आत्माओं को एक में मिला कर मोक्ष-प्राप्ति का एक अनुष्ठान और गृहस्थ-जीवन में रह कर भी निरन्तर तपस्या का एक साधन है—उनके बारे में हमें कुछ नहीं कहना है। वे साक्षात् देवी हैं और हमें उनके पवित्र चरणों में श्रद्धा है। ऐसी विधवाओं के पुनर्विवाह की कल्पना करना भी हम ी माता का घोर अपमान करना समझते हैं। हम जानते हैं कि पातिव्रत धर्म का करने और पुनर्विवाह के सिद्धान्त में कौड़ी और मोहर का अन्तर है, पर आपद्धर्म भी कोई चीज़ है। अङ्गरेज़ी में कहावत है " Imergency has no law " हम उस आपद्धर्म की ओर इशारा कर रहे हैं, जिसे स्वयं योगिराज महात्मा श्रीकृष्ण जयद्रथ-वध के समय काम में लाए थे। अर्जुन की रक्षा के निमित्त उन्होंने माया के बादलों से सूर्य को छिपा कर, जान-बूझ कर कौरव-दल को धोखा दिया था, ताकि वे कि सूर्यास्त हो गया और अन्त में हुआ भी ऐसा ही। सूर्यास्त हुआ समझ कर जैसे ही जयद्रथ चक्र-व्यूह के बाहर निकला, वैसे ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन से, जोकि अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार जीवित अग्नि में होने जा रहा था, बाण चलाने की आज्ञा दी और इस धोखे में जयद्रथ का वध किया गया था। इस बात का साक्षी महाभारत का इतिहास है। साधन कितना ही निन्दनीय क्यों न हो, पर उद्देश्य निस्सन्देह बहुत उच्च था। श्रीकृष्ण समझते थे कि जयद्रथ की अपेक्षा अर्जुन

जैसे वीर और पराक्रमी की रक्षा करना ही बुद्धिमत्ता है। ठीक वही समस्या इस समय भारतवासियों के सामने उपस्थित है। मान लीजिए विधवाओं के पुनर्विवाह का कार्य "मुँह काला करना" है, पर एक ही बार तो।

आज हज़ारों स्त्रियाँ भगाई और बेची जा रही हैं। बढ़ते हुए व्यभिचार की ओर दृष्टि फेरने से रोमाञ्च हो आता है, वेश्याओं की दिनोंदिन वृद्धि देख कर शरीर एक बार थर्रा उठता है। दूध पीती बच्चियों का करुणा-क्रन्दन सुन कर, जो अपनी माताओं की गोदियों में मुँह डाल कर सिसक-सिसक कर रो रही हैं, भला कौन ऐसा मानव-हृदय होगा जो करुणा से परिपूर्ण न हो जावेगा और कौन ऐसा नेत्र होगा जिससे आँसू न निकल पड़ेंगे?

हमारी सम्मति में नीचे लिखे उपायों को काम में लाने से बहुत कुछ उपकार हो सकता है:—

(१) वे बाल-विधवाएँ, जो अक्षत-योनि हैं अथवा जो अपने पति के साथ नहीं रही हैं, उनका विवाह तो सब जाति में और हर हालत में अवश्य ही होना चाहिए। भला वे बालिकाएँ जो पति के साथ बिलकुल ही नहीं रही हैं अथवा जिन्होंने पति का दर्शन भी नहीं किया है, उनके हृदय में पति का प्रेम हो ही किस प्रकार सकता है? ऐसी कन्याओं के सामने दाम्पत्य प्रेम का ढकोसला रखना ठीक वैसा ही है, जैसे कुमारी कन्या से यह कहना कि "तुम्हारा विवाह हो चुका है और तुम्हें आजीवन अपने पति के चरणों में प्रेम करना चाहिए।" जो कन्याएँ अपने पति के साथ कुछ दिन रह चुकी हैं, पर अभी जवान हैं—पुनर्विवाह का प्रश्न

सर्वथा ी इच्छा पर निर्भर होना चाहिए। यह बात भव है कि घर के लोग अथवा माता-पिता लड़की के व्यवहारों को देख कर यह न समझ लें कि लड़की दूसरा विवाह करना चाहती है कि नहीं। स्पष्ट शब्दों में यों कहिए कि लड़की को दूसरे पति की आ है कि नहीं? यदि वे ऐसा ते हैं तो समाज के विरोध को पैरों तले कुचल कर उन्हें अवश्य कन्या का किसी योग्य वर से, जो रँडुआ हो, उसका विवाह तुरन्त कर देना चाहिए।

(२) भारत के कई प्रान्तों में कन्याओं की अपेक्षा अविवाहित पुरुष कहीं ज़्यादा हैं और लड़कियों की कमी है। उदाहरण के लिए आप पञ्जाब ही को लीजिए, वहाँ ५ वर्ष की आयु के लड़कों से संख्या में २४,०१७ लड़कियाँ कम हैं और ५ वर्ष से ऊपर और १० वर्ष तक की आयु की लड़कियाँ इसी अवस्था के लड़कों से २,४५,६६० कम हैं और १० से १५ वर्ष तक आयु की लड़कियाँ इसी उम्र के लड़कों से ४,६२,६८१ कम हैं और १५ से ऊपर और २० वर्ष तक अवस्था की लड़कियाँ इसी अवस्था के लड़कों से ५,२५,७२१ कम हैं।

दूसरी ओर यदि ध्यानपूर्वक देखा जावे तो दिल्ली में २६,८३६, मुलतान में ७,७४३, रावलपिण्डी में ६,०५८, अम्बाले में ३,८१०, और फ़िरोज़पूर में ६,५१६ स्त्रियाँ पुरुषों से कम हैं। सारांश यह कि समस्त पञ्जाब में कुँआरे हिन्दू-पुरुषों की संख्या १७,६७,६१६ है और कुमारी लड़कियों की संख्या १०,६२,५०७ है; अर्थात् ७,३५,११२ पुरुषों को बिन ब्याहे इसलिए रहना पड़ता है कि उनके लिए लड़कियों की कमी है। रँडुए पुरुषों की संख्या, जिनकी आयु एक

वर्ष से ५० वर्ष तक है और जो पुनर्विवाह करना चाहते हैं, १,८०,८७४ है। यदि थोड़ी देर के लिए इनकी संख्या भी कुँआरे पुरुषों में जोड़ दी जावे तो कुल ६,१५,६८६ पुरुष ऐसे हैं जिनके लिए स्त्रियों की कमी है।

(३) कन्याओं के इस अभाव का एकमात्र कारण है हिन्दू-समाज में प्रचलित बहु-विवाह की प्रथा, जिसे तुरन्त तोड़ना ज़रूरी है। एक पुरुष अपनी काम-वासना को तृप्त करने अथवा सन्तानोत्पत्ति की आड़ में एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी, चौथी और पाँचवीं, यहाँ तक कि हमारी कारी में ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं है जिन्होंने १४ से १८ विवाह तक किए हैं। और एक पति के मरने पर १८ विधवा स्त्रियाँ आज अपने जीवन को कोस रही हैं।*

रँडुए पुरुषों से कुमारी कन्याओं को ब्याहे जाने की प्रथा बहुत हद तक इस प्रश्न, अर्थात् लड़कियों की कमी के लिए ज़िम्मेदार है। अतएव इन अङ्कों को सामने रखते हुए प्रत्येक विचारशील व्यक्ति का यह लक्ष्य होना चाहिए कि वह बहु-विवाह का ज़ोरों से विरोध करे और रँडुए पुरुषों का यदि विवाह हो भी तो विधवा से ही होना चाहिए—कुमारी कन्याओं से नहीं! ऐसा करने से न केवल कुमारी कन्याओं का भला होगा, बल्कि पुरुषों की सहानुभूति स्वयं ही विधवाओं के पक्ष में क्रमशः होने लगेगी और तभी वे विधवाओं के कष्टों का वास्तविक अनुभव भी कर सकेंगे। विधवा-विवाह के विरोधी, जो वेद- ों को उलट कर इस बात को सिद्ध करते हैं

---

* यह बिहार के एक प्रतिष्ठित ज़मींदार की घटना है।

कि प्राचीन में विधवाओं के पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित नहीं थी, वे क्या यह बात सिद्ध करते हैं कि उस पवित्र युग में ही के समान पुरुष अपनी स्त्री के मरने पर अनेक विवाह कर लिया करते थे ? यदि यह बात थी तो दाम्पत्य प्रेम का अर्थ हम विडम्बना मात्र ही करेंगे।

(४) बाल-विवाह की कुप्रथा को समूल नष्ट करना चाहिए।

(५) भिन्न-भिन्न शहरों में विधवाओं के लिए उच्चकोटि के ऐसे आश्रम होने चाहिए, जहाँ विधवाएँ सदाचारपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकें और उन्हें उच्चकोटि की शिक्षा दी जावे। ऐसी संस्थाओं के कार्यकर्ता ऐसे होने चाहिए, जिनका चरित्र बहुत ही उज्ज्वल हो और जिन पर जनता का विश्वास हो। पुरुषों की अपेक्षा यदि स्वयं स्त्रियाँ ही ऐसे कार्यों को अपने हाथ में लेकर चलावें तो अधिक उपकार की सम्भावना है। इन संस्थाओं का एक ख़ास केन्द्र (Head Office) होना चाहिए, जहाँ से समय-समय पर अन्य शाखाओं को परामर्श (Instructions) मिलते रहें और उन्हीं के अनुसार कार्य किए जावें।

* * *

पुरुष-समाज और विधवाएँ

भारतवर्ष में स्त्रियों के उपकार के लिए, विशेष कर विधवाओं की सहायता और उद्धार के लिए जितने काम किए जाते हैं उन सब कामों में अगर कोई विशेष रूप से विघ्नकारी और मार्ग-
हो जाता है तो वह पुरुषों का तर्ज़ अमल है।

महाराष्ट्र या दक्षिण के अन्य प्रान्तों के बारे में हम कुछ नहीं

कहना चाहते । उत्तरीय भारत में, विशेष कर संयुक्त-प्रान्त में अभाग्यवश बाल्यावस्था से ही बालकों के कुछ ऐसे संस्कार पड़ जाते हैं कि पुरुष होकर वह लोग स्त्रियों की और विशेषकर विधवाओं की इज़्ज़त करने में ज़रा भी अग्रसर नहीं होते। हम तो यहाँ तक कहेंगे कि भारतवर्ष में स्त्री-जाति के सम्मान करने की प्रथा और मर्यादा का साधारण जनता में तो अभाव है ही, मगर दुख के साथ कहना पड़ता है कि अगर किसी सड़क से कोई भी महिला निकल जाय या किसी सभा में कोई स्त्री जाकर बैठे तो उस सड़क और उस सभा के शायद ही दो-चार भले मानुस ऐसे होंगे जो उसकी तरफ़ व्यर्थ टकटकी लगाने की गुस्ताख़ी न करें। इन प्रान्तों में पुरुषों को स्त्रियों का सड़क पर चलना, सभा-समाजों में भाग लेना आदि काम कुछ ऐसे अनोखे मालूम होते हैं कि टकटकी बँध जाना कुछ स्वाभाविक-सा हो गया है। अगर किसी मुहल्ले में किसी स्थान पर विधवाएँ एकत्रित की जायँ और आसपास के आदमियों को मालूम हो जाय कि अमुक स्थान पर प्रत्येक दिन, स्त्रियाँ या विधवाएँ एकत्रित होंगी तो खेद के साथ कहना पड़ता है कि बुरे आदमी ही नहीं, बल्कि ऐसे भी दो-चार आदमी जो सज्जन कहलाते हैं, आसपास टहलते हुए नज़र आवेंगे! तफ़सील में न जाकर निर्भीकता के साथ हम कह देना चाहते हैं कि स्त्रियों के प्रति सम्मान, सच्चरित्रता और पवित्रता दिखाने में हमारा पुरुष-समाज इतना कमज़ोर है कि स्त्रियों के उपकार और विधवाओं के उद्धार के लिए ऐसे आदमी भी, जो इनकी दुर्दशाओं का अनुभव करते हैं, इस डर से कोई क़दम नहीं बढ़ा सकते कि कहीं पुरुष-समाज

की निन्दनीय, अपवित्र प्रेरणाएँ असहाय विधवाओं को कुमार्ग और दुश्चरित्रता के अधिकतर यातनापूर्ण और लज्जा गढ़े में न डाल दें। परदा तोड़ने का सुधार, स्त्री-शिक्षा का काम, विधवा-सहायता की स्कीम अर्थात् स्त्री-जाति के उपकार की जितनी भी बातें हैं, सभी पुरुष-समाज की इस निन्दनीय नीचता और नैतिक निर्बलता के कारण या तो आरम्भ ही नहीं होतीं और अगर आरम्भ हुई भी तो थोड़े दिनों में ही अपमान-जनक असफलता को प्राप्त हो जाती हैं।

इसलिए अगर भारतवर्ष में स्त्री-जाति की उन्नति होनी है और यदि हिन्दू-समाज अपनी माँ-बेटियों की शिक्षा, सम्मान और मर्यादा क़ायम रखना चाहता है तो उसे पुरुष के तर्ज़ अमल में विशेष रूप से पवित्रता लाने की आवश्यकता है। हिन्दू-समाज के प्रत्येक पुरुष का यह कर्तव्य है कि अगर वह विधवाओं की यातनापूर्ण अवस्था से वास्तविक सहानुभूति रखता है, यदि असहाय, दरिद्र, पतिहीन स्त्रियों की दुर्दशा और उनके रुदन-क्रन्दन, उनके हृदय में कुछ भी दर्द पैदा करते हैं तो वह स्त्रियों की तरफ़ से अपने और समाज के भाव एकदम पवित्र कर दें। स्त्रियों के न करने की प्राचीन भारतीय प्रथा को, जिसका पश्चिम आज बहुत ज़ोरों के साथ अनुकरण कर रहा है, अपने जीवन में कार्य-रूप में परिणत करके दिखा दें। सड़क पर चलने वाली, सभा-समाजों में भाग लेने वाली, किसी संस्था में एकत्रित स्त्रियों को घूरने, छेड़ने और उनका पीछा करने की निन्दनीय, नीच और ज़लील आदत को छोड़ दें। जब तक समाज अपने-अपने भावों में इस की

पवित्रता पैदा नहीं करता, स्त्रियों और ख़ासकर विधवाओं की दुर्दशा में कोई कमी नहीं आ सकती, और समाज-सुधारक चाहे जितना शोर करें, समाज की उन्नति असम्भव है।

निस्सन्देह इस विषय में हमने पुरुष-समाज पर कड़े आक्षेप किए हैं। किन्तु हम उसके लिए इस स्थान पर क्षमा-प्रार्थना न करेंगे। क्योंकि जब हम देखते हैं कि पुरुष-समाज के व्यक्तियों के निन्दनीय और घृणित कार्यों से समाज में निर्दयता और कष्टों की वृद्धि होती है और समाज का एक अङ्ग सदा के लिए व्यथित रहता है, उस समय न्याय और दया से प्रेरित होकर हम उन व्यक्तियों की कुचरित्रता और अपवित्रता पर कठोर से कठोर कुठाराघात करने को तैयार हो जाते हैं, जिनकी ख़ुदग़रज़ी और नीचता के कारण समाज व्यथित, कलुषित और निर्बल बना जा रहा है।

हम अपनी बहिनों से प्रार्थना करेंगे कि वह अपने बच्चों में उनकी बाल्यावस्था से ही स्त्री-जाति के प्रति आदर और सम्मान तथा पवित्रता के भाव अङ्कित करेंगी, जिससे इस बालक को, जब वह पुरुष हो तब समाज को एक पवित्र और आदर्श पुरुष-समाज रखने का सौभाग्य प्राप्त हो सके।

* * *

समाज और विधवा

हमारे समाज में विधवा एक बेकार सी चीज़ है। अधिकांश लोग तो इसे बेकार ही नहीं, बल्कि निश्चित रूप से समाज के लिए हानिकर समझते हैं और इसलिए विधवा का जीवन हिन्दू-समाज में विशेष रूप से यातनापूर्ण है। यों तो विधवाएँ हर एक देश में

अभागी समझी जाती हैं, किन्तु अन्य देशों में विधवाओं को इतनी अधिक तकलीफ़ें नहीं उठानी पड़तीं, जितनी हिन्दुस्तान में। पति की मृत्यु की और उसके सदा के लिए वियोग की ही असह्य मानसिक पीड़ा तो सब देश की विधवाओं के लिए है, किन्तु बेकारी, दरिद्रता, असहायता, सम्मान-शून्यता इत्यादि कष्ट जिस मात्रा में भारत की विधवाओं को सहने पड़ते हैं, शायद ही किसी सभ्य जाति की विधवाओं को सहन करने होते हों।

जो सज्जन विधवा-विवाह में विश्वास नहीं करते, वह अगर अपने घर की विधवाओं के जीवन को सुखमय बनाने की कोशिश करने लगें तो भी विधवाओं के जीवन की वर्तमान दुर्दशा बहुत-कुछ कम हो सकती है। हमें में बहुत ही दुख होता है, जब हम यह देखते हैं कि विधवाओं के जीवन को सुखमय बनाने का तो कोई प्रयत्न नहीं किया जाता, किन्तु उनके चरित्र पर कड़ी दृष्टि से समालोचना की जाती है। किसी विधवा को, अगर उसके माँ, बाप, देवर, स्वसुर, सास आदि सम्बन्धी लाड़-प्यार से रक्खें, उसकी असहाय अवस्था का स्मरण-मात्र भी उसके ने न आने दें; अपने चरित्र से कुटुम्ब का वायुमण्डल पवित्र रक्खें तो १०० में ७५ विधवाओं की तकलीफ़ें कम हो जायँ और . ही दो-चार ऐसी मिलें जो ऐसी अवस्था में सच्चरित्रता के पथ का उल्लङ्घन करें।

अगर हिन्दू-समाज अपने आप को जीता-जागता कहता है और उसमें दया और उदारता का ज़रा भी अंश है तो उसे विधवा-प्रश्न को उदारता और बुद्धिमत्ता के साथ हल कर डालना चाहिए। अगर किसी प्राणी का कोई अङ्ग व्यथित हो और वह उसे अनुभव

न करे या अनुभव करके उसके प्रतिकार का कोई उपाय न करे तो उसका शरीर या तो मुरदा समझा जायगा या मृत्यासन्न। हिन्दू-समाज यदि विधवा की व्यथा का अनुभव नहीं करता या अनुभव करके उसके प्रतिकार का उचित उद्योग नहीं करता तो मुरदा होने या मृत्यासन्न होने का लाञ्छन उस पर उचित ही है। किन्तु हमें हिन्दू-समाज की उदारता, दया और विचारशीलता में विश्वास है। हम यह स्पष्ट देख रहे हैं कि हिन्दू-समाज में पुनर्जागृति पैदा हो गई है और मानुषिक कार्य के प्रत्येक क्षेत्र में, राजनीति में, आचारनीति में, साहस में, वीरता में, साहित्य में, विज्ञान में अर्थात् प्रत्येक उच्च और आदरणीय क्षेत्र में, यह समाज उन्नति कर रहा है। इसके दुर्बल और रुग्ण शरीर में फिर से जीवन का सञ्चार हो रहा है! चैत-वैशाख के नवपल्लवित वृक्ष के समान यह बहुत ही शीघ्र-जीर्ण अवयवों का त्याग कर हँस पड़ने वाला है। जिन-जिन व्यथाओं से यह पीड़ित है उन-उन व्यथाओं को दूर करने में सपरिश्रम उद्योग कर रहा है। कोई कारण नहीं कि विधवा-प्रश्न का यह सन्तोषजनक उत्तर न दे सके।

हमें हिन्दू-समाज के प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा है कि यदि उसने आज तक व्यक्तिगत प्रश्नों को छोड़ कर सार्वजनिक और सामाजिक प्रश्नों में दिलचस्पी नहीं ली है तो अब समाज के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी अनुभव करेगा और समाज-सुधार के, विशेष कर असहाय विधवाओं के जीवन सुखमय बनाने और उनकी दशा सुधारने के पवित्र, शान्तिपूर्वक और पुण्यदायक कार्य में श्रद्धा और उत्साह के साथ भाग लेकर अपना जन्म सफल करेगा।

इस पुस्तक के सुयोग्य लेखक ने उन लोगों की शङ्का का, जो विधवा-विवाह का विरोध करते हैं, बहुत ही मार्मिक दलीलों द्वारा समाधान किया है और ऐसे-ऐसे धार्मिक और ऐतिहासिक प्रमाण पेश किए हैं, जिनका खण्डन करना उस समय तक असम्भव है, जब तक लोग कोरे 'हठ' की शरण न लें। जो लोग विधवा-विवाह के जन्म-सिद्ध विरोधी हैं, मैं तो कहूँगा—उन्हें भी इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ को बड़ी सावधानी से आद्योपान्त पढ़ना चाहिए और इसमें दिए गए अकाट्य प्रमाणों को ठण्डे दिल से समझना चाहिए। मेरा तो पूर्ण रूप से विश्वास है कि इस पुस्तक को जनता बहुत ही आदर की दृष्टि से देखेगी और इससे पूर्ण उठावेगी। यदि मेरी स्मरण-शक्ति मुझे धोखा नहीं देती तो मैं यह ज़रूर कहूँगा कि विधवाओं की जटिल समस्या पर ऐसी उपयोगी पुस्तक हिन्दी-संसार में अब तक प्रकाशित नहीं हुई थी। मैं ज की ओर से लेखक को उनकी इस सफलता पर हार्दिक बधाई देता हूँ।

—रामरखसिंह सहगल







* * *

विताएँ



चित्र-सूची



तिरङ्गे

आर्ट-पेपर पर रङ्गीन



विधवा-विवाह-मीमांसा 

पुस्तक के रचयिता

श्री० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय, एम० ए०



विधवा-विवाह मीमांसा

आरम्भ

अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या

—अथर्ववेद 3, सूक्त 30, मन्त्र 1

रम-पिता परमात्मा इस वेद-मन्त्र द्वारा उपदेश करते हैं कि हे के मनुष्यो ! तुमको चाहिए कि एक-दूसरे के इस प्रकार व्यवहार करो, जैसे एक गौ अपने नवजात बछड़े के करती है। गौ का अपने हाल के उत्पन्न हुए बछड़े के साथ कैसा प्रेम-युक्त व्यवहार होता है, इसका और कोई ही नहीं ! बछड़ा मल में सना हुआ है; परन्तु गौ-माता न केवल मल ही दूर करती है; किन्तु उसको अपना अमूल्य मधुर दूध पिला कर शक्ति भी प्रदान करती है ! इसी प्रकार ईश्वर की ओर से आज्ञा है कि हम लोग भी एक-दूसरे की बुराइयों को हटाने और उनके दुःख दूर करने का यत्न किया करें— प्रेम

से बरतें और एक-दूसरे पर कभी अत्याचार न करें! प्रायः देखा जाता है कि जो जातियाँ वेदों के इस उपर्युक्त उपदेश को भुला देती हैं, उनमें व्यक्तिगत और समाजगत अनेक अत्याचार आ जाते हैं—बलवान् निर्बलों को सताने लगते हैं और सभ्यता का नाश हो जाता है। आजकल भारतवर्ष में विधवाओं पर जो अत्याचार हो रहे हैं, वह केवल वेद से विमुख होने ही का फल है। मनुष्य-समाज का बलवान् अङ्ग अर्थात् पुरुष शक्तिशाली होने के कारण, अपने लिए तो अनेक विवाहों का अधिकारी बताता है, परन्तु जब अबलाओं के पुनर्विवाह का प्रश्न उपस्थित किया जाता है, तो अनेक आक्षेप करता है।

यद्यपि प्राचीन काल में विधवा का पुनःसंस्कार धर्म के अनुकूल समझा जाता था एवं आवश्यकतानुसार उसका प्रचार भी होता था और वर्तमान समय में भी अनेक देशों और जातियों में इसका प्रचार है; तथापि कुछ काल से आर्य-जाति के उच्च वर्णों में इसको धर्म-विरुद्ध समझा जाने लगा है। जिसके कारण अनेक प्रकार के दोष हिन्दू-समाज में प्रविष्ट होकर उसकी जड़ काटने का काम कर रहे हैं। अतः यहाँ विधवा-विवाह की पूरी मीमांसा की जायगी। विधवा-विवाह धर्मानुकूल है या धर्म-विरुद्ध इसका निश्चय करने के लिए निम्न-लिखित प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है:—

(१) विवाह का प्रयोजन क्या है? मुख्य-प्रयोजन क्या और गौण-प्रयोजन क्या? आजकल विवाह में किस-किस प्रयोजन पर दृष्टि रक्खी जाती है?

(२) विवाह के सम्बन्ध में स्त्री और पुरुष के अधिकार और कर्त्तव्य समान हैं या असमान ? यदि समानता है, तो किन-किन बातों में और भेद है तो किन-किन बातों में ?

(३) पुरुषों का पुनर्विवाह और बहु-विवाह धर्मानुकूल है या धर्म-विरुद्ध ? शास्त्र इस विषय में क्या कहता है ?

(४) स्त्री का पुनर्विवाह उपर्युक्त हेतुओं से उचित है, या अनुचित ?

(५) वेदों से विधवा-विवाह की सिद्धि ।

(६) स्मृतियों की सम्मति ।

(७) पुराणों की साक्षी ।

(८) अङ्गरेज़ी क़ानून (English Law) की आज्ञा ।

(९) अन्य युक्तियाँ ।

(१०) विधवा-विवाह के विरुद्ध अक्षेपों का उत्तर:—

(अ) क्या ी दयानन्द विधवा-विवाह के विरुद्ध हैं ?

(आ) विधवाएँ और उनके कर्म तथा ईश्वर-इच्छा;

(इ) पुरुषों के दोष स्त्रियों को अनुकरणीय नहीं ;

(ई) कलियुग और विधवा-विवाह ;

(उ) कन्यादान विषयक आक्षेप ;

(ऊ) गोत्र विषयक प्रश्न ;

(ऋ) कन्यात्व नष्ट होने पर विवाह है;

(ॠ) बाल-विवाह रोकना चाहिए, न कि विधवा-विवाह की प्रथा चलाना ;

(ऌ) विधवा-विवाह लोक-व्यवहार के विरुद्ध है ;

(ऌ) क्या हम आर्य-समाजी हैं, जो विधवा-विवाह में योग दें ?

(११) विधवा-विवाह के न होने से हानियाँ।

(क) व्यभिचार का आधिक्य ;

(ख) वेश्याओं की वृद्धि ;

(ग) भ्रूण-हत्या तथा बाल-हत्या ;

(घ) अन्य क्रूरताएँ ;

(ङ) जाति का ह्रास ;

(१२) विधवाओं का कच्चा-चिट्ठा।

(१३) विधवाओं की दुर्दशा।

(१४) विद्वानों की सम्मतियाँ।

इस पुस्तक में चौदह अध्याय होंगे, जिनमें क्रमशः उपर्युक्त विषयों की आलोचना होगी !



पहला अध्याय

विवाह के प्रयोजन

ईश्वर की सृष्टि में दो की शक्तियाँ पाई जाती हैं:—एक पुरुष-शक्ति और दूसरी स्त्री-शक्ति! इन दोनों के संयोग से ही वंश-वृद्धि होती है। परमात्मा ने इन दोनों शक्तियों में एक का ऐसा स्वभाव उत्पन्न किया है कि वह एक-दूसरे की ओर स्वयं ही आकर्षित होती हैं! यह नियम न केवल मनुष्य-जाति में ही पाया जाता है; किन्तु पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग आदि सब ही इसका अनुकरण करते हैं। घोड़ा-घोड़ी को देख कर हिन-हिनाता है। शुक-सारिका अपने-अपने जोड़ों की ओर स्वयं ही प्रलोभित होते हैं। साँप और साँपिन साथ-साथ रहना पसन्द करते हैं। मक्खी और मक्खे में स्वाभाविक प्रेम होता है। इसी प्रकार पुरुष और स्त्री सहवास में ही आनन्द-लाभ करते हैं; परन्तु मनुष्य-जाति और इतर जातियों की कार्य-प्रणाली में भेद है। ईश्वर ने मनुष्य को ज्ञान दिया है; और पशु-पक्षी को नहीं; परन्तु इस बहुमूल्य वस्तु अर्थात् ज्ञान के उपलक्ष में मनुष्य को कर्म करने में स्वतन्त्रता दी गई है और पशु-पक्षियों को परतन्त्र बनाया गया है। दार्शनिक परिभाषा में यों कहिए कि मनुष्य कर्म-योनि और भोग-योनि दोनों है और मनुष्य को छोड़ कर अन्य सब

प्राणि-वर्ग केवल भोग-योनि हैं। वह जो कुछ करते हैं, स्वभाव से प्रेरित होकर करते हैं—प्रयोजन को दृष्टि में रखना और उसकी सिद्धि के विषय में तर्क करना उनकी शक्ति के बाहर है। मनुष्य को जहाँ बुद्धि दी गई है, वहाँ उसके सिर पर उत्तरदायित्व का भार भी है। वह किसी काम को चाहे करे, चाहे न करे और चाहे उलटा करे; जैसा करेगा, वैसा फल पावेगा!

ईश्वर ने पशु-पक्षियों की सामाजिक योजना अपने में रक्खी है। जो नियम उसने इस विषय में बना दिए हैं, उनको वह भङ्ग कर ही नहीं सकते। ऋतुगामी होना उनका स्वभाव है; उनके लिए संस्कार विशेष की आवश्यकता नहीं; परन्तु मनुष्य को स्व-तन्त्र और नियमोलङ्घन करने में समर्थन होने के कारण अपने समाज का सङ्गठन स्वयं ही करना पड़ता है। यदि वह नियमों का पालन करता है, तो समाज की उन्नति होती है और यदि पालन नहीं करता, तो समाज नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है!

हम ऊपर कह चुके हैं कि स्त्री और पुरुष में पारस्परिक -र्षण शक्ति है और इस आकर्षण को नियमित करने का ही नाम विवाह है। अतः विवाह से दो प्रयोजन हैं; एक सन्तानोत्पत्ति और दूसरा इस स्वाभाविक आकर्षण को नियम में रखना! प्राणियों को भूख लगती है—जब वह किसी खाद्य पदार्थ को देखते हैं, तो उसको खाने की इच्छा हैं। अब यदि प्रश्न किया जाय कि भोजन करने का क्या प्रयोजन है? तो इसके दो ही उत्तर हैं:—एक तो यह कि यदि भोजन न जाय, तो शरीर नित्य-प्रति दुबला होता जायगा और थोड़े ही में जीवन की समाप्ति

हो जायगी; दूसरा यह कि प्राणियों में खाने की जो स्वाभाविक इच्छा है, उसको नियम में । भोजन करने का मुख्य प्रयोजन शरीर का स्वास्थ्य ठीक रखना ही है; परन्तु यदि भूख न करती, तो खाने के लिए कष्ट उठाने वाले थोड़े ही होते । इसीलिए ईश्वर ने भूख को उत्पन्न किया है, जिससे बिना सोच-विचार के मनुष्य को भोजन की इच्छा हो ही जाती है । बच्चा उत्पन्न होते ही भोजन माँगने के लिए रोने है, तो वह यह नहीं कि मैं शरीर-रक्षा के लिए दूध माँग रहा हूँ । उस बेचारे को यह पता भी नहीं कि दूध किसे कहते हैं—शरीर क्या वस्तु है और दूध का शरीर के स्वास्थ्य से क्या सम्बन्ध है । उस समय वह : ही भूख से पीड़ित होकर चिल्लाता और दूध मिलते ही सन्तुष्ट हो है ! इसलिए एक अवस्था में गौण-प्रयोजन अर्थात् भूख की निवृत्ति भी मुख्य ही हो जाती है । प्रायः ऐसा होता है कि जो खाना म में भूख की निवृत्ति के लिए खाया है और जिसका मुख्य प्रयोजन शरीर का स्वास्थ्य है, उसको लोग स्वास्थ्य के बिगाड़ने के लिए भी खाते हैं । हम प्रायः बहुत सी वस्तुएँ ऐसी खाते हैं—जैसे शराब वग़ैरः; जिससे यद्यपि हमको स्वाद मिलता है, तथापि उससे शरीर को हानि पहुँचती है । इसलिए वैद्यों ने भोजन के नियम बनाए हैं, जिनसे दोनों कार्य सिद्ध हो सकें ; अर्थात् :—

(१) मुख्य-प्रयोजन—शरीर-रक्षा ।

(२) गौण-प्रयोजन—स्वाद की सन्तुष्टि ।

वैद्यक- के देखने से विदित होता है कि यह दोनों प्रयो-

जन ही दृष्टि में रक्खे जाते हैं और कटु-कषाय वस्तुएँ भोजन से निकाल दी जाती हैं। कई वस्तुएँ भोजन में केवल इसलिए रक्खी जाती हैं कि उनके द्वारा भोजन भली प्रकार खाया जा सके।

इसी प्रकार विवाह के भी दो प्रयोजन हैं—पहला अर्थात् मुख्य-प्रयोजन—सन्तानोत्पत्ति है; परन्तु यदि सन्तानोत्पत्ति ही स्त्री-पुरुष के संयोग का कारण होता और स्वभावतः उनमें आकर्षण न होता, तो प्रति शतक एक भी सन्तानोत्पत्ति के झगड़ों में न पड़ता; इसीलिए परमात्मा ने परस्पर संयोग का स्वभाव उत्पन्न कर दिया है। अतः इस संयोग को नियम में रखना भी विवाह का एक प्रयोजन है; यद्यपि यह गौण है। जिस प्रकार बिना नियम के भोजन करने वाले इसके मुख्य-प्रयोजन अर्थात् शरीर-रक्षा को भूल जाते हैं, उसी प्रकार यदि स्त्री-पुरुषों के सहवास का नियम न हो, तो शारीरिक तथा सामाजिक भयङ्कर परिणाम निकलने लगते हैं, अतः विवाह के नियम बनाते समय दो बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता है; अर्थात् :—

(१) स्त्री-पुरुष के परस्पर संयोग की स्वाभाविक इच्छा भी पूर्ण हो जाय।

(२) और उससे मुख्य-प्रयोजन अर्थात् सन्तानोत्पत्ति की भी सिद्धि हो सके!

स्त्री-पुरुष में परस्पर संयोग की इच्छा सन्तान की इच्छा से कई गुनी बलवान् है। पशु-पक्षी तो संयोग यह सोच कर कभी नहीं करते कि उनके सन्तान होगी। वह तो स्वयं एक प्रकार की अनि-

वंचनीय शक्ति से आकर्षित हो जाते हैं; परन्तु मनुष्य में भी सन्तानोत्पत्ति की इच्छा संयोग की इच्छा की अपेक्षा बहुत कम होती है और जो स्त्री-पुरुष केवल सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से ही संयोग करते हैं, वे केवल वही होते हैं, जिनको इन्द्रिय-दमन की पूर्ण शिक्षा मिली है और जिन्होंने कर्त्तव्याकर्त्तव्य पर भली-भाँति विचार किया है। साधारणतया तो उनके मिलने का केवल एक प्रकार की अकथनीय स्वाभाविक इच्छा ही होती है। इसलिए जहाँ विवाह का मुख्य-प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति रक्खा गया है, वहाँ उस गौण-प्रयोजन पर भी पूरा ध्यान दिया गया है कि स्वाभाविक संयोग करने की इच्छा की नियमपूर्वक पूर्ति हो जाय। इसीलिए शास्त्रों में यत्र-तत्र आदेश मिलता है कि यदि पुरुष ब्रह्मचारी और स्त्री ब्रह्मचारिणी न रह सकें अर्थात् वह इस स्वाभाविक इच्छा का दमन न कर सकें, तो विवाह कर लें अर्थात् उन नियमों को दृष्टि में रखते हुए संयोग करें, जिनसे वह इच्छा उचित सीमा से बाहर न जा सके। इन नियमों के अनुकूल संयोग करने का नाम ही विवाह है और गृहस्थाश्रम के मूलाधार—विवाह के ही नियम हैं।

यदि हम संसार की वर्तमान स्थिति पर विचार करें, तो वहाँ भी हमको यही नियम कार्य करता हुआ दिखाई पड़ता है। जब किसी पुरुष की लड़की १२ या १४ वर्ष की होती है, तो वह कहता है कि अब यह लड़की विवाह के योग्य हो गई—इसका विवाह कर देना चाहिए। यदि उस लड़की की आयु १६ या १७ वर्ष की हो जाती है और विवाह करने में कुछ विघ्न उपस्थित होते हैं, तो वह

बड़ा चिन्तित होता है; क्योंकि वह जानता है कि पुरुष से मिलने की स्वाभाविक इच्छा से प्रेरित होकर, जिसको काम-चेष्टा के नाम से पुकारते हैं, कहीं वह नियम-भङ्ग न कर बैठे। वहाँ पिता को यह पूछने की आवश्यकता नहीं कि लड़की सन्तानोत्पत्ति की इच्छा रखती है या नहीं! सम्भव है कि लड़की को मैं भी सन्तान की चाह न हो; परन्तु उसके पिता को भली-भाँति मालूम है कि यदि लड़की का विवाह न किया गया, तो काम-चेष्टा के वशीभूत होकर वह नियमों को उल्लङ्घन कर देगी। इसी प्रकार माता-पिता अपने पुत्र का भी विवाह करते हैं। उनको भय होता है कि यदि अमुक समय तक विवाह न किया गया, तो लड़का नियम-विरुद्ध रीतियों से स्त्री-प्रसङ्ग की सामग्री इकट्ठी कर लेगा।

बहुत से लोग कहेंगे कि धर्म तो यही बताता है कि केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए ही विवाह किया जाय और बिना सन्तानोत्पत्ति की इच्छा के विवाह करना पाप है; परन्तु ऐसा कहने ने धर्म के केवल एक अङ्ग पर विचार किया है—सब अङ्गों पर नहीं! इसमें सन्देह नहीं कि विवाह का मुख्य उद्देश सन्तानोत्पत्ति ही है—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है; परन्तु केवल इस मुख्य उद्देश को ही दृष्टि में रख कर समस्त मनुष्य कार्य नहीं कर सकते। उनकी स्वाभाविक शक्ति को देखना और उसके अनुकूल उनके कर्त्तव्य का निश्चय करना भी तो धर्म के अन्तर्गत ही है। धर्मशास्त्रों के संस्थापक इस बात पर बड़ा ध्यान रखते हैं कि जिस धर्म का प्रतिपादन किया जा रहा है, उस पर चलने की मनुष्यों में शक्ति भी है या नहीं। उदाहरण के लिए हम मनु जी का प्रमाण

देते हैं— -धर्म- की आज्ञा है कि हिंसा करना सब से अधिक पाप है। मनुष्य का धर्म है कि चींटी क्या, इससे भी छोटे जन्तुओं को पीड़ा न दे ; परन्तु मनु जी ने इस बात पर विचार किया होगा कि मनुष्य को खाना पकाने, झाड़ू देने, चलने-फिरने आदि में ी इच्छा के विरुद्ध भी कुछ न कुछ हत्या करनी ही पड़ती है— चाहे अनजाने ही क्यों न हो—इनसे सर्वथा बचा रहना उसकी शक्ति से बाहर है ; इसीलिए उन्होंने इसके प्रायश्चित के लिए पञ्च-यज्ञ महाविधि का विधान किया है। इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य अपनी आय का सम्पूर्ण भाग दान दे या अधिकांश दान दे दिया करे, तो अच्छा ही है। बहुत से पुरुष हैं, जो अपनी आय का बहुत-कुछ भाग दरिद्रों और पीड़ितों की सहायता में दे देते हैं ; तथापि सर्वसाधारण के लिए यह नियम रख देना उनकी शक्ति से बाहर हो । अतः शास्त्र ने आज्ञा दी है कि अपनी आय का दशांश दान कर दिया करो। कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म अर्थात् कर्त्तव्य के निश्चय करते समय कर्त्ता की शक्ति पर पूर्ण विचार आवश्यक है।

धर्म के मुख्यतः दो अङ्ग हैं—एक तो उद्देश और दूसरा उस उद्देश की पूर्ति का साधन। इन साधकों के दो भाग हैं :—

(१) उस उद्देश तक पहुँचने के लिए किस मार्ग पर चलना चाहिए ?

(२) उस मार्ग से भटक न जायँ, इस बात के लिए क्या-क्या कार्य करना चाहिए ?

इस प्रकार जो कार्य मनुष्य को अधर्म से बचाते हैं, वह भी धर्म में ही गिने जाते हैं। इसके लिए एक दृष्टान्त दिया जाता है। सभी जानते हैं कि युद्ध कोई अच्छी वस्तु नहीं है; क्योंकि इससे मनुष्य-जाति को अनेक प्रकार के भयङ्कर कष्ट उठाने पड़ते हैं; परन्तु राजा के लिए विशेष अवस्थाओं में युद्ध करना इसलिए धर्म माना गया है कि युद्ध बहुत से अधर्म और अन्यायों को रोकता है। किसी-किसी अवस्था में तो राजा के लिए युद्ध न करना पाप बताया गया है, क्योंकि युद्ध के न होने से अत्याचार अपनी सीमा से बढ़ जाते हैं और उसके बिना उनका सुधार हो ही नहीं सकता।

इसी प्रकार यद्यपि आयु पर्यन्त ब्रह्मचारी तथा जितेन्द्रिय रहना धर्म है; परन्तु ऐसा करना सर्वसाधारण की शक्ति के बाहर है। एक करोड़ मनुष्यों में एक भी मुश्किल से मिलेगा, जो आयु पर्यन्त ब्रह्मचारी रह सके। विवाह करने से अनियमित काम-चेष्टा की रोक होती है, इसलिए यह भी धर्म में ही सम्मिलित है। जिस प्रकार यह सिद्ध है कि राजा को युद्ध उसी करना चाहिए, जब अन्याय रोकने के लिए उसकी आवश्यकता हो और मनुष्य की प्रकृति इस प्रकार की है कि राजा को युद्ध करने के लिए मजबूर होना ही पड़ता है; इसी प्रकार नियम-विरुद्ध काम-चेष्टा तथा पाशविक व्यवहार को रोकने के लिए विवाह की आवश्यकता पड़ती है। यह विवाह उस समय तक न्यायसङ्गत है, जब तक उससे दो कार्य सिद्ध हो सकें :—

(१) सन्तानोत्पत्ति ;

(२) अनियमित काम-चेष्टा या व्यभिचार का रोकना।

मनुष्य की प्रवृत्ति बताती है कि यदि विवाह-प्रणाली न हो, तो व्यभिचार बहुत बढ़ जाय और इसके साथ यह बात भी, इतिहास तथा मनुष्य-जाति की गति पर दृष्टि डालने से, विदित हो जाती है कि यदि विवाह के इतने कड़े नियम बनाए जायँ, जिनके भीतर रहना सर्वसाधारण की शक्ति के बाहर हो, तब भी व्यभिचार बढ़ता है। यह दो प्रकार से होता है :—

(१) गुप्त रीति से व्यभिचार करना ; और

(२) नियमों को जान-बूझ कर तोड़ना।

सब जानते हैं कि चोरी करना पाप और महापाप है, परन्तु जब सामाजिक नियम इतने कड़े हो जाते हैं कि लोगों को खाने को नहीं मिलता; तो वह गुप्त या प्रकट रीति से चोरी करने लगते हैं और भयङ्कर से भयङ्कर दण्ड तथा जेलख़ाने भी इनको रोक नहीं सकते।

किसी मनुष्य को नियम में रखने के लिए दो बातों की - है :—

(१) नियम इतने भी न हों कि उनको नियम न कहा जा सके ; और

(२) इतने कड़े भी नहीं, जिन पर चलना अधिकांश जन-संख्या की शक्ति के नितान्त बाहर हो।

यदि नियम केवल नाम-मात्र ही हों अर्थात् यदि विवाह का ऐसा नियम बना दिया जाय कि कोई स्त्री किसी पुरुष के साथ जब चाहे और जहाँ चाहे, बिना किसी विशेष सीमा के सम्भोग कर सके; तो यद्यपि यह भी एक प्रकार का नियम है, तथापि वास्तविक दृष्टि

से देखा जाय, तो यह नियम केवल कथन ही है; इसका होना न होना बराबर है अर्थात् यदि ऐसा नियम न होता, तो भी वही परिणाम निकलता, जो इस नियम के होने से निकलता है।

परन्तु उसके साथ ही यदि केवल यह नियम बना दिया जाय कि जब तक सन्तान की इच्छा और आवश्यकता सिद्ध न हो, उस तक स्त्री या पुरुष को परस्पर सम्बन्ध करने की आज्ञा ही न दी जाय, तो यह नियम सर्वसाधारण की शक्ति से बाहर है और हज़ार में एक मनुष्य का भी इस पर चलना सम्भव नहीं! अतः इस कड़े नियम से भी वही परिणाम निकलेगा, जो उसके न होने से निक । अर्थात् या तो लोग गुप्त रीति से इस नियम का उल्लङ्घन करेंगे या इस नियम से तङ्ग आकर खुल्लमखुल्ला इ सामना करेंगे और अपने सुभीते के लिए अन्य नियम बना लेंगे। इसलिए इन दोनों के मध्यवर्त्ती एक ऐसा नियम बना दिया गया है कि यदि स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य के पालन में असमर्थ हों, तो वह विवाह करके सन्तानोत्पत्ति कर लें अर्थात् अपनी काम-चेष्टा को इतना सन्तुष्ट कर लें, जिससे मुख्य-उद्देश अर्थात् सन्तानोत्पत्ति की पूर्ति हो जाय। लोक में भी यही देखने में आता है—स्त्री और पुरुषों के विवाह इसी उद्देश को ध्यान में रख कर किए जाते हैं।

कुछ लोगों का विचार है कि विवाह का एक मात्र उद्देश स्त्री-पुरुष के प्रेम की वृद्धि है; परन्तु यह केवल वाग है। जब हम कहते हैं कि गृहस्थ-प्रेम का आधिक्य ही विवाह का प्रयोजन है तो हम केवल शब्दों की रोचकता पर ही मुग्ध होकर कहते हैं—उनके अर्थों पर गम्भीर दृष्टि नहीं डालते। वस्तुतः प्रेम-वृद्धि से भी

वही तात्पर्य है, जो ऊपर कहा गया है अर्थात् स्त्री और पुरुष में परस्पर संयोग की जो स्वाभाविक इच्छा है, उसको नियम के अनुकूल रखना ! सम्भव है कि कोई ऐसा आक्षेप करने लगे कि तुमने प्रेम जैसे उच्च भाव को काम-चेष्टा जैसे निकृष्ट भाव का समानार्थक समझ लिया ; परन्तु यह बात नहीं है ; दाम्पत्य प्रेम का वही अर्थ नहीं होता, जो भाई-बहिन के प्रेम, पिता-पुत्र के प्रेम एवं माता और पुत्री के प्रेम का होता है। वस्तुतः प्रेम शब्द पर पूर्ण विचार करने से ही पता है कि जब हम यह कहते हैं कि अमुक स्त्री अमुक पुरुष से प्रेम करती है या अमुक पुरुष अमुक स्त्री से प्रेम करता है, तो इसका वही तात्पर्य नहीं होता, जो उस समय होता है, जब हम यह कहते हैं कि अमुक पुरुष अपने पुत्र से प्रेम करता है। रही उच्च भाव या नीच भाव की बात ; उसके विषय में केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि परमात्मा ने मनुष्य को जो-जो भाव दिए हैं, वह सभी उच्च और पवित्र हैं। केवल उनका सीमा से बढ़ जाना या दुष्ट-प्रयोग करना ही नीचता है ! जिस प्रकार स्त्री और पुरुष के प्रेम को सीमा से बढ़ जाने या दुरुपयोग की दशा में काम-चेष्टा के दुष्ट नाम से सम्बोधित करते हैं, उसी प्रकार पिता और पुत्र के प्रेम को सीमा से बढ़ जाने या दुरुपयोग करने की दशा में मोह जैसे दूषित नाम से पुकारते हैं। बात वही है, उसमें कुछ भेद नहीं पड़ता !!



दूसरा अध्याय



और पुरुष के अधिकार एवं व्य

अब प्रश्न यह है कि विवाह के उपर्युक्त प्रयोजनों को लक्ष्य में रखते हुए स्त्री और पुरुष के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों में कितना साधर्म्य वा वैधर्म्य है? इसमें सन्देह नहीं कि स्त्री और पुरुष की शारीरिक आकृति तथा आन्तरिक स्वभाव में अनेकों समानताएँ और अनेकों भेद हैं; परन्तु यदि विचार किया जाय, तो समानताएँ अधिक और भेद कम हैं। भेदों का होना तो स्वाभाविक है; क्योंकि यदि भेद न होता, तो स्त्री-पुरुष नाम ही अलग-अलग न होते। पदार्थ की भिन्नता से ही पदों की भिन्नता है; परन्तु प्रायः देखा जाता है कि इस भेद को, जहाँ तक इसका सम्बन्ध कर्त्तव्य और अधिकार से है, अत्युक्ति के साथ कथन किया गया है। नीम और आम के वृक्ष यद्यपि भिन्न-भिन्न होते हैं, तथापि इस भेद के कारण उनके पालन-पोषण की आवश्यकता में भेद नहीं होता। जिस प्रकार नीम को जल-वायु तथा प्रकाश की आवश्यकता है, उसी प्रकार आम को; परन्तु स्त्री और पुरुष में तो इतना भी भेद नहीं, जितना नीम और आम के वृक्षों में है। स्त्री और पुरुष के शरीर की आवश्यकताएँ एक सी हैं। भोजन-छादन दोनों के हैं या कम से कम एक से होने चाहिए।

प्रायः भारतवर्ष तथा दो-एक अन्य देशों में स्त्रियों के लिए शुद्ध वायु तथा प्रकाश की इतनी आवश्यकता नहीं ी जाती, जितनी पुरुषों के लिए ! सभी पुरुष जानते हैं कि सूर्य के प्रकाश के बिना हमारा जीवन ही दुस्साध्य हो जाता है। न केवल नेत्रों के लिए ही सूर्यदेव की सहायता की आवश्यकता है; किन्तु शरीर के समस्त अवयवों की वृद्धि के लिए सूर्य के प्रकाश की ज़रूरत है। परन्तु कुछ महानुभावों ने स्त्रियों के लिए इसकी आवश्यकता ही नहीं समझी और उनका नाम "असूर्यंपश्या" रख दिया। यदि केवल नाम का ही प्रश्न होता, तो कुछ हानि नहीं थी। वस्तुतः यदि देखा जाय, तो अधिकांश में स्त्रियाँ ईश्वर के इस अमूल्य दान से वञ्चित रक्खी जाती हैं और उनकी पञ्चज्ञानेन्द्रियों के गोलकों को घूँघट से छिपा कर उनकी इन्द्रियों को कलुषित अथवा कुण्ठित कर दिया जाता है। इससे उनके शरीर को कितनी हानि होती है, इसका परिणाम उस मृत्यु-संख्या से जाना जा सकता है, जो दिन प्रति दिन स्त्री-जाति में होती है *। गत युद्ध-ज्वर के अवसर पर

* सन् १९११ ई० के अखिल भारतीय मनुष्य-गणना-विवरण (Census Report of India, 1911, Vol. I. Pt. I) के पृष्ठ १६६ के चित्र से विदित होता है कि युवती स्त्रियाँ युवा पुरुषों की अपेक्षा अधिक मरती हैं। बङ्गाल प्रान्त में ११ वर्ष से लेकर १२ वर्ष की आयु तक, बम्बई में १८ और ३५ वर्ष के बीच में, ब्रह्मा में २४ और ४४ वर्ष के बीच में, मद्रास में ७ और ३० वर्ष आयु के बीच में, संयुक्तप्रान्त में ९ और १७ वर्ष के बीच में स्त्रियों की मृत्यु अधिक होती है।

(१६१८ई०) देखा गया था कि स्त्रियाँ पुरुषों से कई गुनी अधिक मरीं ! यह क्यों ? केवल इसलिए कि उनके शरीर पुष्कल और पुष्कल वायु के न होने के कारण बहुत दुर्बल हो गए हैं और वह भयङ्कर रोगों का सामना नहीं कर सकते । की उच्च-जातियों में इन अत्याचारों की मात्रा अधिक पाई जाती है और जो स्त्री सब से कम वायु तथा प्रकाश का सेवन करे, उसे सब से उच्च समझा है। मुझे केवल अपने घर का अनुभव है। मेरी पूज्य माता जी बताती हैं कि ी के में बहुएँ सूर्योदय से पूर्व ही कोठे के भीतर चली जाती थीं और वहीं किवाड़ों के भीतर । कार्य करती रहती थीं, केवल सूर्यास्त के पश्चात् ही उनको बाहर अर्थात् तक आँगन में आने की होती थी। वह में "असूर्यपश्या" थीं और इस निमय का अपवाद केवल उनके के घर ही हो स था। मेरी एक दादी के लिए प्रसिद्ध है कि थोड़े दिन ससुराल के कड़े नियमों का पालन करने के पश्चात् उनका शरीर इतना पल गया था कि चुकटी से चमड़ा नोंच लिया जा सकता था। इस पर उनके पिता की ओर से बड़ा आन्दोलन हुआ और उसका केवल इतना परिणाम निकला कि मेरे प्रपितामह सायङ्काल के यह आज्ञा दे जाया करते थे कि बहुओं को रात्रि के कोठे की , पर भ्रमण करने के लिए भेज दिया जाया करे। यद्यपि ऐसे कड़े नियम भारतवर्ष में देखने में नहीं आते, तथापि यहाँ के उच्च वर्गों में भी इससे कुछ ही कम स्त्रियों पर किया जाता होगा और जिस अँधेरे में नित्य-प्रति रहने वाले

नेत्रों को प्रकाश से चकाचौंध मालूम होता है, उसी प्रकार स्त्रियों को परम्परा से घर के भीतर रहते-रहते ऐसा स्वभाव हो गया है कि प्र से भली प्रकार लाभ उठाना उनके लिए दुर्लभ है। परन्तु यह बड़ी भारी भूल है; क्योंकि स्त्रियों के शरीर भी वायु और प्रकाश में उसी प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते हैं, जैसे पुरुषों के! अतएव कोई ऐसा कारण नहीं है कि स्त्रियों के शरीर को वृद्धि की आवश्यकता न हो।

जिस प्रकार स्त्रियों तथा पुरुषों की शारीरिक आवश्यकताएँ समान हैं, उसी प्रकार ी मनोवृद्धि तथा आत्मिकोन्नति में दो बातें सम्मिलित हैं—प्रथम मस्तिष्क-विकास; द्वितीय हृदय-विकास! मस्तिष्क-विकास का साधन विद्या है और हृदय-विकास का साधन आचार की शुद्धता! बिना विद्या के मस्तिष्क का विकास हो नहीं हो सकता और यदि मस्तिष्क विकसित न हो, तो स्त्रियाँ पशुवत् रह जाती हैं। ज्ञान के से हृदय का विकास भी नहीं हो सकता। हृदय का विकास सदाचार की शुद्धता से ही होता है और तथा विद्योपार्जन का घनिष्ट सम्बन्ध होना चाहिए। सदाचार व्यावहारिक है और विद्या काल्पनिक! व्यावहारिक तथा काल्पनिक उन्नति समकालीन होती है। अतः जो लोग स्त्रियों के लिए आचार की आवश्यकता समझते हैं; परन्तु उनको से वञ्चित रखना चाहते हैं, वह सत्र के को रेत की नींव पर बनाना चाहते हैं। जिस यदि शरीर में एक हाथ बलिष्ठ हो जाय और शेष रह जायँ, तो ऐसे शरीर को रोग-ग्रसित है, उसी प्रकार

शरीर, मस्तिष्क तथा हृदय में से किसी एक या दो का अत्यन्त बढ़ जाना और शेष का बलहीन रह जाना मनुष्य की रुग्ण-अवस्था का सूचक है। तमाशा यह है कि स्त्रियों के यह तीनों अङ्ग ही अपूर्ण हैं। शरीर तो निर्बल है ही ! मस्तिष्क, विद्याभाव के कारण वृद्धि पाने से रुक गए। शरीर और मस्तिष्क के न रहते हुए सदाचार की उन्नति की आशा व्यर्थ तथा असम्भव है !

बहुधा लोगों का कथन है कि विद्या न पढ़ने से सदाचार सुरक्षित रहता है ; परन्तु यह लोग सदाचार का वास्तविक अर्थ नहीं जानते। यदि सदाचार इसी वस्तु का नाम है, तो पत्थर तथा लकड़ी सब से अधिक सदाचारी ठहरते हैं, क्योंकि यह झूठ नहीं बोलते और न चोरी करते हैं !

सदाचार का मूलाधार ईश्वर-पूजा है, जिससे को सर्वथा रक्खा गया है और इस प्रकार के कपोल-कल्पित सिद्धान्त गढ़ लिए हैं कि स्त्री को पति-भक्ति के सिवाय और कुछ कर्त्तव्य ही नहीं है*। इसमें सन्देह नहीं कि स्त्री के लिए पति-भक्ति एक आवश्यक वस्तु है ; जैसा कि कहा है :—

सा भार्या या गृहे दक्षा, सा भार्या या पतिव्रता।
सा भार्या या पतिप्राणा, सा भार्या या प्रजावती॥

परन्तु पति-भक्ति पर इतना बल देना कि सब छूट जायँ, बड़ी भूल है। पति-भक्ति एक आवश्यक

* न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च।
नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात्॥

व्यवहार है, जिस पत्नी-भक्ति पुरुष के लिए एक सामाजिक कर्त्तव्य है ; परन्तु क्या पुरुष का सम्बन्ध इस संसार में केवल स्त्री से ही है और स्त्री का केवल पति से ही ? क्या स्त्री की आत्मा का परमात्मा से कुछ भी सम्बन्ध नहीं जैसा कि पुरुष की आत्मा का है ? में बात यह है कि पुरुषों ने स्त्रियों पर अत्याचार करने के निमित्त इस प्रकार के सिद्धान्त चला दिए हैं कि वह अपने पति की ही सेवा-शुश्रूषा में लगी रहें और ईश्वरोपासना पर ध्यान न दें, जबकि पति लोगों के लिए स्त्री-व्रत की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती।

अब प्रश्न यह है कि यदि इन सब में स्त्री-पुरुष समान ही हैं, तो क्या इन अधिकारों और ों में कुछ भेद भी है ? हाँ, है अवश्य ; परन्तु इसके कारण उनके (स्त्रियों के) अधिकार बढ़ ही जाते हैं, कुछ कम नहीं होते। तो स्वभावतः स्त्रियाँ शारीरिक बल में कुछ न्यून होती हैं, जिसके यह है कि समाज की ओर से उनकी रक्षा के लिए ऐसे नियम बनाए जायँ, जिनसे का अधिक बलवान् भाग अर्थात् पुरुष इन पर ार न कर सके ! दूसरे यह कि उनका हृदय कोमल और प्रेमयुक्त होता है ; अतः के -पोषण का अधिक भार माता पर है, न कि पिता पर ! परन्तु इससे स्त्रियों के अधिकार बढ़ ही जाते हैं—कम नहीं होते !

प्रायः देखा गया है कि य और सभ्य जातियों में यही भेद है कि जातियों में शारीरिक बल ही अधिकार होता है—वहाँ 'जिसकी लाठी उसी की भैंस' होती है। कोई मनुष्य किसी

वस्तु पर अधिकार करने के लिए इससे अधिक कारण नहीं कि वह बलवान् है और उसे ले सकता है। किसी अमुक कार्य के औचित्य और अनौचित्य के लिए भी इससे अधिक नहीं कि वह शारीरिक बल र है और इसलिए उसके सम्मुख किसी की शक्ति नहीं कि उसके अनुचित कार्य को धर्म-विरुद्ध कहने का साहस कर सके! प्राचीन यूरोप की असभ्य जातियों में यह प्रथा प्रचलित थी कि यदि कोई पुरुष किसी दूसरे को अत्याचारी, झूठा या बेईमान सिद्ध करना चाहता था, तो उससे कुश्ती . था। जो हार जाता, उसी का पक्ष गिर जाता था। समस्त स्मृति और धर्म-शास्त्र की एक नींव शारीरिक शक्ति पर थी; परन्तु सब जानते हैं कि ऐसी प्रथा असभ्यता की जड़ है और इसमें प्रकार की उन्नतियाँ रुक कर मनुष्यों के व्यक्तिगत और सामाजिक अधिकार सुरक्षित न रहने से कर्त्तव्यता में भी बाधा पड़ती है। इस के में कोई पुरुष अपने को अपना ही नहीं पुकार स , क्योंकि है कि उससे ान् पुरुष माल छीन ले और उसे कहने लगे। इसी प्रकार जो बलवान् पुरुष होता है, वह मन- है और उससे बलवान् पुरुषों को आक्षेप करने का अधिकार ही नहीं!

सभ्य जातियों की गति इससे भिन्न है। वह ऐसे नियम ी हैं, जिनको करता हुआ कमज़ोर से कमज़ोर मनुष्य भी अपने को सुरक्षित रख । और अपने नियमानुकूल कर्म को धर्म और अपने से बलवान् के नियम-विरुद्ध कार्य को अधर्म और उसको नीचा दिखा स है!

जातियों में कमज़ोर मनुष्यों को बलवान् लोग गुलाम बनाते और उनसे मन-माना लेते हैं। जातियों में किसी का किसी पर ी इच्छा के बिना अधिकार नहीं है। सभ्य जातियों में एक छोटा सा पैसे हाथ में लिए है और यदि कोई उसके पैसे छीने, तो दण्डनीय होता है; परन्तु असभ्य जातियों में ठीक नहीं! जो छीन सके वही अधिपति !!

हम कह चुके हैं कि स्त्रियों में शारीरिक बल पुरुषों की अपेक्षा कम होता है; इसलिए जातियों में ुक्त नियम के अनुसार उनको नीच और अनादर की दृष्टि से देखा हैं। बहुत सी ों में स्त्रियों को बलात् पकड़ कर व्याह लेने की प्रणाली है। ऑस्ट्रेलिया के निवासी यदि किसी जाति की स्त्री को बलात्कार लेना चाहते हैं, तो वह उसके डेरे के चारों ओर घूमते हैं। वह पाते हैं कि वह स्त्री बिना किसी रक्षक के बैठी है, तो उस पर कूद पड़ते, भाले से उसे कष्ट देते, बाल कर घसीटते और जङ्गल में ले जाते हैं। जब वह होश में आती है, तो कहते हैं कि तू हमारे लोगों में चल! वहाँ उन सबकी उपस्थिति में सम्भोग करते हैं; क्योंकि उनके लिए स्त्री भेड़-ी के न है। कभी-कभी दो पुरुष मिल कर यह करते हैं कि किसी जाति की स्त्री की छाती पर एक बर्छी का सिरा निकट ले है और दूसरा बालों पर भाले का सिरा लगाता है। जब लड़की जागती है, तो डरती-काँपती हुई चीख़ तक नहीं मार सकती और वह उसको पकड़ कर ले जाते हैं, किसी वृक्ष से बाँध कर लटका देते हैं और कष्ट देने के पश्चात् एक उसको अपनी

स्त्री लेता है। न्यूगिनी टापू के पापन लोग जब किसी लड़की को अकेले में पाते हैं, तो सहवास करके उसे ी स्त्री बना लेते हैं! फ़िजी के टापू में भी यही प्रथा है। कभी-कभी ऑस्ट्रेलिया वाले तबादले की शादियाँ करते हैं अर्थात् अपनी बहिन या किसी सम्बन्धी को देकर उसके बदले में दूसरी स्त्री को विवाह के लिए ले लेते हैं, मानो वह कोई निर्जीव वस्तु है। हाटनटाट लोग यह समझते हैं कि स्त्रियाँ सम्पत्ति हैं। इसलिए वह चुरा कर उनसे विवाह कर लेते हैं। फ़िजी वाले अपनी माताओं को निर्जीव वस्तु समझ कर मारते थे और अपनी स्त्रियों को वृक्षों से बाँध कर कोड़े ते थे कि उनका देखें! ऑस्ट्रेलिया में यँ मारी और की जाती थीं और जो पति चाहते थे* वह अपनी स्त्रियों को कर खा लेते थे। फ़िजी का मनुष्य जिसका लूटी था, अपनी स्त्री को कर खा गया!!

के लिए यों की इच्छा को जानने की तो भारतवर्ष में भी नहीं समझी जाती। को स्त्री पर समस्त अधिकार हैं। वह मार-पीट है, छोड़ है। एक स्त्री के होते हुए ों से सम्बन्ध जोड़ है। स्त्री को मनमाने करने के लिए बाधित कर है। उसके सम्बन्धियों को तिरस्कृत कर सकता है; परन्तु स्त्री का यही कर्त्तव्य है कि वह अपने पति और उसके सम्बन्धियों की अयोग्य और अधर्मी होते हुए भी सेवा-शुश्रूषा किया करे!

वैदिक सभ्यता के में प्राचीन-भारत का यह नियम नहीं

---

* Evolution of marriage, pp. 90, 93 and 106.

था। उस वह स्त्रियों को अधिक मान और आदर की दृष्टि से देखता था! मनुस्मृति में लिखा है:—

यत्रनार्यं पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

—मनु० अ० ३, श्लो० ५६

अर्थात्—"जहाँ स्त्रियों का आदर होता है, वह देवस्थान और जहाँ स्त्रियों का अनादर होता है, वहाँ सब काम निष्फल हो जाते हैं।"

स्त्रियों के आदर का विशेष नियम इसलिए गया है कि याँ : निर्बल होने के वह स्वयं तो आदर नहीं सकतीं; अतः समाज के नियम की पड़ती है, जिससे यदि कोई पुरुष उनका आदर न करे, तो द्वारा दण्डनीय हो। इसलिए विवाह के - में जो अधिकार स्त्रियों को दिए गए हैं, वही पुरुषों को भी! अर्थात् जिस प्रकार विवाह में पुरुष की की है, उसी स्त्री की इच्छा की भी! जिस स्त्री का कर्त्तव्य है कि अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी से संयोग न करे, उसी प्रकार का भी यही कर्त्तव्य है कि अपनी स्त्री को छोड़ कर किसी से · न करे। "मातृवत् परदारेषु" अर्थात् "पराई स्त्री को माता के समझना चाहिए" यह सुनहरा नियम सभ्य- न का है और उस पर चलना क है। जिस पर-पुरुष-गमन से स्त्री कलुषित, व्यभिचारिणी तथा दण्डनीया समझी जाती

है* उसी प्रकार पर स्त्री-गमन से पुरुष भी कलुषित, व्यभिचारी तथा दण्डनीय माना है— स्त्रियों के लिए सदाचारिणी होना आवश्यक है, उसी र पुरुषों के लिए भी सदाचार की ज़रूरत है!

आजकल जब हम हिन्दू-समाज की व्यावहारिक दशा पर दृष्टि डालते हैं, तो बड़ा भारी भेद पाते हैं। यद्यपि शास्त्रों में जहाँ कहीं धर्म के लक्षणों का विधान है, वहाँ स्त्री-पुरुष दोनों के लिए है। उदाहरण के लिए मनु जी के कहे हुए दस (मनु० अध्याय ६, श्लोक ९२) अर्थात् धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध पुरुषों के लिए उसी पालनीय हैं, जैसे स्त्री के लिए! महात्मा पतञ्जलि ने योग-दर्शन में यम, नियम, आसन, प्राणायाम के उपदेश करते हुए लिङ्ग-भेद नहीं किया। सत्य यदि स्त्री के लिए कर्त्तव्य है, तो पुरुष के लिए भी! यदि क्रोध पुरुष के लिए हानि है, तो स्त्री के लिए भी! यही इन्द्रिय-निग्रह आदि की दशा है। इससे होता है कि शास्त्र की दृष्टि में स्त्री-पुरुष के कर्त्तव्य भिन्न नहीं हैं।

यहाँ एक बात और भी विशेषतः विचारणीय है—अर्थात् स्त्री-

---

* व्यभिचारात्तु भर्त्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्।
शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते॥

—मनु० अ० ५, श्लो० १६४

अपत्यलोभाद्यातु स्त्री भर्त्तारमतिवर्त्तते।
सेह निन्दामवाप्नोति पति लोकाच्चहीयते॥

—मनु० अ० ५, श्लो० १६१

पुरुष दोनों की तो निराकार और लिङ्ग-रहित ही है। लिङ्ग-भेद शरीर की अपेक्षा से है और इन सब का उद्देश एक ही है अर्थात् मोक्ष-प्राप्ति! यही कहता है और इसी के साधनों का प्रतिपादन है। अब यदि रीति से विचार किया जाय, तो मोक्ष के साधन एक ही हैं और यह भी नियम नहीं है कि पुरुष स्त्री की अपेक्षा या स्त्री पुरुष की अपेक्षा मोक्ष-पद से अधिक निकट है। मोक्ष-पद दोनों से ही की दूरी पर है। महाकवि भवभूति का है कि—

गुणाः पूज्यस्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः॥

—उत्तर रामचरित, अङ्क ४

गुणियों के गुण पूज्य होते हैं, लिङ्ग या आयु नहीं! कोई या युक्ति यह नहीं बताती कि स्त्री को मोक्ष पाने के लिए पहले मनुष्य की योनि में पड़ता है, तत्पश्चात् मोक्ष होती है। अब मोक्ष-प्राप्ति के अर्थात् यम-नियम से समाधि तक कोई भी ऐसा नहीं है, जो पुरुष के लिए विधि और स्त्री के लिए निषेध जा सके।

अब देखना चाहिए कि जब अन्य लौकिक तथा पारलौकिक अधिकार और कर्त्तव्य स्त्रियों और पुरुषों के एक से हैं, तो विवाह के सम्बन्ध में क्यों भेद होगा। कुछ लोग कहेंगे कि विवाह में स्त्री और पुरुष दोनों का संयोग होता है और दो भिन्न-भिन्न लिङ्गों के व्यक्ति एक विशेष कार्य के अर्थ नियोजित होते हैं। दो भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्तियों का मिलना ही है कि अधिकार

और कर्त्तव्य उनके भिन्न-भिन्न होंगे; परन्तु यह नहीं है। हम को नीचे लिखे अधिकारों पर विचार है :—

(१) विवाह के लिए दोनों की इच्छा की आवश्यकता है एक की ?

(२) क्या एक का दूसरे पर आधिपत्य है ? यदि है, तो किसका और यदि नहीं है, तो क्यों ?

(३) क्या एक स्त्री एक में कई पुरुषों से विवाह कर सकती है ?

(४) एक पुरुष एक में कई स्त्रियों से विवाह कर स है ?

(५) क्या एक पुरुष मृत-स्त्री के पीछे स्त्री से विवाह कर सकता है ?

(६) क्या एक स्त्री -पति के पीछे ों से विवाह कर ाी है ?

सब से पहिले हम इच्छा के विषय में मीमांसा करते हैं। सब पर विदित है कि विवाह एक प्रकार का विशेष है, जो स्त्री और पुरुष के बीच में होता है। यह न केवल शारीरिक न्ध ही है; किन्तु मानसिक और आत्मिक भी ! परन्तु कोई भी मानसिक सम्बन्ध पूर्ण नहीं हो , जब तक का इच्छा पर नहीं। सम्बन्ध बलात्कार भी हो सकता है, जैसा बहुधा जङ्गली जातियों अथवा कामी पुरुषों में हुआ है; परन्तु इसको विवाह नहीं कह सकते और प्रभाव गृहस्थ-संस्था तथा सन्तानोत्पत्ति दोनों के बुरा पड़ता है। गृहस्थ- के

लिए प्रेम की महती ता है। यह प्रेम बिना इच्छा के हो ही नहीं । रही नोत्पत्ति ! उसके विषय में यह बात है कि जब बच्चा गर्भ में होता है, तो उसकी के आचार-व्यवहार तथा मानसिक भावों का बच्चे के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः बच्चे का मस्तिष्क के मस्तिष्क से ही है। इसीलिए में लिखा है :—

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे ।
वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदःशतम् ॥

—आ० मं० १।५।१७

अर्थात्—" -पिता के से बच्चे का शरीर । है।"

अब यदि की इच्छा के विरुद्ध सम्बन्ध हुआ है और माता का मन है, तो बच्चे का मन भी उसी प्रकार का होगा। कई डॉक्टरों का है कि यदि माता शोकमय हो और बच्चे को दूध पिलावे, तो बच्चे का स्वास्थ्य वि जाता है। जङ्गली मनुष्यों की के जङ्गली, क्रूर तथा क्रो होने का एक कारण यह भी है कि जब वह अपनी । के गर्भ में होते हैं, उस उनके पिता उनकी पर अनेक अत्याचार करते हैं; जिनके गर्भस्थ सन्तान का मस्तिष्क भी तद्वत् हो जाता है। इसलिए सिद्ध है कि स्त्री-पुरुष दोनों की से विवाह होना चाहिए।

अब हम दूसरे को लेते हैं अर्थात् क्या एक का दूसरे पर आधिपत्य है? यदि है, तो और यदि नहीं है, तो क्यों? क्या गृहस्थ में स्त्री और पुरुष का पद है या असमान? इस विषय में भिन्न-भिन्न जातियों में मतभेद है। असभ्य

जातियों में तो स्त्री सदा ही पुरुष की पद-दलित चेरी समझी जाती है, जिसके कुछ उदाहरण हम ऊपर दे चुके हैं; परन्तु पाश्चात्य जातियों में किसी-किसी अंश में इससे विपरीत है। अङ्गरेज़ी भाषा में स्त्री को पुरुष का (Better-half) बेटर हाफ़ अर्थात् उत्तमार्द्ध मानते हैं अर्थात् यदि गृहस्थ के दो भाग किए जाएँ, तो स्त्री उत्कृष्टार्द्ध है और निकृष्टार्द्ध (Worse-half) बचा वह पुरुष है। इसलिए यूरोपवासी स्त्री का अधिक मान करते हैं; परन्तु यूरोप के इस ऊपरी व्यवहार से प्रत्येक अंश में यह नहीं कहा जा सकता कि यूरोप में स्त्री-पुरुष से उत्तम ही मानी जाती है। यूरोप के इस व्यवहार को वास्तविक रूप देखने के लिए यूरोप के इतिहास पर दृष्टि डालनी चाहिए। यूरोप में पहिले स्त्रियों का आदर नहीं होता था। बहुत सी जातियाँ बलात् विवाह करती थीं। मध्यकालीन यूरोप के लोग स्त्रियों में जीव नहीं मानते थे। इसके पश्चात् लोग इनको दासी-मात्र समझने लगे। अङ्गरेज़ी भाषा का लेडी (Lady) शब्द जो आजकल केवल उच्च श्रेणियों की स्त्रियों के लिए ही प्रयुक्त होता है, प्रथमतः आटा गूँधने वाली का वाचक था अर्थात् पुरुष अपनी रोटी बनाने के लिए एक चेरी रख लेता था, जिसे लेडी (Lady) कहते थे और उसका घर पर कुछ अधिकार न था। जब यूरोप में अर्द्ध-सभ्यता का

आया, उस समय भी स्त्रियों की दशा तद्वत् ही रही। पुरुष पढ़ने लगे; परन्तु स्त्री विद्या से वञ्चित ही रहीं। ईसाई धर्म के प्रचार ने भी स्त्री को उच्च अवस्था प्राप्त कराने में कुछ सहायता न की। इसका विशेष कारण यह था कि ईसाई धर्म की

शिला ही इस बात पर रक्खी गई है कि हव्वा (पहली स्त्री) के बहक जाने के कारण आदम (पहले पुरुष) का अधःपतन हुआ* । यदि हव्वा सत्य से न डिगती, तो आदम सदा स्वर्ग में रहते और उनकी सन्तान को दुःख न भोगना पड़ता । इस सिद्धान्त का प्रभाव हम समस्त यूरोप पर बहुत पाते हैं । न केवल स्त्रियाँ ही तिरस्कृत समझी जाती थीं; किन्तु उनके सम्बन्धी भी ! मध्य यूरोप में एक सैलिक नियम (Law Selique) था कि कोई पुरुष अपनी माता के सम्बन्धियों की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नहीं हो । अर्थात् पुरुष को अपने पिता के द्वारा तो आदर मिल था; परन्तु अपनी के द्वारा नहीं ! स्त्री न केवल ही निरादर को प्राप्त थी; परन्तु उसकी सन्तान भी तिरस्कृत कोटि में गिनी जाती थी । हम इङ्गलैण्ड में सत्रहवीं शताब्दी के तक इस तिरस्कार की दुर्गन्धि पाते हैं । उस देश के महाकवि मिल्टन (Milton) का दस्तूर था कि उसने अपनी लड़कियों को लैटिन पढ़ना इसलिए सिखाया था कि वह लैटिन पुस्तकें उसे सुना सकें, क्योंकि वह अन्धा था; परन्तु उसने लैटिन का अर्थ उनको न सिखाया था । कथन था कि स्त्रियाँ लैटिन जैसी पवित्र भाषा के सीखने की अधिकारिणी नहीं हैं !

---

*"Let the woman learn in silence with all subjection. But I suffer not a woman to teach, nor to usurp the authority over the man, but to be in silence. For Adam was first formed, then Eve. And Adam was not deceived, but the woman being deceived was in the transgression."

—*The Holy Bible, 1; Timothy Chapter 2, Verses 11-14.*

आजकल जो स्थान स्त्री-जाति को यूरोप में मिल रहा है, उसका अधिकांश में कारण -चेष्टा है; न कि धार्मिक सिद्धान्त! इसका पता भी मध्यकालीन यूरोप के इतिहास से ही भली प्रकार मिलता है। उस समय पुरुषों ने स्त्रियों को अपने मनोविनोद का खिलौना बना लिया—उनको खेलों और कुश्ती आदि का सभापति नियत किया जाने लगा और विजयी पुरुष को अधिकार होता था कि वह अपने प्रेम अथवा श्रद्धा के पात्र स्त्री को सभापति चुने। इसको 'क्विन ऑव ब्यूटी' (Queen of Beauty) अर्थात् 'सौन्दर्य की महारानी' कहते थे। स्त्रियाँ अपने रूप और लावण्य द्वारा पुरुषों को लड़ने के लिए उत्साहित करती थीं और अपने ऊपर मोहित पुरुषों को दुस्साध्य कार्य करने के लिए प्रेरित किया करती थीं। इस र होते-होते, वह बेटर-हाफ़ अर्थात् उत्तमार्द्ध तक बन गईं और उनके पति निकृष्टार्द्ध रह गए; परन्तु अब भी नैतिक अधिकारों के विषय में पुरुषों ने स्त्रियों को अपने से उच्च नहीं माना। नित्य-प्रति ऐसे झगड़े हुआ करते हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि यूरोप के लोग स्त्रियों को राज-काज का अधिकारी नहीं समझते।

यह तो रही यूरोप की अवस्था! अब भारतवर्ष की ओर दृष्टि डालिए! मध्यकालीन भारतवर्ष का इतिहास भी यूरोप के असभ्य के इतिहास से अच्छा नहीं है। यहाँ भी लड़कियों को पराए घर का कूड़ा और स्त्रियों को पैर की जूती समझा जाने और जो अत्याचार कहीं देखने में नहीं आते, वह भारतवर्ष में होने लगे। पर्दे का रि हो गया और पुत्रियों को उत्पन्न होते ही मारने लगे। यद्यपि प्राचीन भारत की यह दशा न थी!

मध्यकालीन अत्याचारों में भी एक भेद है और यदि गम्भीर दृष्टि से देखा जाय, तो पता चलता है कि जिन भावों से प्रेरित होकर भारतवासियों ने पर्दा तथा कन्याओं के मार डालने की प्रथा चलाई, उनमें दो भाव उपस्थित थे; प्रथम स्त्री जाति के प्रति प्राचीन कालिक आदर, द्वितीय वर्तमान कालिक अपना दौर्बल्य। पूर्वकाल से लोग स्त्रियों का आदर करने के प्रेमी थे; परन्तु अब इतना बल नहीं रहा था कि विदेशियों के अत्याचारों से इनकी रक्षा कर सकते। अतः उनका धर्म बचाने के लिए उन्होंने यही उचित समझा कि अपने बाहु-बल के अभाव में स्त्रियों को मृत्यु-देव की ही शरण में रख दें। जो भाव मूल में स्त्रियों के आदर और रक्षा के लिए थे, वह कुछ दिनों के पीछे अविद्या, अन्धपरम्परा तथा अत्याचारों में भी परिणत हो गए; परन्तु इसमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं कि भारतवर्ष में पूर्वकाल में स्त्रियों के अधिकारों में किञ्चित् भी कमी न थी। पुत्रियों को लोग पुत्रों की भाँति पालते, पढ़ाते तथा अन्यान्य अधिकार देते थे। उनके जन्मते समय आनन्द मनाया था, उनके संस्कार भी उसी प्रकार किए जाते थे। जब वह विद्योपार्जन के योग्य होती थीं, तो वियसानुकूल उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया जाता था और ब्रह्मचर्य-व्रत पालने की उनके लिए भी उसी प्रकार शिक्षा थी, जैसी पुत्रों के लिए थी। अथर्ववेद में लिखा है :—

"ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्"

—अथर्ववेद का० ११, सू० ५, मन्त्र १८

अर्थात् "ब्रह्मचर्य-व्रत पूर्ण करने के उपरान्त कन्या युवा पति को

हो।" यहाँ 'ब्रह्मचर्य' शब्द केवल पुरुष- के
का ही नहीं है ; किन्तु ब्रह्मचर्य-व्रत में इन्द्रिय-निग्रह, वेदा-
ध्ययन ब्रह्म-प्राप्ति का , सभी सम्मिलित हैं। इन्द्रिय-
निग्रह ब्रह्मचर्य का केवल एक है—सर्वस्व नहीं, यदि ऐसा हो
तो जितेन्द्रिय को ही ब्रह्मचारी कहने लगें।

ब्रह्मचर्य के पश्चात् विवाह के भी स्त्रियों को पूर्ण -
न्त्रता थी। स्वयंवर की प्राचीन कालिक प्रथा इस का एक
बड़ा प्रमाण है। इसके अतिरिक्त विवाह की पद्धतियाँ जो इस
भी विवाह-संस्कार के समय हिन्दू-जाति में व्यवहार में आती
हैं, उस के भावों को भली प्रकार प्रकट करती हैं। उस
विवाह लज्जा का न था ; क्योंकि उसका उद्देश -
जाति की वृद्धि- था। जिस कार्य का ऐसा उच्च उद्देश हो—
जिसके अन्तर्गत अन्य उद्देश आ जाते हैं, तो वह लज्जा का
स्थान कैसे हो सकता है ? इसी कारण से विवाह एक पवित्र
संस्कार गिना जाता था और स्त्री निर्भय होकर उन मन्त्रों का पाठ
सभा के सम्मुख करती थी, जिनमें सन्तानोत्पत्ति
गृहस्थाश्रम के अन्यान्य कार्यों का विधान है।

प्राचीन भारत में एक विचित्र बात यह थी कि स्त्री को अर्द्धा-
ङ्गिनी कहते थे। अर्थात् गृहस्थाश्रम-रूपी रथ के दो पहियों
का नाम स्त्री तथा पुरुष था, जिनमें से कोई पहिया छोटा या
नहीं। यहाँ न तो स्त्री को 'बेटर हाफ़' कह कर पुरुष से
था और न उसको पैर की जूती कर अनादर कि
जाता था ; किन्तु उसे तुल्य-पद, तुल्य-अधिकार और तुल्य

था, जिसमें दासत्व की गन्ध-मात्र भी न थी। स्त्री का पत्नी था अर्थात् वह यज्ञ में अपने पति के साथ सम्मान के बैठती थी और बिना उसके सम्मेलन के कोई यज्ञ पूर्ण नहीं था। अथर्ववेद में लिखा :—

"प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नी भिर्वहतेह युक्ताः।"

—अथर्ववेद का० ९, सूक्त २६, मन्त्र ४

प्राचीन भारतवासी लोग यह भी नहीं मानते थे कि स्त्री का जन्म पुरुष के आश्रित है और हव्वा आदम की पसली से उत्पन्न

---

* "आदम की पसली से हव्वा का उत्पन्न होना" ईसाइयों का यह सिद्धान्त वेद-मन्त्रों के किसी उल्टे अर्थ का द्योतक है। INTRODUCTION TO THE SCIENCE OF RELIGION, के ४६वें पृष्ठ पर प्रोफ़ेसर मैक्समूलर (Professor Maxmuller) लिखते हैं—"Bone, seemed a telling expression for what we should call the innermost essence............In the ancient hymns of the Veda, too, a poet asks—"Who ha seen the first-born, when, he who had on *bones, i.e.,* no form, bore him that has *bones, i.e.,* when that which was formless assumed form, or it may be, when that which had no essence, received an essence."

अर्थात्—"हड्डी या पसली से तात्पर्य यहाँ आन्तरिक सत्ता से है।.....वेद के प्राचीन सूक्तों में भी ऋषि कहता है—' पैदा हुए को किसने देखा है, जब उसने, जिसके हड्डी अर्थात् न था,

हुई थी; किन्तु उनका विश्वास था कि मनुष्य और स्त्री की स्थिति एक सी है। दोनों स्वतन्त्रतः उत्पन्न हुए और भविष्य में उत्पन्न होने वाली सन्तान के लिए भी उन दोनों की एक ही प्रकार से आवश्यकता है।

मध्यकालीन भारत में स्त्रियों की गणना भोग्य पदार्थों में होने लगी और पुरुष समझने लगे कि हम उनके भोक्ता हैं। आर्य-भाषा के कवीन्द्र गोस्वामी तुलसीदास जी रामायण में लिखते हैं :—

"स्रक, चन्दन, वनितादिक भोगा"

—तुलसीकृत रामायण अयोध्याकाण्ड, दोहा २१९, चौ० १

अर्थात्—"जहाँ फल-फूल, माला, चन्दन आदि भोग्य पदार्थ हैं वहाँ स्त्री भी इसी प्रकार का एक पदार्थ है; परन्तु यह अवस्था समाज की असभ्यता की सूचक है और अनेक अंशों में उन घट-नाओं के समान है, जो जङ्गली जातियों में पाई जाती हैं और

उसको पैदा किया; जिसके हड्डी थी, जब, उसने जो आकार रहित था साकार धारण किया या उसने जिसमें सत्ता न थी, सत्ता पाई।" यहाँ मैक्समूलर ने वेद-मन्त्र का प्रमाण नहीं दिया; परन्तु प्रतीत होता है कि 'अस्थि' शब्द जिसका अर्थ 'स्थिति' या 'सत्ता' हो सकता है, बिगड़ कर बाइबिल में हड्डी या पसली हो गया। यदि यह अर्थ लिया जाय, तो इसका तात्पर्य यह है कि पुरुष और स्त्री की सत्ता समान है या एक ही है। स्त्री पुरुष की ही सत्ता से बनी है; न कि उसकी पसली से।

जिनका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। यह अवस्था प्राचीन काल में न थी। स्त्री को पुरुष की उसी प्रकार आवश्यकता है, जिस प्रकार पुरुष को स्त्री की ! यदि भोग हैं, तो दोनों। यदि भोक्ता हैं, तो दोनों !! कोई कारण नहीं कि पुरुष तो भोक्ता है और स्त्री उसका भोग !

अब सिद्ध हो गया कि स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे के समान हैं। कोई किसी के आधिपत्य में नहीं और दोनों के नियमों के आधिपत्य में हैं !

रहे विवाह-सम्बन्धी शेष चार प्रश्न, उनकी मीमांसा अगले अध्याय में की जायगी।



तीसरा अध्याय

पुरुषों का बहु-विवाह तथा पुनर्विवाह

त अध्याय में हमने दो प्रश्नों—अर्थात् (१) विवाह के लिए स्त्री और पुरुष दोनों की इच्छा देखने की आवश्यकता है अथवा एक की? और (२) स्त्री और पुरुष दोनों समान हैं या एक-दूसरे का दास अथवा दासी?—के उत्तर दिए हैं। इस अध्याय में तीसरे और चौथे प्रश्नों पर विचार होगा अर्थात् एक स्त्री के जीवित रहते पुरुष को अनेक विवाह करने का अधिकार है या नहीं? या दूसरे शब्दों में—क्या एक पुरुष एक ही समय में कई स्त्रियों से सम्बन्ध कर सकता है और क्या एक स्त्री के मरने पर वह पुनर्विवाह कर सकता है?

यह बात दो प्रकार से सिद्ध हो सकती है—एक युक्ति द्वारा; दूसरे शास्त्र द्वारा। देखा जाता है कि भिन्न-भिन्न जातियों में इस विषय में भिन्न-भिन्न नियम हैं। यूरोप की ईसाई जातियों में पुरुष को एक एक ही स्त्री से विवाह करने का अधिकार है; परन्तु मुसलमान देशों में उस मत के अनुसार उच्च से उच्च पुरुष को चार तक विवाह करने की आज्ञा है, इसके अतिरिक्त अन्य स्त्रियों से बिना विवाह के सम्बन्ध करना भी पाप नहीं समझा जाता। के देश में भी प्रायः एक पुरुष कई स्त्रियों का पति होता है। पहाड़ों में तो

पुरुष के लिए कई स्त्रियाँ समझा है; क्योंकि पुरुष प्रायः स्त्रियों ही की कमाई खाते हैं। ँ में हिन्दू- में यद्यपि बहु-विवाह की प्रथा नहीं है, तथापि यदि कोई एक स्त्री के होते हुए विवाह कर लेता है, तो इस बात को न तो कोई अधर्म ही समझते हैं और न ऐसे पुरुष का तिरस्कार ही करते हैं। प्रायः राजों-महाराजों में तो अनेक विवाह करना " को नहिं दोष गुसाईं" की लोकोक्ति के अनुसार एक सी बात है। बङ्गाल देश के कुलीन ब्राह्मणों में कई विवाह करना एक अभिमान की बात समझी जाती है। उनमें एक पुरुष अपने जीवन में कई विवाह करता है और उसकी स्त्रियाँ प्रायः अपने पिता के ही घर रहती हैं। बहुत सी स्त्रियाँ अपने पति का, विवाह के पश्चात् मुख तक नहीं देखतीं; क्योंकि वह पति अन्यों से विवाह करके रुपया करता फिरता है।

बहुत से लोगों का विचार है कि एक पुरुष कई स्त्रियों से विवाह कर सकता है, क्योंकि ऐसा करने में कोई शारीरिक नहीं है। वह प्रतिदिन कई स्त्रियों को गर्भवती बना है; परन्तु एक स्त्री एक बार गर्भिणी होकर फिर पुरुषों से वीर्य नहीं कर सकती, इस तर्क करने वाले पुरुषों ने स्त्री-पुरुष को केवल गर्भ धारण करने की मैशीन समझ रक्खा है। वह गृहस्थ के उपयुक्त व्यवहार की कुछ भी परवाह नहीं करते। यदि ऐसा हो तो पशु-समाज और मनुष्य-समाज में भेद ही क्या रहे? सन्तानोत्पत्ति की ही मैशीन होते हैं, ँ परस्पर गृहस्थ का सम्बन्ध नहीं होता। एक नर का अपनी सजातीय मादा से केवल

प्रसङ्ग मात्र का ही सम्बन्ध रहता है। मादा गर्भिणी होकर गर्भ धारण करने की अवस्था तक किसी नर से सम्बन्ध नहीं रखती; परन्तु नर अन्य मादाओं के साथ यथाशक्ति तथा यथा-अवसर संयोग किया करता है। यदि यही चरितार्थ करना है, तो एक पुरुष के ३६० तक स्त्रियाँ होनी चाहिए, जिनको वह प्रतिदिन वीर्यदान देता रहे। वस्तुतः मनुष्य इसलिए नहीं बनाया गया कि नित्य वीर्यदान किया करे और न वह ऐसा कर ही सकता है।

वीर्य के दो उपयोग हैं—एक तो सन्तानोत्पत्ति और दूसरा मस्तिष्क वृद्धि! जिस समय वीर्य सन्तानोत्पत्ति में व्यय होता है, उस समय उतना ही भाग मस्तिष्क का क्षीण हो जाता है। अतः ऋषि-मुनियों ने सीमा बाँध दी है कि इससे अधिक पुरुष को स्त्री-प्रसङ्ग तथा सन्तानोत्पत्ति नहीं करनी चाहिए। दूसरी यह है कि नियत सीमा उल्लङ्घन करने वाले पुरुष मस्तिष्क क्षीण होने और बुद्धि नष्ट होने के अतिरिक्त सन्तानोत्पत्ति भी नहीं कर सकते। सन्तानोत्पत्ति तथा स्त्री-प्रसङ्ग के लिए भी इन्द्रिय-निग्रह की - श्यकता है। जो पुरुष नितान्त विषयी हैं, वह विषय करने में भी असमर्थ होते हैं; क्योंकि वि -भोग के लिए भी शारीरिक बल की आवश्यकता है।

प्रथम अध्याय में विवाह के प्रयोजन की मीमांसा करते हुए बताया भी जा चुका है कि काम-चेष्टा की सीमा निश्चित विवाह के मुख्य उद्देशों में से है अर्थात् मनुष्य को मछलियों की तरह लाखों और सहस्रों सन्तानें उत्पन्न नहीं करनी हैं और न सृष्टि-क्रम ही उसे ऐसा करने की आज्ञा देता है। जिन देशों में

एक पुरुष कई-कई विवाह करते हैं, उन देशों की जन-संख्या इसी हिसाब से बढ़ नहीं जाती। इसके अतिरिक्त पुरुषों और स्त्रियों की किसी देश अथवा जाति की संख्या के देखने से पता चलता है कि स्त्रियाँ इतनी अधिक नहीं होतीं कि एक पुरुष कई स्त्रियाँ रख सके।

हम ऊपर कह चुके हैं कि गृहस्थाश्रम का आधार प्रेम है। जिस प्रकार काग़ज़ के सफ़ों को जोड़ने के लिए लेई या गोंद स्निग्ध पदार्थ की आवश्यकता होती है, उसी दिना परस्पर स्नेह के स्त्री-पुरुष में संयोग भी नहीं हो सकता। यह दाम्पत्य प्रेम एक पुरुष और एक स्त्री में ही हो सकता है। यदि एक पुरुष की कई स्त्रियाँ होती हैं, तो वह सब से तुल्य प्रेम नहीं कर सकता। पक्षपात होगा और पक्षपात से अन्याय, अन्याय से कलह, से गृह-नाश यह साधारण दर्जे हैं। न केवल पति के लिए ही है कि वह अपनी अनेक स्त्रियों से समान प्रेम करे और न एक पति की कई स्त्रियों के लिए ही सम्भव है कि वह अपने पति से एक सा प्रेम कर सकें। जिस स्त्री को पता लग जाता है कि पति अनन्य प्रेमी नहीं है, उसी समय उसके हृदय में एक की घृणा तथा क्रोध उत्पन्न होने लगता है। इसीलिए धर्म-शास्त्रों की आज्ञा है कि एक पुरुष एक ही स्त्री से विवाह करे। अथर्ववेद में कहा है :—

अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा।
यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥

—अथर्ववेद का० ७, सूक्त ३७, मन्त्र १

बहुत से लोगों की यह कल्पना है कि हिन्दू (आर्य)

धार्मिक ग्रन्थों में पुरुषों के लिए बहुत से विवाहों की विधि है और प्राचीन काल में एक पुरुष की कई स्त्रियाँ होती थीं; परन्तु वेद भगवान् इस बात का सर्वथा निषेध ` हैं, जैसा कि हमने ऊपर के मन्त्र से दरसाया है। इस मन्त्र में स्त्री अपने पति से विवाह के समय कहती है कि मैं तुमको वस्त्र द्वारा (गँठ-बन्धन `) धारण करती हूँ कि तू केवल मेरा ही पति हो—अन्य किसी का नहीं। इससे स्पष्टतया सिद्ध है कि जो पुरुष प्राचीन, मध्य अथवा वर्तमान-काल में एक से अधिक स्त्रियाँ रखते हैं, वे इस अंश में वेद-मार्ग के अनुगामी नहीं हैं। प्राचीन काल के बहु-विवाह के जितने दृष्टान्त मिलते हैं, उनमें से कोई भी कलह, सपत्नी डाह तथा बुरे परिणामों से बचा हुआ नहीं है। वस्तुतः श्रीरामचन्द्र जी की जो विशेष प्रशंसा की जाती है, उसके अन्य कई कारणों में से एक कारण यह भी है कि उन्होंने सीता महारानी को छोड़ कर अन्य किसी से अपना प्रेम नहीं जोड़ा। जिन देश या जातियों में बहु-विवाह की प्रथा है, उनके आन्तरिक जीवन पर दृष्टि डालने से बोध होता है कि वह घोर दुःख और अशान्ति से अपना समय व्यतीत कर रहे हैं और उनकी स्त्रियों में लेश भी शान्ति नहीं है। वस्तुतः शान्ति और बहुविवाह में परस्पर विरोध है। शान्ति वहाँ हो नहीं सकती, जहाँ सौतेली-डाह मौजूद है, बहु-विवाह ब्रह्मचर्य का भी नाशक है, गौतम जी महाराज ने अपने न्याय-दर्शन में बताया है कि :—

"अनैकान्तिकः स व्यभिचारः"

—न्याय-दर्शन अ० १, आ० २, सूत्र ५

अर्थात्—"अनेक में करने का नाम ही व्यभिचार है।"

जिस पुरुष के एक से अधिक स्त्रियाँ होती हैं, उसकी सन्तान भी प्रायः धार्मिक, सुशील और प्रेम रखने वाली नहीं होती। उसकी भिन्न-भिन्न विमाताओं में लड़ाई-झगड़े नित्य-प्रति ही हुआ करते हैं और उसका प्रभाव सन्तान पर न केवल गर्भावस्था में ही है; किन्तु बाल्यावस्था में भी कुत्सित-गुण, दुष्ट कर्म और घृणित सन्तान में घर करने लगते हैं। जिन बच्चों ने लड़ाई-झगड़ों को ी घुट्टी के पिया है, जिन को सौतेला वैमनस्य अपनी माताओं द्वारा सम्पत्ति और दाय-भाग में मिला है, उनसे यह आशा रखना कि वह युवावस्था को प्राप्त होकर जगत् का सुधार या देश का उपकार करेंगे, नीम के वृक्ष से आम की रखने के तुल्य है!

अब रहा पुरुषों का पुनर्विवाह! वर्तमान काल की जातियाँ यही ी हैं कि यदि एक पुरुष की पहली स्त्री मर , तो दूसरा विवाह हो जाना चाहिए। यदि दूसरी मरे, तो तीसरी, तीसरी मरे तो चौथी इत्यादि। यह बात केवल सिद्धान्त रूप में ही नहीं मानी जाती, किन्तु व्यवहार भी इसी का है। पुरुषों का पुनर्विवाह होना न केवल आपद्धर्म ही माना है, परन्तु यह एक साधारण सी बात हो गई है, जिसका अपवाद विरले ही करते हैं। हिन्दू-जाति में हम बहुधा देखते हैं कि एक स्त्री का हो रहा है और पति के पास दूसरी लड़की से विवाह करने के लिए प्रेरणा हो रही है। पहली स्त्री की चिता भी ठण्ढी नहीं होने पाती और दूसरे विवाह की तैयारियाँ होने

जगती हैं। वर्षी से पहले दूसरी वधू का आ जाना, तो एक साधारण नियम है।

पुनर्विवाह का प्रत्येक दशा में हितकर होना तो हमको प्रतीत नहीं होता और विशेषकर उस समय जब पहली स्त्री से सन्तान भी हो, क्योंकि प्रायः देखा गया है कि विमाता के आते ही पिता भी विपिता हो जाता है और अपनी पहली स्त्री से उत्पन्न हुए बच्चों का यथोचित पालन नहीं कर सकता। वस्तुतः देखा जाय, तो पुत्रों के होते हुए पितृ-ऋण से उऋण होने के लिए पुनर्विवाह की आवश्यकता ही नहीं रहती; परन्तु यदि सन्तान न हो और आयु भी युवा हो, तो आजकल की अवस्था को दृष्टि में रखते हुए, एक स्त्री के मर जानें पर दूसरी के विवाह करने में दोष नहीं।

यहाँ एक प्रश्न मीमांसनीय है—वह यह कि रँडुओं का विवाह किस प्रकार की स्त्री से किया जाय? शास्त्रों और डॉक्टरों दोनों ने विवाह के लिए स्त्री-पुरुषों की अवस्था निश्चित कर दी है। यदि इस अवस्था का उल्लङ्घन होता है, तो किसी न किसी व्यभिचार की वृद्धि और सदाचार की क्षति होती है। व्यभिचार खुल्लमखुल्ला न हुआ, तो गुप्त रीत से हुआ। एक रूप में हुआ अथवा अनेक रूपों में, पुरुष की ओर से हुआ या स्त्री की ओर से, होगा अवश्य—रुक नहीं सकता। कल्पना कीजिए कि एक पुरुष ३५ वर्ष का है और उसकी २५ वर्ष की स्त्री का देहान्त हो । उसने १५ या १६ वर्ष की नव-वयस्का से विवाह किया (इससे अधिक अर्थात् २५ या २६ वर्ष की कुमारियाँ मिलना, तो ही है), तो इससे पहली हानि तो यह होगी कि स्त्री और

दोनों की शारीरिक दशा स्वस्थ न रहेगी और अनेक प्रकार के रोग हो जाने की भी सम्भावना है। दूसरे इससे भी बुरी बात यह होगी कि वह पुरुष अपनी युवती स्त्री को कभी सन्तुष्ट न कर सकेगा। यदि कहा जाय कि उसे २६ या २७ वर्ष की कुमारिका भी मिल सकती हैं, जिनके साथ उसको विवाह कर लेना चाहिए, तो भी ठीक नहीं; क्योंकि २६ या २७ वर्ष की बाल-ब्रह्मचारिणी युवती, पूर्ण कला-सम्पन्न पूर्ण-वयस्का स्त्री का क्षत-वीर्य, क्षत-पराक्रम तथा क्षत-आयु पुरुष से क्या सम्बन्ध! जो बुड्ढे पुरुष आजकल भारतवर्ष में आठ-आठ, दस-दस वर्ष की कन्या से विवाह कर लेते हैं और दादियाँ पोतियों के साथ आकर खेलती हैं, उसमें कन्याओं की इच्छा की परवाह नहीं की जाती; किन्तु इसका अधिकतर कारण माता-पिता की मूर्खता और लोभ ही होता है। वही पुरुष अपनी लड़की का विवाह वृद्ध पुरुष से करने के लिए तत्पर होते हैं, जिनको अपने दामाद से पुष्कल धन मिलने की आशा होती है। प्रायः देखा गया है कि कन्या यदि १५ या १६ वर्ष की समझदार होती है, तो वह लज्जा को छोड़ कर माँ-बाप का प्रतिरोध करने तक को तैयार हो जाती है; क्योंकि वह जानती है कि उसका और बुड्ढे का बिल्ली-ऊँट का सा सम्बन्ध है और उसे समस्त आयु भर कष्ट भोगना पड़ेगा!

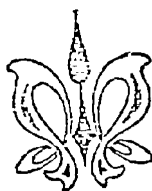
यूरोप में प्रायः युवती कन्याएँ स्वयं ही बुड्ढे से विवाह करने के लिए राज़ी हो जाती हैं; परन्तु इसका मूलाधार भी दुष्टभाव ही होते हैं। वह केवल बुड्ढे के धन पर मोहित हो जाती हैं, न कि स्वयं उस पर! वे पहले से जेती हैं कि पति के मरने पर

वह समस्त धन की स्वामिनी हो गी और अन्य पुरुष से पुनर्विवाह कर सकेंगी।

भारतवर्ष में पुरुष -साठ वर्ष की आयु तक विवाह करते जाते हैं और उनको यदि बहुत बड़ी कन्या मिली, तो २० वर्ष की। २० वर्ष तक भी किसी कन्या का हमारे देश में कुमारी रहना दुस्तर ही है; क्योंकि यहाँ लड़की के पाँच या छः वर्ष पूरा करने पर ही माँ-बाप को उसके पीले हाथ करने की चिन्ता हो जाती है और १२ या १३ वर्ष में तो प्रायः सभी का विवाह हो जाता है। ऐसी अवस्था में वृद्ध पति तो सृष्टि-क्रमानुसार दो-चार वर्ष में ही स्वर्गारोहण में तत्पर हो जाते हैं और स्त्री बेचारी ठीक तरुणावस्था के वैधव्य के अपार दुःख-सागर में डूबती रहती है। उस समय उसकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय होती है। धर्म-अधर्म, उचित-अनुचित सब बातों को भूल जाती है और केवल यही चिन्ता रहती है कि किस प्रकार शरीर और जीव को बिना अपमानित हुए संयुक्त रक्खा जाय। यह भी प्रत्येक अंश में सम्भव नहीं होता; क्योंकि विधवा का सम्मानित रहना ही परस्पर विरुद्ध है। विधवा होना ही अपमान है; फिर अन्य दुःख तो अलग ही रहे। बहुधा ऐसा होता है कि युवती स्त्रियाँ अपने वृद्ध पति के देहान्त होते ही निर्लज्ज होकर अपने माता-पिता तथा पति के कुल को दूषित कर देती हैं। किसी-किसी अंश में, जबकि पति अति वृद्धावस्था में विवाह करता है, वह अपनी युवती पत्नी को अपने जीवन में ही सदाचार की सीमा उल्लङ्घन करने का साहस दे देता है। इस के विवाह जाति के लिए एक कलङ्क का टीका है और आवश्यकता

है कि जाति की ओर से ऐसे नियम बनाए जायँ, जिनसे वृद्धावस्था में विवाह करने वाले तथा वह लोग जो अपनी पुत्रियों को वृद्धों से विवाह देते हैं, दण्डनीय हुआ करें !

अब यदि यह बात सिद्ध हो गई कि रँडुओं का विशेष अवस्थाओं में पुनर्विवाह तो हितकर है; परन्तु कुमारिकाओं के विवाह करना उचित नहीं, तो फिर यह प्रश्न स्वभावतः ही उत्पन्न हो जाता है कि क्या इनका विवाह विधवाओं के साथ होना चाहिए ? यदि यह ठीक है, तो क्या स्त्रियों का पुनर्विवाह धर्मयुक्त है ? इसकी मीमांसा अगले अध्याय में की जायगी।



चौथा अध्याय

स्त्रियों का बहु-विवाह तथा पुनर्विवाह

म तीसरे अध्याय में लिख चुके हैं कि पुरुषों के बहुविवाह और पुनर्विवाह दोनों ही होते हैं। उनमें कुछ तो उचित हैं, कुछ अनुचित ; परन्तु समाज की ओर से उनके अनुचित कार्य पर भी शङ्का, आक्षेप तथा प्रतिरोध का प्रकाश नहीं होता। अब प्रश्न यह है कि स्त्रियों के लिए इस विषय में क्या नियम होना चाहिए ?

यद्यपि सभ्य देशों में एक स्त्री एक ही समय में कई पुरुषों की पत्नी नहीं हो सकती ; परन्तु ऐसी जातियों तथा देशों का नितान्त अभाव नहीं है जहाँ स्त्रियों के बहुविवाह की प्रथा है। यह दो प्रकार से होता है—कहीं-कहीं तो स्त्री अपनी माता के ही घर रहती है और उसके पति उसी के घर आया-जाया करते हैं। ऐसी दशा में यह भी आवश्यक नहीं है कि सन्तान पति की हो ; किन्तु उसी स्त्री की सन्तान मानी जाती है। दूसरा प्रकार यह है कि स्त्री मोल ली हुई या पकड़ी हुई आती है और कई पतियों के घर रहती है। यह पति या तो भाई-भाई होते हैं या निकटस्थ सम्बन्धी !

दोनों प्रकार के बहुविवाह में बेचारी स्त्री पर बड़ा अत्याचार होता है। विक्रय की दशा में तो -पिता अपनी पुत्री की है

खाते हैं और उस पर बड़ा अन्यान्य होता है। दूसरी दशा में एक स्त्री कई पतियों के वश में रहती है। जो अपनी बारी से बेचारी स्त्री को बड़ा कष्ट देते हैं और उसको यह भी अधिकार नहीं होता कि उनको छोड़ दे!

बङ्गाल में कई जातियाँ हैं, जिनमें एक स्त्री के कई पति होते हैं। नीलगिरि के टोडा लोगों का नियम है कि जब स्त्री ब्याही जाती है, तो वह पति के सब भाइयों की स्त्री होती है। लङ्का में भी यही रिवाज था और अभी तक बिलकुल दूर नहीं हुआ। तिब्बत देश में भी एक स्त्री अपने पति के सब भाइयों की स्त्री होकर रहती है। मालाबार देश की नैयर जाति में भी यही प्रथा प्रचलित है *

हम तीसरे अध्याय में पुरुषों के बहुविवाह के विरुद्ध कई युक्तियाँ तथा प्रमाण दे चुके हैं और वह सब कारण स्त्रियों के बहु-विवाह से भी उतनी ही प्रबलता के साथ सम्बन्ध रखते हैं। स्त्रियों का बहुविवाह उन सब हेतुओं से अनुपयुक्त, अधर्मयुक्त तथा सामाजिक उन्नति के लिए हानिप्रद है और स्त्रियों की शारीरिक निर्बलता इस हानि को और भी भयङ्कर बना देती है। अतः हम स्त्रियों के बहुविवाह को यहीं छोड़ते हैं।

परन्तु ^ प्रकार पुरुषों का पुनर्विवाह अर्थात् एक स्त्री के मर जाने पर दूसरी से विवाह करना अनेक दशाओं में अति आवश्यक है, उसी प्रकार स्त्रियों का पुनर्विवाह अर्थात् एक पति के मर जाने पर दूसरे पति से विवाह करना, उन्हीं हेतुओं से, कई दशाओं में न्याययुक्त, शास्त्रानुसार तथा आवश्यक है।

*Evolution of Marriage, pp. 77-80.

हमने दूसरे अध्याय में यह सिद्ध ` का यत्न किया था कि सामाजिक अपेक्षा से पुरुष और स्त्री के कर्त्तव्य और अधिकार समान हैं। जब इनके अधिकार तुल्य हैं, तो जो अधिकार पुरुष को दिए गए हैं, उनसे स्त्री को रखना सर्वथा अन्याय है। स्त्रियों के पुनर्विवाह के विषय में छः मत हैं :—

(१) यदि किसी कन्या की मँगनी किसी वर के साथ हो चुकी तो चाहे संस्कार न भी हुआ हो, तो भी वह उस पति की स्त्री हो चुकी। यदि पति मर जाय, तो स्त्री को स्मृतिरूपी मूर्ति की सेवा करने में तत्पर रहना चाहिए और दूसरे पति का नाम तक न लेना चाहिए। मनुष्य की बात एक होती है, जो वचन दे दिया उससे हटना कैसा!

(२) यदि संस्कार होने से पूर्व ही पति मर जाय, तो लड़की को दूसरा विवाह कर लेना चाहिए। वस्तुतः यह दूसरा विवाह नहीं; किन्तु पहला ही विवाह है, क्योंकि जब तक फेरे नहीं फिरे, अग्नि को साक्षी नहीं दी, उस समय तक केवल कथन मात्र से विवाह पूरा नहीं कहा जा सकता; परन्तु यदि विवाह-संस्कार होकर पति मरता है, तो स्त्री चाहे अक्षत-योनि क्यों न हो, उसका विवाह कदापि नहीं करना चाहिए।

यह मत हमारे अधिकांश हिन्दू भाइयों का है, जो अपने आपको सनातनधर्मी कह कर पुकारते हैं।

(३) जब तक स्त्री अक्षत-योनि रहे, चाहे उसकी मँगनी हो गई हो अथवा विवाह-संस्कार भी, उस पुनर्विवाह कर देना चाहिए। यह विचार आजकल के आर्यसमाजियों का है

थोड़े से उन लोगों का, जो अन्य विषयों में तो आर्यसमाज के सिद्धान्तों से सहानुभूति नहीं ; किन्तु बाल-विधवाओं के दुख से अवश्य पीड़ित होते हैं।

(४) शूद्रों में तो क्षत-योनि विधवाओं का भी विवाह हो जाना चाहिए, जैसा कि भी हिन्दू-समाज में प्रचलित है; परन्तु द्विजों में केवल अक्षत-योनि विधवा का ही विवाह होना उचित है। यदि क्षत-योनि विधवा हो और उसे सन्तान की आवश्यकता तियाँ हों, तो वह आपद्धर्म के लिए नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न कर ी है।

यह मत स्वामी दयानन्द जी (आर्य के पक) का है। इसे सिद्धान्त रूप में तो सभी आर्यसमाजी मानते हैं ; परन्तु वह काल की मर्यादा से प्रतिकूल होने के इसको व्यवहार रूप में परिणत करने के लिए उपस्थित नहीं हैं।

स्वामी दयानन्द के इस सिद्धान्त में पहले तीन सिद्धान्तों से एक बात विलक्षण है अर्थात् वह जो अधिकार स्त्री को देते हैं, वही पुरुष को ! उनके मत में केवल अक्षत-वीर्य पुरुष ही मृतभार्य होने में पुनर्विवाह कर है। क्षत-वीर्य पुरुष सन्तानादि के लिए केवल आपद्धर्म के रूप में नियोग ही कर है।

(५) विधवा चाहे क्षत-योनि हो अक्षत-योनि, यदि उसे इच्छा हो, तो पुनर्विवाह अवश्य कर देना चाहिए; जिस पुरुषों का हो जाता है।

यह मत उस उदार दल का है, जो के सामाजिक सुधार को बड़े वेग से करना चाहता है।

(६) छठे मत के लोगों का मूल सिद्धान्त तो वही है, जो स्वामी दयानन्द का है अर्थात् चौथा; परन्तु यह देख कर कि वर्त- सामाजिक पर विचार करने से नियोग की प्रथा इस प्रचलित करना भव मालूम होता है, उन क्षत-योनि कन्याओं का भी विवाह कर दिया जाय, जो अभी नववयस्का ही हैं और जिनके कोई सन्तान नहीं हुई।

यह मत इस पुस्तक के लेखक का भी है। इसमें सन्देह नहीं कि क्षत-योनि विधवाओं का पुनर्विवाह करना शास्त्रोक्त सीमा से किञ्चित् बाहर जाना है; परन्तु जब समाज पुरुषों के बहुविवाह, स्त्रियों के बाल-विवाह तथा उनकी इच्छा के प्रतिकूल विवाहों को सहन करता है और उनका प्रतिरोध नहीं करता, तो उसे अपने इन अत्याचारों के प्रायश्चित्त के रूप में बाल्यावस्था की क्षत-योनि विधवाओं का पुनर्विवाह भी सहन करना चाहिए। जो पुरुष कुपथ्य को प्रिय समझता है, उसे औषध भी प्रिय समझनी ही पड़ेगी। चाहे वह उसको कितना ही अप्रिय, अनावश्यक और कड़वी क्यों न समझता हो!

यदि हम विधवाओं का प्रश्न छोड़ दें और केवल -योनि विधवाओं के ही विषय में विचार करें, तो बलपूर्वक कहा जा है कि शास्त्र तथा युक्ति—किसी भी - योनि|विधवाओं का विवाह निषिद्ध नहीं है।

अक्षत-योनि विधवाएँ प्रायः अविवाहिता के ही तुल्य हैं, क्योंकि विवाह का मुख्य अङ्ग पुरुष-प्रसङ्ग है। यदि पुरुष-प्रसङ्ग नहीं हुआ और केवल संस्कार मात्र हुआ है, तो यह उसी की है,

जैसे बनाने के लिए ईंट आदि इकट्ठी कर ली गई; परन्तु बनाने नहीं । सामग्री एकत्रित करने या विश्वकर्मा को ठेका देने मात्र से कोई बुद्धिमान पुरुष यह न कहेगा कि मकान निर्माण हो गया। इसी प्रकार सं -मात्र से विवाह की पूर्त्ति नहीं होती। अब यदि के पश्चात् ही पति मर गया, तो मुख्योद्देश पूरा न होने के कारण आयु-पर्यन्त के लिए स्त्री को विवाह से वर्जित कर देना घोर अन्याय है! प्रत्येक कार्य के दो अङ्ग हुआ करते हैं; एक मुख्य और दूसरा गौण! विवाह में -गम मुख्य अङ्ग है और संस्कार सीमा निश्चित करने के लिए है। अतः पति- के अभाव में अक्षत-योनि विधवा को द्वितीय पति से विवाह करने की आज्ञा होनी चाहिए!



पाँ ँ याय

वेदों से वि -विवाह की सिद्धि

मनुस्मृति में धर्म का बतलाते हुए मनु जी महाराज कहते हैं :—

वेदःस्मृतिःसदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

—मनु० अ० २, श्लोक १२

र्थात् धर्म का लक्षण जानने के लिए सब से पूर्व वेद को देखना चाहिए। वेदों की महिमा संसार में सब से है। स्मृति, आदि इसीलिए माननीय हैं कि इनका आश्रय वेद पर है। जो वेद-विरुद्ध है वह कदापि माननीय नहीं; अतः विधवा-विषय में भी हम सब से पूर्व वेदों के ही देते हैं:—

कुहस्विद्दोषा वस्तोरश्वि भिपित्वं :कुहोषतुः।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरंमर्यं न योषा कृणुते थ ॥

—ऋग्वेद ल १०, सूक्त ४०, २

र्थ—(कुहस्विद) कहाँ (दोषा) रात्रि में ( )
कहाँ (वस्तोः) दिन में (अश्वि) हे स्त्री-पुरुषो ( )

(अभिपित्वं) जीविका को (करतः) करते हो ! (कुह) कहाँ (उपतुः) वसते हो (कः) कौन (वां) तुम दोनों को (शयुत्रा) सोनेकी ग्री से युक्त है (विधवा) विधवा स्त्री (देवरं) दूसरे पति को और (योषा) स्त्री (मर्य) पति को (इव) जैसे।

इस मन्त्र में स्पष्ट दिया हुआ है कि विधवा का दूसरा वर होना चाहिए अर्थात् विधवा के लिए अन्य पति की विधि है। यह अर्थ केवल हमारा किया ही नहीं है, श्री० सायणाचार्य भी इससे भिन्न अर्थ नहीं करते। देखो :—

भाष्य—"हे (अश्विना) अश्विनौ (कुहस्वित्) क्वस्वित् (दोषा) रात्रौ भवथः इति शेषः (कुहः) वस्तोः क वा दिवा : (कुह) क वा (अभिपित्वं) अभिप्राप्तिं (. :) कुरुथः (कुह) क वा उषतु ऊषथः : किं च (वाम्) युवाम् (क) यजमानः (सधस्थे) सहस्थाने वेद्याख्ये (आकृणुते) अकुरुते परिचरणार्थं आत्मानमभिमुखी करोति। तत्र दृष्टान्तौ दर्शयति शयुत्राशयने (विधवेव) यथा मृत नारी (देवरं) अभिमुखी करोति (मर्यं न) यथा च सर्वं मनुष्यं (योषा) सर्वा नारी सम्भोग काले अभिमुखी करोति तद्वदित्यर्थः।

भाषार्थ—हे अश्विनो ! तुम दोनों रात्रि में कहाँ होते हो ? और दिन में कहाँ होते हो और कहाँ प्राप्ति करते हो ? तुम दोनों को कौन यजमान वेदी में सेवा करने के लिए सम्मुख होता है ? यहाँ दो दृष्टान्त दिखाता है। जैसे सोने के स्थान में विधवा स्त्री पति के भाई को अभिमुख करती है और जैसे सब मनुष्यों को स्त्रियाँ सम्मुख करती हैं, उसी प्रकार से, इत्यादि।

(प्रश्न) देखो सायण तो देवर का अर्थ 'पति के भाई' करता है और तुम इसका अर्थ दूसरा पति बताते हो। फिर सायणाचार्य के अर्थों से विधवा-विवाह की सिद्धि नहीं होती।

(उत्तर) यदि देवर का अर्थ यहाँ 'पति का भाई' भी किया जाय, तो भी मानना पड़ेगा कि विधवा का पति के भाई से विवाह सायणाचार्य जी मानते हैं। विधवा अपने पति के भाई को सोने के स्थान में बुलाती है, जैसे साधारण स्त्रियाँ सम्भोग के लिए अपने पति को बुलाती हैं। सायणाचार्य के इस अर्थ से इतनी बातें तो ही हैं कि—

(१) विधवा का देवर को बुलाना।

(२) सोने के स्थान में बुलाना।

(३) इस प्रकार से बुलाना जैसे सम्भोग के लिए स्त्रियाँ पति को बुलाती हैं।

यह सब उसी समय हो सकता है, जब विधवा का पुनर्विवाह हो। अब केवल 'देवर' शब्द विवादास्पद है। इसका निश्चय श्री-यास्काचार्य जी के लिखे हुए निरुक्त के इस मन्त्र के अर्थ से हो सकता है। श्रीसायणाचार्य जी ने निरुक्त का यह प्रमाण अपने भाष्य में उद्धृत किया है। देखो सायण-भाष्य :—

"तथा च यास्कः कस्विद्दोषा भवथः कदिवा काश्विनाभिपित्वं कुरुथः क्व वसथः। को वा शयने विधवेव देवरम्।

देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते।

विधवा विधातृका भवति। विधवनाद्वा, विधावनाद्वेति। चर्मशिरा अपि वा धव इति मनुष्यस्तद्वियोगाद्विधवा। देवरो दीव्यति

कर्मा। मर्या मनुष्यो धर्मा। योषायौतेरा कुरुते सहस्थाने इति निरुक्तः।"

सायणाचार्य ने निरुक्त का जो भाग उद्धृत किया है वह उसी है, जैसा मूल निरुक्त में दिया हुआ है। इसलिए हमने नहीं दिया। इसमें जो वाक्य हमने बड़े अक्षर में लिखा है अर्थात् "देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते" इससे स्पष्ट है कि न केवल निरुक्ताचार्य श्रीयास्काचार्य मुनि ही 'देवर' का अर्थ द्वितीय वर का लेते थे, किन्तु सायणाचार्य ने भी उनके कथन को उद्धृत उनसे सहमत होना प्रकाशित किया है।

इस पर पं० की टिप्पणी भी विचारणीय है :—

"जैसे विधवा देवर को और जैसे स्त्री पति को" इन दो अलग अर्थों से, विधवा का देवर से सम्बन्ध स्पष्ट है और वही बात 'देवरः कस्मात् द्वितीयो वर उच्यते' से स्पष्ट की है; किन्तु विधवा का ब्रह्मचर्य से रहना अधिक उच्च धर्म है। देवर वा दूसरे वर से सम्बन्ध भी शास्त्रविहित ही है। दुर्गाचार्य के अर्थ से भी यही बात सिद्ध है।

महामहोपाध्याय पं० शिवदत्त ने इस पर अपनी सविस्तार टिप्पणी देकर चार पक्ष दिखलाए हैं, विधवा का ब्रह्मचर्य में रहना उत्तम है, सती हो जाना मध्यम है और फिर विवाह कर लेना है। इन तीनों पक्षों को वेद-सम्मत् कह कर चौथे पक्ष अर्थात् बिना विवाह व्यभिचार को वेद-विरुद्ध और गर्भ-हत्या इत्यादि का मूल ठहराया है *

* पण्डित कृत निरुक्त, पृष्ठ—१७१

इतने महानुभावों की सम्मति होते हुए भी यह कैसे कहा जा सकता है कि इस मन्त्र से विधवा को द्वितीय पति से विवाह करने की आज्ञा नहीं है।

(प्रश्न) "देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते" यह वाक्य यास्काचार्य का नहीं; किन्तु किसी विधवा-विवाह के पक्षपाती ने मिला दिया है। देखो दुर्गाचार्य ने समस्त निरुक्त पर भाष्य है; परन्तु इस वाक्य पर भाष्य ही नहीं किया। इसके अतिरिक्त यह प्राचीन तीन पुस्तकों में नहीं है, इसीलिए निरुक्त के छापने-वालों ने इसे कोष्ठ में रख दिया है।

(उत्तर) शाबाश! मानते हैं! खूब कहा!! अब तक तो स्वामी दयानन्द के मनु आदि में प्र बतलाने से आकाश-एक किया जाता था और आक्षेप करते थे कि यह आर्य-सामाजिक लोग अपने अनुकूल प्रमाणों को तो मानते हैं और जब कोई प्रमाण इनके मत के विरुद्ध ठहरता है तो उसे झट क्षेपक कह कर टाल देते हैं, आज आप स्वयं इसको क्षेपक मानने लगे। यद्यपि स्वामी जी क्षेपक मानने के लिए युक्तियाँ रखते हैं; परन्तु तुम तो बिना युक्ति के ही क्षेपक मानने लगे। भला निरुक्त के वचन को क्षेपक मानने से कैसे बच सकोगे? यदि एक पग चले हो, तो दो और भी सही! यह क्यों नहीं कह देते कि ऋग्वेद का 'विधवेव देवरं' वाक्य ही क्षेपक है, या यह मन्त्र हैं? नीचे लिखी युक्तियों से यह वाक्य क्षेपक नहीं हो :—

(१) बाबा सायण ने इसको क्षेपक नहीं । इनका कहना

तो तुम टाल ही नहीं सकते। देखो ऋग्वेद का सायण-भाष्य जिसमें निरुक्त के इस वाक्य को ज्यों का त्यों उद्धृत किया है।

(२) दुर्गाचार्य ने भी इसको क्षेपक नहीं बताया। यह तुम्हारी ही मन-गढ़न्त युक्ति है। यदि दुर्गाचार्य ने इस पर भाष्य नहीं किया, तो इसका कारण वाक्य की सरलता है, न कि कोई और बात !

(३) जिन प्राचीन तीन पुस्तकों में तुम इसको लिखा नहीं बताते उनके सायण से भी प्राचीन होने का तुम्हारे पास क्या प्रमाण है ? है कि किसी-किसी पुस्तक में से विधवा-विवाह के किसी विरोधी ने इसे निकाल कर अपने पक्षपात का परिचय दिया हो। जैसा कुछ स्मृतियों का हाल है !

(४) यास्काचार्य ने यहाँ दो शब्दों अर्थात् 'विधवा' और 'देवर' की निरुक्ति की है, यदि तुम इस वाक्य को क्षेपक मानोगे, तो 'देवर' की निरुक्ति किस प्रकार करोगे ! 'द्विवर' या 'द्वितीय वर' से तो 'देवर' बन है, परन्तु 'वरानुज' या 'वरभ्राता' से देवर किसी सिद्ध नहीं हो ।

(५) इस वाक्य को कोष्ट में किसी तुम सरीखे ने ही रख दिया होगा, न तो सायणाचार्य ने ही इसे कोष्ट में रक्खा है और न पक्षपात रहित छापे वाले ऐसा करते हैं। देखो 'निर्णय-सागर' प्रेस बम्बई की छपी हुई शाके १८३७ सन् १८९५ की निरुक्त में इस वाक्य को कोष्ट में बन्द नहीं किया गया।

(६) महामहोपाध्याय पं० शिवदत्त शर्मा भी ऐसा नहीं मानते।

(७) इस वाक्य के मिलाने का विधवा-विवाह प्रचारकों को कारण भी क्या था? क्योंकि बिना इसे मि ए भी 'विधवेव देवरं' वेद-वाक्य से इतना तो सिद्ध ही है कि विधवा अपने देवर के शयन कर सकती है।

(प्रश्न) संसार जानता है कि 'देवर' पति के छोटे भाई को कहते हैं। द्वितीय वर की तो तुम्हारी ही कल्पना है।

(उत्तर) नहीं, देखो 'देवर' नाम तो दूसरे ही वर का है। चाहे वह पति का छोटा भाई हो या बड़ा भाई वा कोई अन्य; परन्तु चूँकि निकटतम होने के कारण प्रायः पति के छोटे भाई के ही अधिकांश में नियोग होता था; इसलिए पति के छोटे भाई को ही 'देवर' कहने लगे। 'यौगिक' से 'योगरूढ़ि' हो गया। देखो सत्यवती अपनी पुत्र-वधू से कहती है :—

कौसल्ये देवरस्तेऽस्तिसोऽद्यत्वाऽनुप्रवेक्ष्यति ।
अप्रमत्ता पतीक्ष्यैनं निशीथे ह्यागमिष्यति ॥

—महाभरत आदि पर्व, अ० १०६, श्लोक २

अर्थ—"कौसल्ये! तेरा दूसरा वर है, सो आज तेरे आएगा, तू अप्रमत्त होकर उसकी प्रतीक्षा (इन्तज़ार) करना। वह आधी रात को तेरे पास आएगा।"

यहाँ देवर से तात्पर्य व्यास ऋषि से है; जो कौसल्या के पति के बड़े भाई थे, न कि छोटे और जिन्होंने सत्यवती से प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं कौसल्या से नियोग द्वारा सन्तानोत्पन्न करूँगा। यहाँ 'देवर' शब्द का इसीलिए प्रयोग हुआ है कि वह दूसरे वर थे, नहीं तो 'ज्येष्ठ' शब्द का प्रयोग होना चाहिए था :—

(प्रश्न) इस मैं तुमने 'अश्विना' या 'अश्विनौ' का अर्थ 'स्त्री-पुरुष' किया है, यह ठीक नहीं। स्वामी दयानन्द की यह नवीन कल्पना है, जिसका वेद में एक भी प्रमाण नहीं और सायणाचार्य भी ऐसा नहीं मानते। 'अश्विनौ' का अर्थ यहाँ अश्विनीकुमार देवता से है।

(उत्तर) तुम्हारे देववाद की बलिहारी है! यदि सब को देव ही मान लोगे, तो भौतिक पदार्थ कहाँ रहेंगे और इनका क्या नाम धरोगे? देखो, स्त्री-पुरुष भी तो दिव्य गुणों के कारण देवते ही हुए। स्त्री को 'देवी' और पुरुष को 'देव' कहने की तो आज-कल भी प्रथा है!

'अश्विनौ' का अर्थ 'स्त्री-पुरुष' करना, स्वामी दयानन्द की निजी कल्पना नहीं; किन्तु वेद स्वयं 'अश्विनौ' का अर्थ 'स्त्री-पुरुष' करते हैं। स्वतः प्रमाण वेद के होते हुए इधर-उधर भटकना भूल है। देखो :—

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात्॥

—ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ८५, मन्त्र ६

सायणाचार्य इसका भाष्य इस प्रकार करते हैं :—

"सोमो वधूयुर्वधूकामो वरोऽभवत्। तस्मिन्समयेऽश्विना वुभोभौ वरावरावास्तां। अभूतां। यद्यदा सूर्यां पत्ये शंसन्तीं पति कामायमानां। पर्याप्तयौवनामित्यर्थः। सूर्यां मनसा सहिताय सोमाय वराय सविता तत्पिता ददात्। प्रादात् दित्सां चकार।"

भापार्थ—"सोम वधू की करने अर्थात् वर हुआ। उस समय 'अश्विनौ' इन दोनों वधू तथा वर की संज्ञा, जब पुत्री पति की प्रशंसा करने वाली, पति को चाहने वाली अर्थात् पूर्ण युवावस्था को हुई। सविता अर्थात् पिता ने उसे मन से सोम अर्थात् वर को दिया।"

यहाँ इतनी स्मरणीय हैं :—

(१) 'अश्विना' वेद-मन्त्र में 'वरा' के लिए है, जो 'अश्विनौ' और 'वरौ' का आर्प प्रयोग है। 'वरौ' यहाँ द्वन्द्वैकशेष समास है, जैसे ' च पिता च पितरौ' या ' च च भ्रातरौ' 'हंसी च हंसश्च हंसौ'; इसी प्रकार 'वधू च वरौ'। सायणाचार्य भी इसका अर्थ "अश्विनावुभोभौ वरावरावास्तां।" अर्थात् ' रौ' करते हैं। 'वरावरौ' का अर्थ है "वरा च वरश्च वरावरौ"। 'वरा' * है वधू का। जैसे 'कृष्ण' से स्त्रीलिङ्ग 'कृष्णा' और 'शिव' से 'शिवा' बनता है, इसी प्रकार 'वर' से स्त्रीलिङ्ग 'वरा' बनता है। यहाँ वेद और सायण दोनों के अनुसार 'अश्विनौ' का अर्थ स्त्री-पुरुष ही है और स्वामी दयानन्द का अर्थ ठीक है।

(२) 'सोम' यहाँ 'वर' का पर्याय है। सायण ने भी सोम का अर्थ वर ही किया है। देखो 'सोमाय वराय'। वेद में 'सोम' के लिए 'वधूयुः' शब्द आया है, जिसका अर्थ सायण ने "वधू :" या वधू की इच्छा करने वि है।

---

* स्वरुः पति वरा (सिद्धान्ते भट्टोजिदीक्षितः)

(३) यहाँ 'सविता' का अर्थ 'पिता' है, जो के भी अनुकूल है। 'सविता' और 'प्रसविता' समानार्थक हैं।

(४) इसलिए 'सूर्या' का अर्थ पुत्री हुआ। इसका विधान ऋग्वेद के १० वें मण्डल के समस्त ८५ वें सूक्त के देखने से पाया है।

(५) इस में यह भी बताया है कि स्त्री-पुरुष का युवा-में ही विवाह होना चाहिए। जब पुरुष 'वधूयुः' और स्त्री 'पत्येशंसन्ती' हो जाय।

दूसरा प्रमाण :—

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥

—ऋग्वेद १०, सूक्त ८५, मन्त्र ४०

सायण-भाष्य—" सोमः भावी सन् विविदे। लब्धवान्। गन्धर्व उत्तरः सन् विविदे लब्धवान्। अग्निस्तृतीयः पतिस्ते तव। पश्चात् मनुष्यजाः पतिस्तुरीयश्चतुर्थः।"

हमारा अर्थ :—"(सोमः) सोम (प्रथमः) पहले (विविदे) है (उत्तरः) फिर (गन्धर्वः) गन्धर्व (विविद) करता है। (तृतीयः) तीसरा (पति) पति (ते) तेरा (:) अग्नि है (ते) तेरा (तुरीयः) चौथा (मनुष्यजाः) मनुष्यज है।"

इस में पतियों के चार नाम बताए हैं। पहले पति को 'सोम', दूसरे को 'गन्धर्व', तीसरे को 'अग्नि' और चौथे को

'मनुष्यज' कहते हैं। इससे सिद्ध है कि स्त्री के आवश्यकतानुसार एक से अधिक पति हो सकते हैं। सायण-भाष्य भी इसका विरोध नहीं करता।

यही मन्त्र कुछ परिवर्तित रूप में अथर्ववेद में भी आया है, जिससे यही बात और भी स्पष्ट हो जाती है :—

सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेपरः पतिः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥

—अथर्ववेद काण्ड १४, सूक्त २, मन्त्र ३

अर्थात्—"पहले तू सोम की पत्नी है। दूसरा पति तेरा गन्धर्व है, तीसरा पति अग्नि है और चौथा मनुष्यज।"

इसी के आगे एक और मन्त्र है, जो इस मन्त्र के अर्थ पर भली-भाँति प्रकाश डालता है :—

सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो ददग्नये।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम्॥

—ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ८५, मन्त्र ४१
—अथर्ववेद काण्ड १४, सूक्त २, मन्त्र ४

सायण-भाष्य—सोमो गन्धर्वाय प्रथमं ददत्। प्रादात् गन्धर्वो-ऽग्नये प्रादात्। अथो अपि चाग्निरिमां कन्यां रयिं धनं पुत्रांश्च मह्य-मदात्। (सायणकृत ऋग्वेद भाष्य)

भावार्थ—"सोम ने पहले गन्धर्व के लिए दिया। गन्धर्व ने अग्नि के लिए और अग्नि ने भी इस कन्या को, धन को, पुत्रों को, मुझे दिया।"



पैशाचिक विवाह

देखो तो बूढ़े की बातें, पहुँच चुका यम का फ़र्मान।
तो भी उसको बना हुआ है, अभी जवानी का अर्मान॥

इन दोनों मन्त्रों के एक पढ़ने से (और यह दोनों वेदों में ही दिए हुए हैं तथा एक-दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं) यही विदित होता है कि स्त्री के लिए भी विशेष अवस्था में एक से अधिक पति करने की आज्ञा है।

(प्रश्न) यह तो तुम्हारा महा अन्धेर है कि सोम, गन्धर्व और अग्नि जो देवताओं के नाम हैं, उनको साधारण मनुष्य बना दिया। वस्तुतः बात यह है कि कन्या को सब से पहले सोम देवता भोग लेता है, उसके पश्चात् गन्धर्व, गन्धर्व-देवता के पश्चात् अग्नि का नम्बर आता है। अग्नि के भोग चुकने के पश्चात् स्त्री पुरुष के भोगने के योग्य होती है। देखो अत्रि-स्मृति में भी लिखा है :—

पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोम गन्धर्व वह्निभिः।
भुञ्जते मानवाः पश्चान् न ता दुष्यन्ति कर्हिचित्* ॥

अर्थात्—"स्त्रियाँ पहिले सोम, गन्धर्व, वह्नि (अग्नि) नामक देवताओं द्वारा भोग ली जाती हैं। इसके पश्चात् उनको मनुष्य भोगते हैं और उनको कुछ भी दोष नहीं लगता।"

(उत्तर) क्या यह तुम्हारा अन्धेर नहीं है कि स्त्रियों तथा बेचारी छोटी-छोटी कन्याओं को देवताओं के साथ सङ्गम करने का दोष लगाते हो और जिन सोम, गन्धर्व और अग्नि को तुम पवित्र, पूजनीय और उपास्य देव मानते हो, उन्हीं पर कन्याओं के साथ व्यभिचार का दोष देते हो। मैं पूछता हूँ कि क्या इन देवताओं के देवजाति की ही स्त्रियाँ (देवियाँ) नहीं हैं, जो वह

* "श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस" मुद्रित अत्रि-स्मृति श्लोक, १६१

इनको छोड़ कर बेचारे मनुष्यों की लड़कियों का धर्म-भ्रष्ट करते फिरते हैं। तुम्हारी देवमाला में तो पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग सभी प्रकार से देव और देवियाँ हैं। देखो इन्द्र के लिए इन्द्राणी, शिव के लिए पार्वती, विष्णु के लिए लक्ष्मी, अग्नि के लिए आग्नेयी उपस्थित हैं। फिर क्या सोम और गन्धर्व पत्नी रहित और बिन ब्याहे ही हैं अथवा उनकी स्त्रियों का शरीरान्त हो गया है? फिर यह भी तो बताओ कि गन्धर्व कौन सा देवता विशेष है—उसका निवास कहाँ रहता है? साधारण देवमाला पर विश्वास करने वाले लोग तो गन्धर्व, किन्नर आदि योनि विशेष मानते हैं। यदि यह योनियाँ हैं, तो इनकी स्त्रियाँ भी अवश्य होंगी। फिर मनुष्य की बालिकाओं और गन्धर्वों की दैवी स्त्रियों में ख़ूब सौतिया डाह रहता होगा। तीसरी बात यह भी तो बतानी चाहिए कि देवता कन्याओं को ही क्यों भोगते हैं और किस अवस्था तक की कन्या को भोगते हैं? क्या यदि कोई स्त्री आयु-पर्यन्त ब्रह्म-चारिणी रहना चाहे, तो भी ये उसे भोग लेंगे? यदि ऐसा है, तो स्त्रियों के लिए बड़ी आपत्ति होगी!

रहा अत्रि-स्मृति का प्रमाण! यह तो ऐसी गप्प है कि शायद तुम भी इसे मानने के लिए तैयार न होगे; क्योंकि इस स्मृति के १९० वें श्लोक में लिखा है:—

न स्त्री दुष्यति जारेण ब्राह्मणो वेद कर्मणा।
नापो मूत्र पुरीषाभ्यां नाग्निर्दहति कर्मणा॥

—अत्रि-स्मृति, श्लोक १९०

अर्थ—"स्त्री को व्यभिचार का दोष नहीं लगता, न ब्राह्मण

को वेद-कर्म से, न जल को मल और मूत्र से दोष लगता है और न अग्नि कर्म द्वारा जलती है।"

इसी श्लोक के आगे 'पूर्व स्त्रिय इति' तुम्हारा श्लोक दिया हुआ है, इससे समस्त झगड़ा विवाह और पुनर्विवाह का मिट जाता है। तुम्हारे अत्रि मुनि ने तो स्त्रियों के व्यभिचार को ब्राह्मणों के किए हुए वेद-विहित कर्मों से उपमा दे दी और गे व्यभिचार के दोष से सदा के लिए मुक्त कर दिया। इस सिद्धान्त से तो वेश्याएँ भी कुलीन ब्रह्मचारिणी स्त्रियों के समान हो गई! छीः! छीः! छीः! अब तुम्हारे लिए नीचे लिखे दो ही मार्ग हैं, एक को त्यागो और दूसरे को ग्रहण करो :—

(१) अत्रि मुनि के दोनों श्लोकों को प्रमाण मानो और न केवल पुनर्विवाहित विधवाओं को ही; किन्तु वेश्याओं तक को दोष रहित कहो। यदि ऐसा कहोगे, तो विधवा-विवाह के प्रचारकों को किस मुख से बुरा कहने का साहस कर सकोगे?

(२) इन दोनों प्रमाणों को त्याज्य मान कर सोम, गन्धर्व आदि साधारण पतियों के नाम समझो और इस प्रकार विशेष दशाओं में विधवाओं को अन्य पति करने का अधिकार दो।

(प्रश्न) नहीं, नहीं! देवताओं के भोग से यह तात्पर्य नहीं, जैसा तुम लेते हो। "गर्भोत्पत्ति के से ही सोम देवता के प्रधान आदि कारण होने से सोमदेव कुमारी कन्या को पहले प्राप्त होता है अर्थात् सब अङ्गों में विशेषता से प्रविष्ट होता है।" जब अवयवों के विकास से कन्या में यौवन का हुआ, तो गन्धर्व पति हुआ; क्योंकि गन्धर्व को यौवन की रक्षा करने

माना गया है। फिर विवाह से होमाग्नि के जाई गई, तो वही पति कहलाया।

(उत्तर) धन्य हो! तो देवताओं का कन्याओं को भोग करना स्पष्ट लिखा है, जैसा हम अत्रि-स्मृति से बता चुके हैं और जो एक असम्भव बात है। दूसरे यदि कहो कि देवता भोगते नहीं; किन्तु रक्षा करते हैं और बाल्यावस्था से तरुणाई तक भिन्न-भिन्न देवों का आधिपत्य रहता है, तो क्या कारण है कि पुरुषों की बाल्यावस्था से लेकर युवावस्था तक यही देव अपना आधिपत्य नहीं रखते? जिन विद्वानों ने मनुष्य-शरीर के सङ्गठन पर पूरा विचार किया है, वह भली जानते हैं कि स्त्री और पुरुष दोनों के शरीरों की कई अवस्थाएँ होती हैं और जिस प्रकार पुरुषों का शरीर वृद्धि, स्थिति तथा क्षय को प्राप्त होता है उसी प्रकार स्त्री का भी! यदि कन्याओं की गर्भोत्पत्ति के से ही सोम देवता प्रधान होता है, तो लड़कों की गर्भोत्पत्ति से ही सोम देवता लड़कों का भी पति क्यों नहीं होता? जिस अवयवों का विकास के शरीर में होता है; उसी पुरुषों में भी! फिर गन्धर्व दोनों का पति क्यों नहीं? विवाह से पूर्व केवल कन्या ही तो होमाग्नि के पास नहीं लाई जाती, वर भी उसी प्रकार यज्ञ में सम्मिलित होता है और की प्रदक्षिणा करता है, फिर क्या अग्नि, वर और वधू दोनों का ही पति है अथवा केवल एक का? यदि कन्या का, तो वर का भी क्यों नहीं? यदि तुम्हारी युक्ति ठीक है, तो स्त्री-पुरुष दोनों पर समानतया घटती है और यदि वर के पक्ष में तुम इसको -

नहीं कहते, तो कन्या के पक्ष में भी ऐसा ही कहने के लिए बाधित होना पड़ेगा। क्या सोम, गन्धर्व और अग्नि आदि देवों के कन्याओं के भोगने के सौम्या, गन्धर्व्या, आग्नेयी आदि देवियाँ भी तो कुमार बालकों को नहीं भोग ीं ? यदि ऐसा है तो ब्रह्मचर्य का उपदेश ही सर्वथा मिथ्या और व्यर्थ हो है; क्योंकि स्त्री-पुरुष ब्रह्मचारी तब रहें जब देवी-देवता रहने दें। क्या अद्भुत सिद्धान्त है जिसको सुन कर ही हँसी ाी है।

देखो यहाँ सोम, गन्धर्व आदि पतियों की ही संज्ञा की गई है। इसका प्रमाण ऋग्वेद, १०, सूक्त ८९ के ६ वें से भी मिलता है, जिसे हमने 'अश्विनौ' शब्द का अर्थ दिखलाने के लिए उद्धृत किया है। स्पष्ट दिया है कि :—

"सोमो वधूयुरभवत्"

अर्थात्—'सोम' बधू की कामना हुआ। यदि यहाँ 'सोम' का अर्थ अपना अधिष्ठातृ 'सोमदेव' करोगे, तो उसको 'बधू' की इच्छा करने भी पड़ेगा। फिर किस से कह सकोगे कि गर्भोत्पत्ति के से ही सोम को अधिकार होता है। क्या कन्या को भी वधू कह सकोगे ? फिर इस में यह भी है :—

"सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविता ददात्"

अर्थात्—"पति ां। पर्याप्तयौवनामित्यर्थः" (इति सायणः) युवती और पति की कामना करने वाली कन्या को सविता ने सोम के लिए दिया। पर्याप्तयौवना पर तो तुम्हारे मत

के अनुसार गन्धर्व का आधिपत्य होता है और इस मन्त्र में सोम को इसका पति कहा जाता है। फिर सायणाचार्य ने 'सोम' का अर्थ स्पष्टतया 'वर' किया है (देखो "सोमाय वराय" इति सायणः) इससे भी हमारे ही मत की पुष्टि होती है अर्थात् 'सोम' स्त्री के पहले पति को कहते हैं। यदि 'सोम' स्त्री का पहला पति हुआ, तो गन्धर्व और अग्नि के द्वितीय और तृतीय पति होने में सन्देह ही क्या?

तीसरा प्रमाण—

अघोरचक्षुरपतिघ्न्योधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।
वीरसूर्देवृकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥

—ऋग्वेद, १०, ८५, मन्त्र ४४

(अघोरचक्षुः) अच्छी चक्षु वाली (अपतिघ्नी) पति का विरोध न करने वाली, (शिवा) [illegible]लकारिणी (पशुभ्यः) पशुओं के लिए (सुमनाः) प्रसन्न-चित्त, (सुवर्चाः) शुभगुणयुक्त ([illegible]:) वीर पुत्र उत्पन्न करने वाली (देवृकामा) दूसरे पति को चाहने वाली (स्योना) सुख युक्त (नः) हमारे (द्विपदे) मनुष्यादि के लिए (शं) कल्याण-कारिणी और (चतुष्पदे) गाय-भैंस आदि के लिए (शं) कल्याण करने [illegible] ([illegible]) हो।

यह 'देवृकामा' शब्द इस बात का सूचक है कि स्त्रियों को [illegible]श्यकता पड़ने पर पुनर्विवाह का अधिकार है।

यही वेद-मन्त्र कुछ रूपान्तर के साथ [illegible] में भी है। देखो :—

अदेवृघ्न्यपतिघ्नी हैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥

—अथर्ववेद का० १४, सूक्त २, मन्त्र १८

अर्थ—"हे (अदेवृघ्न्यपघ्नी) देवर और पति को दुःख न देने वाली स्त्री ! तू (इह) इस गृहाश्रम में (पशुभ्यः) पशुओं के लिए (शिवा) कल्याण करने वाली (सुयमा) अच्छे प्रकार नियम में चलने वाली (सुवर्चा) शुभ गुणयुक्त (प्रजावती) उत्तम सन्तान वाली (वीरसूः शूर-वीर पुत्रों को उत्पन्न करने वाली (देवृकामा) देवर की कामना करने वाली (स्योना) सुख वाली (एधि) प्राप्त हो। (इमम्) इस (गार्हपत्यं) गृहपति अर्थात् गृहस्थाश्रम सम्बन्धी (अग्निं) अग्नि अर्थात् हवन करने के योग्य अग्नि को (सपर्य) ` किया करे।"

इस मन्त्र में ऋग्वेद के उपर्युक्त मन्त्र में बहुत कम भेद है; परन्तु 'देवृकामा' शब्द दोनों में पड़ा हुआ है। हमने इस अध्याय में वेद का जो पहला प्रमाण दिया है, उससे सिद्ध हो चुका है कि 'देवर' शब्द का अर्थ प्राचीन भाष्य-प्रणाली के अनुसार 'दूसरा वर' है। अतः इन दोनों मन्त्रों से सिद्ध होता है कि स्त्री को दूसरे पति की विशेष अवस्थाओं में आज्ञा है।

(प्रश्न) यह मन्त्र विवाह सम्बन्धी है और इसलिए इसमें पुनर्विवाह का वर्णन अशुभ है। इस मन्त्र का अर्थ है 'पति के भाइयों को चाहने वाली अर्थात् उनसे प्रेम करने वाली !'

(उत्तर) यहाँ दो शब्द हैं 'देवृ' और ' ' जिनसे मिल कर

'देवृकामा' बना। ' ' शब्द ही बताता है कि 'देवर' के साथ सङ्गमन की इच्छा, अभीष्ट है। इसके अर्थ यह हो सकते हैं :—

(१) पति के जीवन में उसके भाइयों से सङ्गमन की इच्छा करने वाली।

(२) पति की मृत्यु पर उसके भाई के साथ की इच्छा करने वाली।

(३) अन्य पति की इच्छा करने वाली।

पहला अर्थ तो हम-तुम दोनों को ही त्याज्य है; क्योंकि अन्य वेद-मन्त्रों के विरुद्ध है और इसलिए अधर्म है। दूसरे और तीसरे अर्थों से विधवा-विवाह या नियोग के सिवाय अन्य सिद्ध ही नहीं होती।

(प्रश्न) 'देवृकामा' से 'देवर के साथ सहवास करने की इच्छा करने वाली' कैसे अर्थ हुआ? क्या 'पुत्रकामा' से भी 'पुत्र के साथ सहवास करने वाली' अर्थ होता है?

(उत्तर) नहीं-नहीं! 'पतिकामा' या 'देवृकामा' में ' ' शब्द इसी अर्थ का वाचक है। यह तो प्रत्येक प्रकरणवित् पुरुष मान लेगा। सायण ने भी 'पतिं कामयमाना' का अर्थ 'प्राप्तयौवना' किया है। यदि कहें कि 'अमुक स्त्री अमुक पुरुष की कामना करती है' तो क्या इसका वही अर्थ होगा जो 'पुत्रकामा' का होता है?

बताओ तो सही कि 'देवर की कामना' का और अर्थ ही हो सकता है। 'पुत्रकामा' उस स्त्री को कहेंगे जिसे यह इच्छा हो कि मेरे पुत्र उत्पन्न हो। इसी प्रकार 'देवृकामा' का क्या यह अर्थ

करोगे कि 'वह स्त्री जिसकी इच्छा हो कि मेरी . के पुत्र उत्पन्न हो'; क्या ख़ूब !

(प्रश्न) क्या विवाह के समय आगे के लिए पति का मरण और दूसरे पति की इच्छा का प्रकाश अशुभ नहीं ?

(उत्तर) शुभाशुभ का विचार धर्माधर्म के अन्तर्गत है। जो धर्म है, वही शुभ है; जो अधर्म है, वही अशुभ ! जिस समय पति विवाह के समय इस मन्त्र को पढ़ता है, उस समय वह केवल स्त्री के अधिकार का वर्णन करता है अर्थात् यदि मेरी मृत्यु हो जाय, तो तुझे अधिकार होगा कि पुनर्विवाह कर सकती है। इससे यह तात्पर्य कदापि नहीं कि पति अपना मरण चाहता है। यदि कोई पुरुष विवाह के या इससे पहले कहता है कि मैंने अपने जीवन का बीमा कर दिया है, तो कोई इसको अशुभ नहीं कहता। यद्यपि तात्पर्य यही होता है कि यदि मैं अकस्मात् मर जाऊँ, तो मैंने ऐसा प्रबन्ध कर दिया है कि मेरी स्त्री के भोजन-छादन में विघ्न न पड़ेगा। सभी जानते हैं कि मरना-जीना स्वाभाविक है और ऐसी घटनाएँ हुआ ही करती हैं। जब इङ्गलैण्ड की पार्लिमेण्ट एक सम्राट् के जीवन में ही यह पास करती है कि इस राजा का उत्तराधिकारी अमुक पुरुष होगा, तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पार्लिमेण्ट सम्राट् को मारना चाहती है या उसके साथ भक्ति नहीं करती। सम्भव है कि पार्लिमेण्ट यही चाहती हो कि यही सम्राट् सर्वदा राज किया करे; परन्तु उसके चाहने मात्र से तो काम नहीं चलता। मृत्युदेव तो अपना कर राजा और रङ्क सभी से लेते हैं। इसलिए प्रबन्धार्थ ऐसा करना ही पड़ता है कि जीवन में ही

अवश्यम्भावी मृत्यु के लिए यथोचित् अथवा आवश्यकतानुसार प्रवन्ध कर दिया जाय। यह मन्त्र इस का भी सूचक है कि पति को स्त्री के स्वाभाविक अधिकार छीनने का अधिकार नहीं। उसने भरी सभा में प्रतिज्ञा कर ली है कि यदि स्त्री को धर्म की मर्यादा के भीतर नियोग करने की आवश्यकता तथा इच्छा हुई, तो उसका पति उसका प्रतिरोध नहीं करने का; किन्तु प्रसन्नता से आज्ञा दे देगा।

इस मन्त्र में स्त्री के अधिकार और कर्त्तव्य दोनों का वर्णन है; जिनका विवाह के समय पढ़ा जाना किसी प्रकार भी अशुभ नहीं ठहरता। विवाह केवल उत्सव ही नहीं है; किन्तु इसके ही एक क़ानूनी मामला भी है। क़ानून में शुभ और अशुभ का विचार नहीं हुआ करता।

चौथा प्रमाण—

इयं नारी पतिलोकं वृणाना, निपद्यत उपत्वा मर्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि।

—अथर्ववेद १८, सूक्त ३, १

यह मन्त्र कुछ रूपान्तर के साथ तैत्तिरीय आर में भी
। है। पहले हम इसका अपना अर्थ देते हैं :—

(इयं) यह (नारी) स्त्री (पतिलोकं) पति के लोक को (वृणाना) चाहती हुई (प्रेतम्) मरे हुए पति के (अनु) पीछे ( ) हे मनुष्य (उपत्वा) तेरे (निपद्यते) आती है (पुराणं) पुराने या सनातन (धर्मं) धर्म को (पालयन्ती) पालती हुई ( ) उसके लिए ( ) इस लोक या में

(प्रजां) सन्तान को (द्रविणं च) और धन को (धेहि) धारण करा।

भावार्थ—"यहाँ मर्त्य अर्थात् मनुष्य सम्बोधन में है और शब्द 'इह' यहाँ भी पड़ा हुआ है।" इससे इतनी बातें स्पष्ट हो जाती हैं :—

(१) वेद आज्ञा देता है कि पति के मरने के पश्चात् (प्रेतं अनु) स्त्री दूसरे पति के पास जावे, जो उसे (प्रजां द्रविणं च) सन्तान और धन अर्थात् भोजन-छादन देने वाला हो।

(२) ऐसा करना सनातनधर्म है; कोई नवीन धर्म नहीं। न केवल प्राचीन काल में ही, किन्तु प्राचीन कल्प में भी ऐसा हुआ था।

तैत्तिरीय आरण्यक में पाठान्तर इस प्रकार है :—

इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उपत्वा मर्त्य प्रेतम्।
विश्वं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि॥

—तैत्तिरीय आ० ६, १, १२

सायण-भाष्य—"हे (मर्त्य) मनुष्य! या (नारी) मृतस्य तव भार्य्या, सा (पतिलोकम्) (वृणाना) कामायमाना (प्रेत, मृतं त्वां, उपनिपद्यते) समीपे नितरां प्राप्नोति। कीदृशी (पुराणं, विश्वम्) अनादि प्रवृत्तं कृत्स्नं स्त्री धर्मं (अनुपालयन्ती) अनुक्रमेण पालयन्ती (तस्यै) धर्म पत्न्यै त्वं इह लोके निवासार्थं अनुज्ञां दत्त्वा (प्रजाम्) पुत्रादिकं (द्रविणम्) (धेहि) सम्पादय।

भावार्थ —"हे मनुष्य, यह जो मरे पति की स्त्री तेरी भार्या है, वह पतिलोक या पतिगृह की कामना करती मरे पति के उपरान्त तुझको प्राप्त होती है। कैसी है वह? अनादिकाल से पूरे स्त्री-धर्म को क्रम से पालती हुई। उस धर्मपत्नी के लिए तू लोक में निवास की आज्ञा देकर पुत्रादि और धन की प्राप्ति ।"

यहाँ सायण का ऐसी स्त्री के लिए 'धर्मपत्नी' शब्द प्रयुक्त ।, जिसने अपने पहले पति के मरने पर दूसरा विवाह किया है, उनके विधवा-विवाह के पक्ष को सिद्ध करता है।

(प्रश्न) पतिलोक से यहाँ इस लोक का नहीं; किन्तु मृत्यु के पश्चात् दूसरे लोक का तात्पर्य है?

(उत्तर) नहीं-नहीं! 'इह' शब्द पर भी तो ध्यान दो, जिसका 'इस लोक' के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता। इसी का अर्थ सायण जी 'इहलोक' करते हैं।

पाँचवाँ प्रमाण—

"उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुपशेष एहि।
हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभिसंबभूव॥"

—अथर्ववेद का० १८, सूक्त ३, २,

—ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त १८, ८

सायण-भाष्य—हे (नारि) मृतस्य पत्नी (जीवलोकं) जीवानां पुत्रपौत्राणां स्थानं लोकं गृहमभिलक्ष्य (उदीर्ष्व) अस्मात् स्थानात् उत्तिष्ठ (गतासुम्) अपक्रान्त (एतं) पतिं (उपशेषे) समीपे स्वपिषि तस्मात् त्वं (एहि) आगच्छ। यस्मात् त्वं (हस्त-

आभस्य) पाणिग्राहं कुर्वतः (दधिषोः) गर्भस्य निधातुः (तव) अस्य (पत्युः) सम्बन्धादागतं (इदं) जनित्वम् (जायात्वं अभिलक्ष्ये (सम्बभूव) सम्भूतासि अनुसरणं निश्चयं अकार्षीः तदा-गच्छः ।

भावार्थ—"हे मरे हुए पति की पत्नी ! जीवित लड़कों, पोतों का लोक अर्थात् जो गृह है, उसको विचार करके इस जगह से उठ । प्राणान्त हुए पति के समीप तू सोती है वहाँ से आ । जिससे तू पाणिग्रहण करने गर्भ के धारण कराने वाला इस पति के सम्बन्ध से आया हुआ जो है, इसको स्त्री होने के विचार से निश्चय करके तू अनुसरण कर—इसलिए आ ।

यही मन्त्र तैत्तिरीय आरण्यक* में भी आया है, जिसका भाष्य सायणाचार्य इस प्रकार है :—

हे (नारि) त्वं (इतासुम) गत प्राणं (एतम्) पतिं (उपशेषे) उपेत्य करोषि (उदीर्ष्व) अस्मात्पति समीपादुत्तिष्ठ (जीवलोकमभि) जीवन्तं प्राणसमूहमभिलक्ष्य (एहि) आगच्छ । (त्वम्) (हस्तग्राभस्य) पाणिग्राहवतः (दधिषोः) पुनर्विवाहेच्छोः (पत्यु) एतत् (जनित्वम्) जायात्वं (अभिसम्बभूव) आभिमुख्येन समयकं प्राप्नुहि ।

भावार्थ—"हे नारी ! तू इस मृत-पति के पास लेटी है । इस पति के समीप से उठ ! जीवित पुरुषों को विचार कर आ और तू हाथ पकड़ने वाले पुनर्विवाह की इच्छा करने वाले इस पति को जाया-भाव (स्त्री-भाव) से अच्छी तरह प्राप्त हो ।

*तैत्तिरीय अ० ६, १, १४

यहाँ हमने सायणाचार्य का अर्थ इसलिए दिया है कि कट्टर से कट्टर विधवा-विवाह के विरोधी भी सायण से विमुख नहीं हो सकते। सायण ने इस मन्त्र के अर्थ में 'पुनर्विवाहेच्छु' शब्द का प्रयोग करके समस्त झगड़े को दूर कर दिया; परन्तु हम यहाँ इटावा निवासी पं० भीमसेन जी शर्मा का अर्थ * भी उद्धृत किए देते हैं, जिससे इसकी और अधिक सम्पुष्टि हो सके :—

"उदीर्ष्व नार्यभि०" अत्र पत्यन्तर विधायके मन्त्रेऽर्थस्यापि विवादो नास्ति। हे नारि! त्वं गतासु मृतमेतं पतिमुपशेषे तस्य समीपे शोकेन पतितासि ते विहायाभिजीवलोकं जीवन्त प्राणि-समूहमभिमुखीकृत्योदीर्ष्वोत्तिष्ठ। उत्थाय च तव हस्तग्रामस्य पाणिग्रहण-कर्त्तुर्दिधिषोर्द्वितीयस्य पत्युरिदं जनित्वं स्त्री भावमभिसम्बभूव।

अस्य मन्त्रस्यायमेवार्थः सायणादिवेद भाष्यकारैरप्यभ्युपागतः। तथा मेधातिथिना भाष्यकारेणापि लिखितम्—(को वा सुपुत्रो विधवेव देवरमित्यादि) एवं प्रकार का मन्त्रा नियोगविधायका वेदेष्वपि दृश्यन्त इति मेधातिथेरतात्पर्यम्। वेदेषु यदा नियोगस्य कर्त्तव्यत्वमुक्तं पुनस् तस्य निन्दिका वेदविरोधिन इति स्पष्टमेव सिद्धम्"

इन सबका भावार्थ देना व्यर्थ होगा। यहाँ पं० भीमसेन जी इतनी बातें कहते हैं :—

(१) यह नियोग विधायक मन्त्र है।

(२) सायणादि भाष्यकार भी इसका ऐसा ही अर्थ ` हैं।

---

* पण्डित भीमसेनकृत "मानव धर्मशास्त्रस्योपोद्‌घातः" पृ० ३००

(३) मनुस्मृति के मेधातिथि भाष्यकार ने भी यही तात्पर्य लिया है।

(४) नियोग के विरोधी वेद के निन्दक हैं।

यह इतने प्रबल हैं कि इनका खण्डन पं० भीमसेन जी की इसके पश्चात् लिखी हुई किसी पुस्तक से नहीं हो सकता; क्योंकि इनमें न केवल उन्होंने अपनी निज सम्मति ही दी है; किन्तु सायण और मेधातिथि को भी सम्मिलित किया है, जिनके वचनों को अब कौन बदल सकता है।

(प्रश्न) इससे तो बड़ी निर्दयता और अ । ती है। एक ओर बेचारा पति मरा हुआ पड़ा है और उसकी स्त्री उसके पास पड़ी रो रही है। दूसरी ओर लोग कहते हैं कि हे स्त्री तू इस मरे हुए पति के पास क्यों पड़ी है? चल उठ और दूसरा विवाह कर! क्या इसी का नाम पातिव्रत्य धर्म है, जिनके लिए प्राचीन इतना अभिमान करता था?

(उत्तर) 'सोना' और 'लेटना' किसी ने अपनी ओर से तो मि नहीं दिया। 'उपशेषे' शब्द स्वयं वेद-मन्त्र में पड़ा हुआ है, जिसका अर्थ सायणाचार्य भी यही करते हैं। यदि तुम वेद को नहीं मानते तो न मानो। यदि वेद को मानोगे, तो वही अर्थ करना पड़ेगा। रही असभ्यता की बात! यह केवल का फेर है। वेद में बहुत से शब्द क्लेतिक अर्थ में आते हैं और लोक में भी यही बात है। जैसे स्त्री का पति के साथ 'सहवास' सम्भोग के अर्थ में प्रयुक्त होता है। कोई कहे कि 'सहवास' का अर्थ केवल रहना है, तो यह उसका प्रकरणानुकूल अर्थ न होगा। यदि माता

अपने पुत्र को लिए कहीं सो रही है, तो उसको कदापि न कहेंगे कि वह अपने पुत्र के साथ सहवास कर रही है। इसी प्रकार यहाँ यह तात्पर्य नहीं है कि चिता में प्रवेश करने से पूर्व ही दूसरे पति से विवाह या नियोग कर लिया जावे; किन्तु आशय यह है कि यदि विधवा दुःखित है या सन्तानोत्पत्ति चाहती है, तो लोग इस मन्त्र को पढ़ सकते हैं।

छठा प्रमाण—

या पूर्वं पतिं वित्वाथान्यं विन्दते परम्।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वियोपतः॥"

—अथर्ववेद काण्ड ९; अनुवाक ३; सूक्त ५; मन्त्र २७

अर्थ—"(या) जो स्त्री (पूर्वं) पहले (पतिं) पति को (वित्वा) पाकर (अथ) उसके पीछे (अन्यम्) अन्य (अपरम्) दूसरे को (विन्दते) प्राप्त होती है (तौ) वे दोनों (पञ्चौदनं) पाँच भूतों को सींचने वाले (अज) ईश्वर को (ददातः) अर्पण होते हुए (न) न (वियोपतः) अलग हों।"

इस मन्त्र में स्पष्टतया बताया गया है कि यदि एक पति के उपरान्त दूसरा पति ग्रहण किया जाय, तो वह एक-दूसरे से न हों, किन्तु ईश्वर का नाम लेते हुए प्रेम से वर्त्ताव करें।

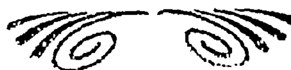
सातवाँ प्रमाण—

समानलोको भवति पुनर्भवापरः पतिः।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति॥

—अथर्ववेद काण्ड ९, सूक्त ५, मन्त्र २८

अर्थ—"(समान लोकः) बराबर स्थान या पद वाला (भवति) होता है (पुनर्भुवा) पुनर्भू अर्थात् उस स्त्री के साथ जिसका पुनर्विवाह हुआ है (अपरः) दूसरा (पति) पति जो (पञ्चौदनं अजं) पाँच भूतों के सींचने वाले परमात्मा को (दक्षिणा ज्योतिषम्) दान-क्रिया है ज्योति जिसकी ऐसे को (ददाति) अर्पण करता है।"

यहाँ या है कि जो पुरुष विधवा से पुनर्विवाह करता है, उसका पद किसी प्रकार अन्य पुरुषों से कम नहीं स जाता ; क्योंकि पुनर्विवाह कोई घृणित कार्य नहीं है।



छठा अध्याय

स्मृतियों सम्मति

तियाँ तो ऐसे प्रमाणों से भरी पड़ी हैं, जिनमें योनि विधवाओं के पुनर्विवाह का विधान है। अधिकन्तु कोई-कोई स्मृति क्षत-योनि विधवा के विवाह में भी कोई सामाजिक अथवा धार्मिक नहीं देखती। इनमें सब से प्राचीन और प्रामाणिक मनुस्मृति है ; क्योंकि कहा है कि :—

"यद्वै किञ्चनमनुरवदत्तद्भेषजं भेषजातायाः।"

अर्थात्—"जो कुछ मनु जी ने कहा है, वह औषधियों की औषधि है।"

इस विषय में निम्न-लिखित प्रश्न मीमांसनीय हैं :—

(१) क्या मनु जी विधवा-विवाह की आज्ञा देते हैं ?

(२) मनुस्मृति में श्लोक विधवा-विवाह-विधायक और कुछ उसके निषेध में भी हैं ?

(३) मनुस्मृति में उन विधवाओं को, जो पुनर्विवाह कर लेती हैं, नीच समझा गया है ?

(४) मनुस्मृति उन पुरुषों को नीच समझती है, जो किसी विधवा से विवाह कर लेते हैं ?

(५) क्या मनुस्मृति के अनुसार पुनर्विवाहित विधवाओं की पैतृक सम्पत्ति की अधिकारी होती है ?

सब से पहले हम वेद को लेते हैं। मनु जी अ कई श्लोकों में बताते हैं कि किसी के लिए वेद से अधिक कोई नहीं—समस्त स्मृतियाँ वेद का ही अनुसरण करती हैं। म वि कालिदास ने भी कहा है :—

"श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ।"

जिसका यही है कि स्मृति का कर्त्तव्य है कि श्रुति अर्थात वेद का अनुसरण करे। जी भी इसी के अनुयायी हैं ; वह लिखते हैं :—

"धर्मजिज्ञासमानानां ाणं श्रुतिः ।"

अर्थात्—"धर्म के जिज्ञासुओं के लिए ण श्रुति है।"

यही नहीं, के अनुसार तो—

"नास्तिको वेद निन्दकः ।"

अर्थात्—"वेद का निन्दक या न मानने नास्तिक शूद्रवत् वहिष्कार्य (शूद्र के निकालने योग्य) है।"

मनुस्मृति में कोई श्लोक ऐसा नहीं, जिससे होता हो कि कलियुग या किसी युग में वेद को प्र नहीं ा चाहिए। इन श्लोकों से सिद्ध होता है कि यदि मनुस्मृति में विधवा-विवाह के में कोई श्लोक न होते, तो भी हम जी को विधवा विवाह का पक्षपाती ही समझते; क्योंकि वेद में 'अन्यपति' 'देवर' आदि शब्द पड़े हैं, जिनका दूसरा अर्थ हो ही नहीं

; परन्तु इतनी ही नहीं है ; अधिकन्तु मनुस्मृति शब्दों में विधवा-विवाह का उल्लेख कर रही है :—

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वेच्छया,
उत्पादयेत् पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥
साचेदक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्य पि वा ।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः* संस्कारमर्हति ॥

—मनु० अ० ६, श्लोक १७५-१७६

हम प्रथम कुल्लूकभट्ट कृत मन्वर्थमुक्तावली से अर्थ लिखते हैं :—

"या भर्त्रा परित्यक्ता मृतभर्तृका वा स्वेच्छयान्यस्य पुनर्भार्या भूत्वा यमुत्पादयेत्स उत्पाद पौनर्भवः पुत्र उच्यते" ॥ १७५ ॥

"सा स्त्री यद्यक्षतयोनिः सत्यन्यमाश्रयेत्तदा तेन पौनर्भवेन भर्त्रा पुनर्विवाहाख्यं संस्कारमर्हति । यद्वा कौमारं पतिमुत्सृज्यान्यमाश्रित्यपुनस्तमेव प्रत्यागता भवति तदा तेन कौमारेण भर्त्रा पुनर्विवाहाख्यं महति" ॥ १७६ ॥

कुल्लूक भट्ट कृत अर्थ—"जो स्त्री भर्त्ता से त्यागी गई हो या जिसका पति मर गया हो, वह अपनी इच्छा से फिर भार्या बन

* पुनः संस्कार और पुनर्विवाह में कोई भेद नहीं, क्योंकि यहाँ संस्कार से तात्पर्य केवल विवाह-संस्कार से है। वाग्दत्ता और संस्कृता में भेद है। केवल वाग्दान को विवाह नहीं सकते। विवाह-संस्कार तभी होता है जब सप्तपदी, प आदि-आदि क्रियाएँ हो जाती हैं।

कर (अर्थात् फिर विवाह करके) जिसको करे, वह करने वाले पुरुष का पौनर्भव पुत्र कहलाता है।"

इस श्लोक से विदित होता है कि स्त्री विधवा होकर या पति जाने की दशा में फिर भार्या बन सकती है अर्थात् पुनर्विवाह कर सकती है और उसकी सन्तान इस दूसरे पति का पौनर्भव पुत्र कहलाएगी।

१७६ वें श्लोक का अर्थ यह है—वह स्त्री -योनि होकर दूसरे का आश्रय ले, तो उस पौनर्भव पति के पुनर्विवाह नामक सं की अधिकारिणी होती है।

यहाँ कुल्लूक भट्ट स्प मानते हैं कि न केवल विधवा का ही पुनर्विवाह हो है, किन्तु उस स्त्री का भी जो कुमार पति को छोड़ कर दूसरे के पास रहे और फिर पूर्व पति के पास आ । यहाँ कुल्लूक भट्ट की 'कुमार पति' की कल्पना मनुस्मृति के मूल श्लोक के अनुकूल नहीं! प्रतीत होता है कि कुल्लूक भट्ट जी अपने रिवाज के झगड़े में फँस गए; क्योंकि यह कहना कि यदि स्त्री अपने पति को छोड़ जाय, मनुस्मृति के सिद्धान्त से असङ्गत है। मनु के अनुकूल बालकों का विवाह ही नहीं हो सकता; फिर स्त्री पति को कैसे छोड़ सकती है? इसी आज कल भी मनुस्मृति के आधुनिक टीकाकार पक्षपात में मनमाने शब्द भि देते हैं। जैसे ऋषिकुमार परि जी मुरादाबादी इस श्लोक का अर्थ करते हुए कोष्ठ में लिखते हैं—"यह विवाह द्विजातियों के लिए निन्दित है, यह सर्वथा अनधिकार

चेटा है; मूल श्लोकों में या इसके पूर्वस्थ श्लोकों में कोई ऐसा शब्द नहीं, जिससे शूद्रत्व की दुर्गन्ध आ सके।"

अब प्रश्न यह है कि मनुस्मृति में कोई श्लोक ऐसा नहीं है, जिससे विधवा-विवाह का निषेध होता हो?

इस सम्बन्ध में दो विचारणीय हैं :—

(१) तो जो मनुस्मृति आजकल मिलती है, लोगों ने मनमानी बातें मिला दी हैं; जिनके लिए एक नहीं हैं। यह सिद्धान्त सभी विद्वानों का है और प्राचीन प्रतियों को यदि मिलाया जाय, तो भेद भी जाता है। और यही कारण है कि मनुस्मृति में कहीं-कहीं विरोध भी जाता है।

(२) दूसरी बात यह है कि जो विधवा-विवाह नियोग के विरोध में किए जाते हैं, वह : विरुद्ध नहीं, किन्तु उनका अर्थ ही है। यदि विरोध-सूचक करने का ही हठ करें और हमारे अर्थों को स्वीकार न करें अर्थात् यदि इस सिद्धान्त को कि कहीं विधि और कहीं निषेध है, तो परस्पर विरोध होने से मनुस्मृति प्रामाणिक भी नहीं ठहरती। पुरुष विधि-सूचक श्लोक पढ़ कर कहता है कि पुनर्विवाह धर्मानु- है। दूसरा निषेधात्मक श्लोक पढ़ कर विरोध है। कोई बुद्धिमान् मनुष्य अपनी पुस्तक में दो विरुद्ध नहीं लिख ; फिर मनु की क्या ?

पहले हम नियोग सम्बन्धी वह श्लोक देते हैं, जिनको विरुद्ध हैं; परन्तु में अनुकूल ही हैं :—

नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्त्तेयातां तु कामतः।
तावुभौ पतितौ स्यातां स्नुषागगुरुतल्पगौ ॥

—मनु० अ० ६, श्लोक ६३

अर्थ—"नियोग द्वारा सम्बद्ध हुए जो स्त्री-पुरुष विधि को छोड़ कर काम-चेष्टा से वर्त्तते हैं, वह दोनों पतित हो जाते हैं; जैसे पुत्र-वधू या गुरु की स्त्री के साथ सङ्गमन करने वाले !"

यहाँ स्पष्टतया दिखाया गया है कि नियोग "विधि अनुकूल" करे—बिना विधि के सम्बन्ध करना महापाप है। यह बात विवाह में भी है अर्थात् यदि एक कुँआरा पुरुष कुँआरी से विवाह की विधि छोड़ कर अन्यथा सङ्गमन है, तो वह पतित हो है। उसे चाहिए कि पहले विवाह करे; तत्पश्चात् सङ्गमन ! यह श्लोक वस्तुतः विधि के का विरोधी है; न कि नियोग का !

नान्यस्मिन् विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः।
अन्यस्मिन् हि नियुञ्जाना, धर्मं हन्युः सनातनम् ॥

—मनु० अ० ६, श्लोक ६४

अर्थ—"द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) को चाहिए कि अन्य जाति वाले के विधवा स्त्री का नियोग न करें। अन्य जाति वाले के साथ नियोग करने वाले सनातनधर्म का हनन करते हैं।"

श्लोक में है कि नियोग सवर्ण में ही होना योग्य है—विरुद्ध वर्ण में नहीं; जिससे वर्णसङ्करता न हो। इसमें नियोग

का विरोध नहीं। यदि कोई कहे कि ब्राह्मण को अपनी कन्या इतर जातियों में नहीं ब्याहनी चाहिए, तो क्या इसका तात्पर्य यह होगा कि ब्राह्मण को अपनी कन्या ही नहीं ब्याहनी चाहिए?

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित्।
न विवाह विधावुक्त विधवा वेदनं पुनः।

—मनु० अ० ६, श्लोक ६५

अर्थ—विवाह के मन्त्रों में नियोग नहीं किया जाता और न विवाह की विधि में 'पुनः विधवा वेदन' अर्थात् नियोग को कहा गया है। यह श्लोक नियोग का विरोधी नहीं। यहाँ केवल यह दिखाया गया है कि विवाह की विधि अलग और नियोग की है। विवाह की विधि में नियोग नहीं; किन्तु नियोग की विधि में नियोग है "विधवा वेदनं पुनः" का अर्थ नियोग है अर्थात् विधवा का सन्तानोत्पत्ति के लिए वेदन अर्थात् ग्रहण करना!

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः।
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्य प्रशासति॥
स महीमखिलां भुञ्जन् राजर्षि प्रवरः पुरा।
वर्णानां सङ्करं चक्रे कामोपहत चेतनः॥
ततः प्रभृति यो मोहान् प्रमीतपतिकां स्त्रियम्।
नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः॥

—मनु० अ० ६, श्लोक ६६-६८

अर्थ—"यह (नियोग) वेन राजा के राज में विद्वान् द्विजों द्वारा निन्दित कि गया और मनुष्यों के लिए ऐसा ही कहा । यह

राम-ऋषि पहले पृथ्वी को भोगता हुआ -चेष्टा से प्रेरित होकर वर्णसङ्करता पैदा किया था। उस से जो मोह से विधवा-स्त्री के साथ सन्तान उत्पन्न करने के लिए नियोग है, उसे भले लोग निन्दित समझते हैं।"

इन तीनों श्लोकों में केवल इतना दिखाया गया है कि वेन के राज में नियोग को पशु-धर्म जाने ; क्योंकि वेन काम-वश वर्णसङ्करता उत्पन्न था। इसलिए वेन से पश्चात् नियोग की निन्दा होने लगी।

इन श्लोकों से यह सिद्ध होता है कि :—

(१) वेन से पूर्व नियोग पशु-धर्म नहीं जाता था;

(२) वेन ने नियोग का दुरुपयोग किया; और

(३) उस से लोग इसे समझने लगे।

इन्हीं श्लोकों पर ऋषि-कुमार पं० रामस्वरूप जी ने एक टिप्पणी भी दी है :—

"कलि से अन्य युग में नियोग विहित है। कलियुग में निषिद्ध है नियोग से अनियोग पक्ष श्रेष्ठ है।" इनका भी यही अभिप्राय है कि नियोग पहले धर्म स था। दुरुपयोग तो प्रत्येक वस्तु का बुरा है। सोना मनुष्य को लाभदायक है; परन्तु जो दिन भर सोता रहे, तो हानि होगी। अब यदि कोई पुरुष दिन भर सोने वाले को देख कर 'सोने' का सर्वथा निषेध करे, तो अनर्थ होगा; इसी वेन की करतूतों को देख कर विद्वानों को केवल इस दुरुपयोग का निषेध चाहिए था, न कि उचित और विधियुक्त नियोग का भी !

एक और श्लोक है :—

न दत्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः ।
दत्वा पुनः प्रयच्छन्हि प्राप्नोति पुरुषानृतम् ॥

—मनु० अ० ९, श्लोक ७१

इसका सीधा अर्थ यह हुआ—"किसी को कन्या देकर फिर बुद्धिमान् दूसरे को न दे। देकर फिर देने से मनुष्य झूठा हो है।" इसका यह तात्पर्य नहीं कि विधवा का पुनर्विवाह न करे। यहाँ केवल इतना है कि यदि किसी ने अपनी कन्या, एक पुरुष को विवाह दी, तो यह नहीं हो सकता कि उससे लेकर फिर दूसरे को विवाह दे। नहीं तो मनुष्य झूठ का भागी होगा। विधवा का वर्णन नहीं। यदि ऐसा होता तो इसी अध्याय के ७६ वें श्लोक में ऐसा न कहते कि—

प्रोषितो धर्म कार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः ।
विद्यार्थं षट् यशोर्थं वा कामार्थं त्रींस्तुवत्सरान् ॥

—मनु० अ० ९, श्लोक ७६

धर्म-कार्य से परदेश गए हुए पति की आठ वर्ष देखे, विद्या या यश के लिए गए हुए की ६ वर्ष और कामार्थ गए हुए के लिए ३ वर्ष ! इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि इसके पश्चात् वह अन्य पति का आश्रय ले। जो लोग यह कहते हैं कि ऐसी में वह अपने पति के साथ चली जाय—वह अपनी लिखते हैं ; क्योंकि श्लोक में ऐसा नहीं है और न ही इसका है। यह अर्थ नारदस्मृति अध्याय १२ से . हो है:—

अष्टौ वर्षाण्युदीक्षेत ब्राह्मणी प्रोषितं पतिम् ।
अप्रसूता तु चत्वारि परतोऽन्यं समाश्रयेत् ॥"
—नारदस्मृति अ० १२, श्लोक ६८

अर्थ—"ब्राह्मणी परदेश गए हुए पति की आठ वर्ष प्रतीक्षा करे और यदि सन्तान-रहित हो, तो चार वर्ष ! इसके पश्चात् दूसरे पति का आश्रय ले।"

इससे पता चलता है कि नारद-स्मृति के लेखक के समय में मनु का यही श्लोक होगा ; क्योंकि नारद-स्मृति का अधिकांश भाग मनुस्मृति पर ही है और इसके ८४६ श्लोकों में से ३७ श्लोक * तो तद्वत् मनुस्मृति के ही हैं।

अब हम तीसरे और चौथे प्रश्न को लेते हैं। मनु जी ने किसी श्लोक में पुनर्विवाहित विधवा स्त्री अथवा उस पुरुष का, जो ऐसी स्त्री से विवाह करे, जाति-च्युत या पदच्युत करने का उल्लेख नहीं किया और कर भी कैसे सकते थे, जब उन्होंने अन्य श्लोकों में पुनर्विवाह तथा नियोग की आज्ञा दे दी है। ११ वें अध्याय में उन्होंने प्रत्येक पाप का प्रायश्चित्त दिया है, जिसमें छोटे-बड़े सभी प्रकार के पापों का वर्णन है ; परन्तु उसमें विधवा-पुनर्विवाह का, स्त्री या पुरुष किसी की ओर से प्रायश्चित्त नहीं लिखा ; इससे भी सिद्ध होता है कि मनु जी ऐसा विवाह पाप नहीं समझते थे।

अब पाँचवाँ प्रश्न रह गया अर्थात् क्या पुनर्विवाहिता विधवा की सन्तान अपने पति का दायभाग प्राप्त कर सकती है ? इस विषय में पूर्ण विचार आगे दिए जायँगे।

---

*The Ordinances of Manu by A. C. Burnell, Introduction page—31.

हम याज्ञवल्क्यस्मृति को लेते हैं। इसके आचार अध्याय के ६७ वें श्लोक में लिखा है :—

अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः।
स्वैरिणी या पतिं हित्वा सवर्णं कामतः श्रयेत्॥

इस श्लोक पर मिताक्षरा टीका इस प्रकार है :—

"अन्य पूर्वा द्विविधा पुनर्भूः स्वैरिणी चेति। पुनर्भूरपि द्विविधा क्षता चाक्षता च। तत्र क्षता संस्कारात्प्रागेव पुरुषसम्बन्धदूषिता। या पुनः कौमारे पतिं त्यक्त्वा कामतः सवर्णमाश्रयति सा स्वैरिणीति।"

यहाँ दो प्रकार की स्त्रियाँ बताई गई हैं—एक अनन्यपूर्वा और दूसरी अन्यपूर्वा। अनन्यपूर्वा वह है, जिसका विवाह-संस्कार से पहले किसी अन्य के साथ विवाह या सङ्गमन नहीं हुआ (अनन्य पूर्विकां दानेनोपभोगेन वा पुरुषान्तरा परिगृहीतामिति मिताक्षरा) हो। दूसरी अन्यपूर्वा अर्थात् जिनका विवाह से पूर्व अन्य पुरुष से सम्बन्ध हो गया हो। अन्यपूर्वा के दो भेद कहे—एक स्वैरिणी और दूसरी पुनर्भू, अर्थात् जिसका पुनर्विवाह हो है। पुनर्भू के फिर दो भेद किए—एक क्षता जिसका पूर्व पति से संयोग हो चुका हो और दूसरी अक्षता अर्थात जिसका मात्र हुआ हो ; परन्तु पति के साथ संयोग न हुआ हो। इन दोनों की स्त्रियों को याज्ञवल्क्य स्मृतिकार "पुनः संस्कृता" या "पुनर्भू" बताते हैं अर्थात् वह पुनर्विवाह की अधिकारिणी है।

यही नहीं; किन्तु यह स्मृति नियोग की भी पक्षपातिनी है:—

अपुत्राङ्गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्र काम्यया।
सपिण्डो वा सगोत्रो वा घृताभ्यक्त ऋतावियात्॥
आगर्भसम्भवाद्गच्छेत पतितस्त्वन्यथा भवेत्।
अनेन विधिना जातः क्षेत्रजोऽस्य भवेत्सुतः॥

—याज्ञवल्क्य-स्मृति-आचाराध्याय, विवाह-प्रकरण, श्लो० ६८-६९

इस पर मिताक्षरा-टिप्पणी है :—

"अपुत्राम लब्धपुत्रां पित्रादिभिः पुत्रार्थमनुज्ञातो देवरो भर्त्तुः कनीयान भ्राता सपिण्डो वा उक्त : सगोत्रो वा। एतेषां पूर्वस्य पूर्वस्याभावे परः परः घृताभ्यक्त सर्वाङ्गः ऋतावेव वक्ष्यमाण लक्षणे इयाद् गच्छेत् आगर्भोत्पत्तेः। ऊर्ध्वं पुनर्गच्छन् अन्येन वा प्रकारेण तदा पतितो भवति। अनेन विधिनोत्पन्नः पूर्व परिणेतुः क्षेत्रजः पुत्रो भवेत्।"

अर्थात्—"सन्तान-रहित स्त्री के साथ बड़ों की आज्ञा से, पुत्र की कामना से पति का छोटा भाई सपिण्ड या सगोत्र, घी पोत कर, ऋतुकाल में करे; जब तक गर्भ न रह जाय। यदि इससे अन्यथा करे, तो पतित हो जाय। इस से हुआ पुत्र क्षेत्रज कहलाता है।"

यहाँ मिताक्षरा एक विशेषण देती है :—

"एतच्च वाग्दत्ताविषयमित्याचार्याः। यस्याम्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः। तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः" इति (९। ६९) मनुस्मरणात्" ॥६८-६९॥

अर्थात्—"मनुस्मृति के ९ वें अध्याय ६९ वें श्लोक के अनुसार

यहाँ वाग्दत्ता के विषय में गया है। यह मिताक्षरा की खींचा-तानी है; मूल श्लोक में न तो मनु की ओर सङ्केत है और न वाग्दत्ता की ओर! वाग्दत्ता के नियोग का भी मनुस्मृति के ६८ वें श्लोक के पीछे है, जिसमें वेन राजा के का वृत्तान्त दिया हुआ है अर्थात् वेन राजा के समय में नियोग को गर्हित समझ कर भी वाग्दत्ता के नियोग निषिद्ध नहीं किया; परन्तु इससे पूर्व ६ वें अध्याय के ५९ वें श्लोक में मनुस्मृति में—

"देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यक् नियुक्तया।"

अर्थात्—वाग्दत्ता से इतर स्त्रियों के भी नियोग का विधान है। प्रतीत होता है कि याज्ञवल्क्य भी ऐसा ही मानते थे।

याज्ञवल्क्य-स्मृति के पश्चात् हम पाराशर-स्मृति का देते हैं, जो पौराणिक मतानुसार कलियुग के लिए विशेष स्मृति समझी जाती है; क्योंकि लिखा है कि :—

कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः।
द्वापरे शङ्खलिखिताः कलौपाराशराः स्मृताः॥

—पाराशर-स्मृति अ० १, श्लोक २४-२५

अर्थात्—"सतयुग में मनुस्मृति, त्रेता में गौतम-स्मृति, द्वापर में शङ्ख-लिखित स्मृति और कलियुग में पाराशर-स्मृति हैं।"

हमारा यह निज मत नहीं भिन्न-भिन्न युगों की भिन्न-भिन्न स्मृतियाँ हैं या होनी चाहिए; क्योंकि -दर्शन में कपिल मुनि ने लिखा है :—

न कालयोग तो व्यापिनो नित्य सर्व सम्बन्धात् ।

—सांख्य० अ० १, सूत्र १२

से मनुष्य के धर्म अर्थात् कर्त्तव्याकर्त्तव्य में भेद नहीं और मनुस्मृति का श्लोक—

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां रेऽपरे ।
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः ॥

—मनु० अ० १, श्लोक ८९

अर्थात्—"सतयुग, त्रेता, और कलियुग के धर्म हैं ; इसको यदि ठीक भी जाय, तो भी मनुस्मृति में यह नहीं लिखा कि मनुस्मृति केवल सतयुग के लिए है।" वेदों के लिए भी यह कहीं उल्लेख नहीं है अर्थात् कलियुग होने से वेदों की प्रमाणता में बाधा नहीं पड़ती। फिर मनु ने यह कहीं नहीं कि सतयुग के कौन-कौन से धर्म कलि में मानने नहीं चाहिए। हमारे इस निज मत के होते हुए भी जो लोग भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न-भिन्न स्मृतियाँ मानते हैं, उनको पाराशर-स्मृति* पर भली प्रकार देना योग्य है :—

मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥

अर्थात्—"पति के खोने, मरने, ा, नपुंसक या पतित होने आदि आपत्तियों में स्त्रियों को दूसरा पति करने की विधि है।"

---

*"श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस" की मुद्रित पाराशर-स्मृति (सं० १९६९) अ० ४, श्लोक ३०

यह श्लोक इतना है और पौराणिक लोगों में पाराशर-स्मृति का इतना मान्य है कि विधवा पुनर्विवाह के विरोधी बड़े मञ्जस में पड़ जाते हैं। उन्हें न तो -स्मृति को छोड़ते ही बनता है और न विधवा के पुनः संस्कार को मानते ही। मैं हूँ कि पण्डित-मण्डली ने इस श्लोक के अर्थ को पलटने में जितना चोटी से एड़ी तक पसीना बहाया है और व्याकरण, साहित्य आदि की वाल की खाल निकालने में जितना किया है, उतना शायद ही किसी अन्य विषय में ि गया हो। श्रीभर्तृहरि जी ठीक कहते हैं कि :—

पुरा विद्वत्तासीदुपशमविशां क्लेश हतये।
गता कालेनासौ विषय सुख सिद्ध्यै विषयिणाम् ॥

अर्थात्—"पहले विद्या (विधवा जैसी) दुखियों के दुःख दूर करने में लगाई जाती थी; परन्तु अब की गति से यह विषयी लोगों की विषय पूर्त्ति के काम में आती है; अर्थात् आजकल पण्डित-मण्डली स्वयं तो बहुत से विवाह रूप विषय-सुख को सिद्ध करती है, एक कुलीन पण्डित कई-कई विवाह करने और दहेज लेने में सङ्कोच नहीं करता; परन्तु दुखी विधवाओं के घावों पर छिड़कने के लिए समस्त पाण्डित्य को व्यय कर दिया जाता है। इधर तो एक, दो, तीन, चार, एवं दस वर्ष की की विधवाओं की चीख़-पुकार जिनसे पृथ्वी फटती और थरथराता है एवं "अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्" अर्थात्—भ्रूण-हत्या से पापों की वृद्धि हो रही है; उधर पण्डित जी व्याकरण हाथ में लिए सूत्रों को तोड़, मरोड़ कर इस में

लगे हुए हैं कि विधवाएँ बढ़ कर इनका आर्त्तनाद और भी अधिक हो जाय। यदि कोई पण्डित अत्यन्त भूखा होकर भोजन माँगे और आप भोजन के स्थान में उससे भोजन शब्द व्याकरणरीत्या सिद्ध करने को कहें या उसके शब्दों में साहित्य-सम्बन्धी दोष दिखावें, तो उसे कितना क्रोध होगा? यदि किसी का घर जलता हो और आपसे सहायता माँगी जाय और आप सहायता न करके व्याकरण के सूत्रों की भरमार करने लगें, तो क्या परिणाम होगा? उसी प्रकार इधर तो विधवाओं के दुःख से भारत पीड़ित हो रहा है, उधर व्यवहार-अपण्डितों को शब्दों की सिद्धि की पड़ी हुई है। हा! कैसा दुर्भाग्य का समय है कि अर्थों को छोड़ कर लोग केवल शब्दों के में फँस गए और चावल छोड़ कर भूसी खाने लगे!!

हाँ, हम अब ऊपर दिए हुए श्लोक की भी मीमांसा करते हैं। इसमें बड़े झमेले का शब्द 'पतौ' है, जो 'पति' का सप्तम्यन्त पद (अधिकरण कारक) है। साधारणतया 'पति' का सप्तम्यन्त 'पत्यौ' बनता है और इस श्लोक में 'पतौ' का प्रयोग हुआ है। इसी पर आकाश-पाताल एक किया जा रहा है। विधवा-विवाह के विरोधियों के इस विषय में भिन्न मत हैं और उन सबका उद्देश्य एक है; अर्थात् येन-केन-प्रकारेण विधवा-विवाह का निषेध किया जाय।

(प्रश्न) चूँकि 'पति' शब्द का सप्तम्यन्त पद 'पत्यौ' बनता है और यहाँ 'पतौ' है, अतः यह शब्द 'पतौ' नहीं, किन्तु 'अपतौ' है, अर्थात् 'पतिते' के पश्चात् अकार का लोप हो गया है—वस्तुतः उसको यों पढ़ना चाहिए :—

"नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतितेऽपतौ।"

(उत्तर) यह प्रश्न तो जड़ दिया; परन्तु क्या यह भी सोचा है कि 'अपति' शब्द का क्या अर्थ है और यहाँ उसकी क्या सङ्गति है। पाठकगण! क्या आपको किसी कोष में 'अपति' शब्द मिला?

(प्रश्न) 'अपति' उस पति को कहते हैं, जिसका विवाह नहीं हुआ, किन्तु मँगनी हुई है। देखो 'अपति' शब्द का कोष में यह अर्थ दिया हुआ है—वह जिसका पति न हो, या वह जो पति न हो।

(उत्तर) तुम्हारे कोष के बताए हुए दोनों अर्थ इस श्लोक में नहीं लग सकते। यदि 'अपति' का अर्थ करें "वह व्यक्ति जि. 'पति' नहीं है" तो श्लोक का अर्थ ही गड़बड़ हो जायगा और यदि 'अपति' का अर्थ "वह पुरुष जो पति नहीं है" तो इसका अर्थ होगा 'अविवाहित'। फिर किसी दशा में तुम इससे 'मँगनी हुए' का अर्थ न ले सकोगे। क्या 'अब्राह्मण' का अर्थ यह है कि जो ब्राह्मण न हो, किन्तु होने वाला हो? क्या इसी प्रकार 'अदीन' ' ' आदि शब्दों में 'अ' का यही अर्थ है? यहाँ 'अपतौ' नहीं किन्तु 'पतौ' ही है और इसका अर्थ 'पत्यौ' है। इसके लिए जैन-मत की पुस्तकें देखो, जिनमें यही श्लोक रूपान्तर के लिखा हुआ है:—

पत्यौ प्रव्रजिते क्लीवे प्रनष्टे पतिते मृते।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥

(प्रश्न) हम जैनियों के ग्रन्थों को स्वीकार नहीं ,यह तो नास्तिक हैं। यहाँ 'अपतौ' ही है।

(उत्तर) अच्छा जाने दो। 'पाराशर-माधवी' तो जैनियों की पुस्तक नहीं। उसमें ४६१ पृष्ठ पर लिखा है :—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते तथा।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥

यहाँ तुम 'अपति' किसी प्रकार नहीं जोड़ ।

(प्रश्न) यदि हम तुम्हारी बात मान भी लें तो भी यह प्रश्न शेष रह जाता है कि स्मृतिकार ने ऐसी भूल क्यों की? क्या उनको यह भी नहीं मालूम था कि 'पति' के रूप सातवीं विभक्ति में किस प्रकार होते हैं?

(उत्तर) यह बात नहीं। छन्द में कवि लोग व्याकरण के नियमों का उल्लङ्घन भी कर जाते हैं। कविवर कालिदास के काव्यों में भी यह निरङ्कुशता पाई जाती है। आर्ष प्रयोग तो अनेक अंशों में व्याकरण से भिन्न भी होता है। जब तुम पाराशर-स्मृति को आर्ष ग्रन्थ मानते हो तो इस प्रकार के आक्षेप उचित नहीं हैं। देखो पाराशर-स्मृति में 'पति' का सप्तम्यन्त पद 'पतौ' और 'पत्यौ' दोनों ही तरह आया है।

'पत्यौ' का उदाहरण :—

तद्वत्परस्त्रियः पुत्रौ द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ।
पत्यौ जीवति कुण्डस्तु मृते भर्त्तरि गोलकः ॥

—पाराशर-स्मृति अ० ४, श्लोक २३

'पतौ' का दूसरा उदाहरण:—

जारेण जनयेद्गर्भं मृते त्यक्त गते पतौ।

—पाराशर-स्मृति अ० १०, श्लोक ३१

यहाँ 'अपतौ' हो ही नहीं ।

(प्रश्न) अजी हम वैयाकरण हैं। जब तक किसी व्याकरण का उदाहरण न मिले, तुम जैसे असंस्कृतज्ञों की नहीं मान सकते।

(उत्तर) अच्छा वैयाकरण की ही साक्षी देते हैं। परन्तु अब कभी विधवा-विवाह का विरोध मत करना। क्योंकि पक्षपाती संस्कृतज्ञ भी अविद्वानों के समान हैं। सिद्धान्त-कौमुदी में दिए हुए अष्टाध्यायी के "पतिः समास एव" १।४।८—इस सूत्र पर तत्व-बोधनी टीका इस है:—

"पतिः . एव॥ एवकार इष्टतोऽवधारणार्थः। अन्यथा हि 'समासे पतिरेव' इति नियमः सम्भाव्यते। ततश्च महाकविनेत्यादि प्रयोगो न सिध्येत्। 'अनङ्विधौ' 'धात्वादेः' इत्यादि ज्ञापकानुसरणे तु प्रतिपत्ति गौरवं स्यादिति भावः॥ पत्येत्यादि। नन्वेवं 'शेषोऽघ्य सखि पती' इत्येवोच्यताम्। किमनेन 'पतिः समास एव' इति सूत्रेणेति चेन्न। समुदायस्य पतिरूपत्वाभावेन बहुच्पूर्वकपतिशब्दस्यापि वि संज्ञा स्यात्'। ततश्च सुसखिनेत्यादि वद बहुपतिनेत्यादि प्रसज्येत। इष्यते तु बहुपत्येत्यादि। नापि 'सखिपती समास एव' इत्येव सूत्र्यतामिति शङ्क्यम्। बहु पत्येत्यादिवद्बहुसख्येत्याद्यापत्तेः इष्यते तु बहुसखिनेत्यादि। अथ कथं "सीतायाः पतए नमः" इति "नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ। पञ्चस्वापत्सु नारीणां

पतिरन्यो विधीयते" इति पराशश्च ॥ अत्राहुः ॥ पतिरित्यस्यातः पतिः—'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिचि टिलोपे 'अच' इः "इत्यौणादिक प्रत्यये 'णेरनिटि' इति णिलोपे च, निष्पन्नोऽयं पतिशब्दः 'पतिः समास एव' इत्यत्र न गृह्यते। लाक्षणिकत्वादिति" ॥

यहाँ हमने सूत्र के ऊपर समस्त टिप्पणी उद्धृत कर दी है। इसका भाषार्थ देने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि आप स्वयं वैयाकरण हैं, व्याकरण का ही विषय है। आप समझ ही लेंगे। देखो, यहाँ न केवल 'पति' का सप्तम्यान्त 'पतौ' ही सिद्ध किया है; किन्तु चतुर्थ्यान्त 'पतये' भी सिद्ध कर दिया है और दृष्टान्त भी दैवयोग से वही दिया है जिस पर सन्देह करते हैं। अब तो न कहोगे ?

(प्रश्न) देखो सनातनधर्म-महामण्डल के अपूर्व वक्ता और सञ्चालक श्री ी दयानन्द जी अपने रचे हुए सत्यार्थ-विवेक ग्रन्थ में इस श्लोक पर यह सम्मति प्रकट करते हैं कि इन पाँच आपत्तियों में स्त्रियाँ किसी के घर बैठ जायँ, परन्तु विवाह न करें; क्योंकि पुनर्विवाह करना दोष है। ऐसी स्त्रियों को जाति से च्युत भी कर देना चाहिए। हमको पुनर्विवाह की अपेक्षा यह बात अच्छी मालूम होती है। पराशर भी यही कहते हैं कि अन्य पति कर ले। विवाह की आज्ञा तो वह भी नहीं देते।

(उत्तर) वाह जी वाह! कैसी विचित्र घटना है ? यही क्यों न कह दो कि चाहे वेद कुछ कहे और स्मृति में कुछ भी लिखा हो हम वही करेंगे जो हमारे मन में आवेगा। यदि स्वामी जी तनिक 'विधीयते' शब्द पर दृष्टि डालते तो कदापि ऐसा न लिखते। क्योंकि

जाति और धर्म के प्रतिकूल किसी के घर बैठ जाना 'विधि' नहीं और न उसके लिए 'विधीयते' शब्द का प्रयोग हो । है। यदि अन्य पति की 'विधि' है तो उसमें दोष नहीं, और यदि दोष नहीं तो जाति से च्युत करना कैसा? क्या कोई कह सकता है कि "चोरी करना तुम्हारे लिए 'विधि' तो है, परन्तु चोरी करोगे तो दण्डनीय होगे?" यदि विधि है तो दण्ड कैसा ? और यदि दण्ड है तो विधि कैसी? यदि जाति से बहिष्कृत ही होना है तो इस श्लोक की आवश्यकता क्या ? सहस्त्रों स्त्री-पुरुष प्रति दिन नियमोल्लङ्घन करते हैं। बहुत सी स्त्रियाँ दूसरों के घर में बैठ जाया करती हैं। क्या वह किसी से यह पूछती फिरती हैं कि पाराशर-स्मृति में हमारे अन्य के घर बैठने की विधि दी है या नहीं?

दूसरी यह है कि 'पतिरन्यो' अर्थात् 'दूसरा पति' पड़ा हुआ है। पति बिना विधियुक्त संस्कार के नहीं हो सकता। 'पति और पत्नी' भाव उसी होता है, जब विधि के अनुकूल किया जाय। अतः यहाँ 'पति' और 'विधीयते' दो शब्द यही प्रकाशित करते हैं कि पाराशर-स्मृति पुनर्विवाह के पक्ष में है और स्वामी दयानन्द की सत्यार्थ-विवेक ी कल्पना अ है।

तीसरी यह है कि पाँच आपत्तियों में से एक आपत्ति 'पतिते पतौ' अर्थात् "पति का पतित" होना है। इससे भी प्रकट होता है कि यदि किसी स्त्री को पतित पति से घृणा होगी तो वह कदापि किसी के घर न बैठेगी। एक पतित से दूसरा पतित करके घृणा प्रकट नहीं की जा सकती। इससे भी हमारा ही मत सिद्ध है, न कि र्थ-विवेक का।

बिना संस्कार के काम-चेष्टा मात्र से किसी को घर में विठाने वाले को 'पति' नहीं, किन्तु 'जार' कहते हैं। जैसा कि इसी स्मृति १०वें अध्याय के ३१वें श्लोक में आया है :—

जारेणजनयेद्गर्भे मृते त्यक्ते गते पतौ।
तां त्यजेदपरेराष्ट्रे पतितां पापकारिणीम् ॥

इसीलिए ऐसी स्त्री को 'पतिता' और पापकारिणी लिखा है।

(प्रश्न) -स्मृति के इस श्लोक में तो अवश्य पुनर्विवाह की विधि है, परन्तु इसके आगे दो निषेध-वाचक श्लोक भी तो हैं। इससे मालूम होता है कि पराशर जी वस्तुतः विधवा पुनः संस्कार के विरुद्ध हैं :—

मृते भर्त्तरि या नारी ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता।
सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥
तिस्रः कोट्योऽर्ध कोटी च यानि लोमानि मानवे।
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्त्तारं याऽनुगच्छति ॥

—पाराशर-स्मृति अ० ४, श्लोक ३१-३२

अर्थ :—"पति के मरने पर जो स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य व्रत धारण करती हैं वह मरने पर ब्रह्मचारियों के समान स्वर्ग को प्राप्त करती हैं। ३१।

"और जो पति के साथ जाती हैं, अर्थात् सती हो जाती हैं, वह साढ़े तीन करोड़ मनुष्य के शरीर में जितने बाल हैं, उतने वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में निवास करती हैं। ३२।"

(उत्तर) इससे विधवा-विवाह का निषेध कैसे हुआ? यहाँ उन स्त्रियों का तारतम्य दिख है, जो पुनर्विवाह करतीं या ब्रह्म-

चारिणी रहती हैं। जो पुरुष आजन्म ब्रह्मचारी रह कर संन्यासी हो जाता है, वह उस पुरुष की अपेक्षा उत्तम है जो विवाह करके "यौवने विषयैषिणाम्" अर्थात् गृहस्थियों की कोटि में सम्मिलित होता है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि विवाह करना निषिद्ध है। इसी प्रकार विधवा-विवाह के पक्षपाती नहीं कहते कि विधवाओं को ज़बरदस्ती पकड़-पकड़ कर विवाह कर दो। यदि वह ब्रह्मचारिणी रह सकती हैं तो इससे उत्तम क्या बात है? हम तो कहते हैं कि यदि कुमारियाँ भी इन्द्रिय-निग्रह कर सकें और आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर सकें तो अत्युत्तम हो। परन्तु जिनके बुरे कर्म करने और गर्भपात कराने की सम्भावना है और जिनमें इन्द्रियों के वश में करने की अपूर्व शक्ति नहीं, उनको ताले में बन्द करके रोकना और बलात्कार पुनर्विवाह से वञ्चित करना सर्वथा अन्याय है। यों तो विधि में भी तारतम्य होता है; परन्तु विधि का अर्थ यह है कि अमुक सीमा तक कार्य करने में मनुष्य जाति से बहिष्कृत या दण्डनीय नहीं समझा जाता। कल्पना कीजिए कि दान देना है। एक वह पुरुष है जो दूसरों के लिए सर्वस्व दान कर देता है, और दूसरा वह है जो अपनी आय का एक छोटा सा भाग ही दान करता है। तीसरा कुछ भी दान नहीं देता। इन तीनों में से कोई भी जाति-बहिष्कृत या दण्डनीय नहीं ठहराया जा सकता, यद्यपि तीसरे की अपेक्षा दूसरा और दूसरे की अपेक्षा पहला अत्युत्तम है। इसी प्रकार वह स्त्रियाँ धन्य हैं जो ब्रह्मचारिणी हैं, और वेश्या से तो वह स्त्रियाँ भी श्रेष्ठ हैं जो विधि के अनुसार विषयों को भोगती हैं, इससे अधिक नहीं।

(प्रश्न) पाराशर-स्मृति में विधवा-विवाह-विधायक यह श्लोक किसी विधवा-विवाह-प्रचारक ने मिला दिया है। मूल स्मृति में ऐसा न था और कई स्मृतियों में भी नहीं मिलता।

(उत्तर) देखो हमने यह श्लोक उस पुस्तक से उद्धृत किया है जो वेङ्कटेश्वर जैसे कट्टर प्रेस में छपी हुई है और जहाँ नए विचारों का स्पर्श तक नहीं हो सकता और जितनी पाराशर-स्मृतियाँ जहाँ कहीं मिलती हैं, उन सब में यह श्लोक इसी प्रकार मिलता है। इसके अतिरिक्त वर्तमान में सबसे पहिले विधवा-विवाह का प्रश्न ब के प्रसिद्ध विद्वान् और सुधारक श्री० पं० ईश्वरचन्द्र जी विद्यासागर ने उठाया था। उस पण्डित-मण्डली ने इसका विरोध किया था, तब से लेकर तक विधवा-विवाह के विरोधियों का ही आधिक्य है और उन्हीं के हाथ में प्रायः संस्कृत के प्रसिद्ध छापेखाने और संस्कृत की पुस्तकों के मुद्रण और सं रहे हैं। विधवा-विवाह के पक्षपाती तो अपने विपक्षियों की छपाई हुई पुस्तकों का ही आश्रय लेते रहे हैं। अवश्य देखा जाता है कि जो श्लोक विधवा-विवाह के अनुकूल पूर्वकालिक ग्रन्थों में पाए जाते थे वह की छपी हुई कतिपय प्रतियों में नहीं मिलते। इससे सम्भव जान पड़ता है कि यथा अ विधवा-विवाह के विरोधी अपना हस्तक्षेप रहते हैं। यहाँ "उलटा चोर कोतवाल को डाँटे' की लोकोक्ति चरितार्थ होती है। हमको ज्ञात हुआ है कि कुछ प्रेसों का विचार है कि पुराणों से वह श्लोक उड़ा दिए जायँ जिन पर आर्यसमाज के ग्रन्थों में आक्षेप किया गया है। इस प्रकार आर्यसामाजिकों को झूठा सिद्ध

करने का अच्छा अवसर हाथ लग जायगा। सम्भव है कि किसी भद्र पुरुष ने इस विचार को कार्यरूप में भी परिणत कर दि हो। जो आक्षेप विधवा-विवाह के पक्षपातियों पर किया जाता है, वह इसके विरोधियों पर भी लग सकता है। अर्थात् सम्भव है कि उन्होंने ही किसी पर और विशेष कर उस में, जबकि विधवा-विवाह की प्रथा सर्वथा उठ गई और एक द्विज भी इसके पक्ष में न रहा, बीच-बीच में ऐसे श्लोक मिला दिए जिनसे नियोग और विधवा का पुनः संस्कार निषेध पाया जाय। यही कारण है कि जहाँ किसी ग्रन्थ में दो श्लोक विधि के मिलते हैं वहाँ उन्हीं के बीच में एक श्लोक निषेध का पड़ा हुआ है।

नारद-स्मृति भी विधवा के पुनः संस्कार की आज्ञा देती है। वहाँ भी आठ प्रकार के विवाह गिनाते हुए पुनर्भू स्त्रियों के तीन भेद किए हैं :—

(१) कन्यैवाक्षतयोनिर्वा पाणिग्रहणदूषिता।
पुनर्भूः प्रथमा प्रोक्ता पुनः संस्कारमर्हति॥

—नारद० अ० १२, श्लोक ४६

अर्थ—"कन्या हो या अक्षत-योनि बाल-विधवा हो, जिसका केवल पाणिग्रहण ही हुआ हो उसको पहली पुनर्भू कहते हैं और वह फिर संस्कार कराने (अर्थात् पुनर्विवाह) की अधिकारिणी है।"

(२) कौमारं पतिमुत्सृज्य यात्वन्यं पुरुषं श्रिता।
पुनः पत्युर्गृहमियात् सा द्वितीया प्रकीर्त्तिता॥

—नारद० अ० १२, श्लोक ४७

अर्थ—" क पति को छोड़ कर जो स्त्री अन्य का आश्रय ले और फिर पति के घर आ जाय उसे दूसरी पुनर्भू कहते हैं।"

(३) असत्सु देवरेषु स्त्री बान्धवैर्या प्रदीयते।
सवर्णाय सपिण्डाय सा तृतीया प्रकीर्त्तिता॥

—नारद० अ० १२, श्लोक ४८

अर्थ—"जिसके पति के छोटे भाई न हों और जो सम्बन्धियों द्वारा सवर्ण या सपिण्ड पुरुष को दे दी जावे वह तीसरी पुनर्भू कहलाती है।"

इनमें पहिला श्लोक विधवा-पुनर्विवाह के और तीसरा नियोग के पक्ष में है।

नियोग के पक्ष में अन्य श्लोक भी हैं, जैसे :—

अनुत्पन्नप्रजायास्तु पतिः प्रेयाद्यदि स्त्रियाः।
नियुक्ता गुरुभिर्गच्छेद् देवरं पुत्रकाम्यया॥

—नारद० अ० १२, श्लोक ८० *

अर्थ—"यदि किसी ऐसी स्त्री का पति मर जाय जिसके कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हुई तो बड़ों की आज्ञानुसार वह पुत्र की कामना से देवर के साथ नियोग कर ले।"

'नष्टे मृते' इति श्लोक पाराशर-स्मृति का नारद-स्मृति में भी ज्यों का त्यों आया है (अ० १२ श्लो० ९७)।

वशिष्ठ-स्मृति के कुछ प्रमाण आगे दिए जाते हैं :—

---

* नारद-स्मृति Published by Asiatic Society Bengal, New Series No. 542. 1885 (भरती-भवन-पुस्तकालय,   )

या च क्लीवं पतितमुन्मत्तं वा भर्त्तारमुत्सृज्यान्यं पतिं विन्दते मृते वा सा पुनर्भूर्भवति ।

—वशिष्ठ० अ० १७

अर्थ—"जो स्त्री नपुंसक, पतित, पागल या मरे पति को छोड़ अन्य पति से विवाह करती है वह पुनर्भू कहलाती है।"

नोट—याद रखना चाहिए कि स्वैरिणी स्त्री को पुनर्भू नहीं कहते।

आगे इसी स्मृति के इसी अध्याय में और स्पष्ट है :—

पाणिग्रहे मृते बाला केवलं मन्त्र संस्कृता ।
सा चेदक्षत योनिः स्यात् पुनःसंस्कारमर्हति ॥

अर्थ—"पाणिग्रहण होते ही पति के मरने पर यदि (बाल स्त्री) का केवल मन्त्रों से संस्कार मात्र हुआ हो और वह अक्षत-योनि अर्थात् पति के साथ सम्भोग को प्राप्त न हुई हो तो उसका फिर विवाह होना योग्य है।"

इसी श्लोक के दो और श्लोक हैं, जो कतिपय विधवा-विवाह-विधायक पुस्तकों में इस प्रकार लिखे हुए हैं :—

अद्भिर्वाचा च दत्तानां म्रियेताथो वरो यदि ।
कृतमन्त्रोपनीतापि (१) कुमारी पितुरेवसा ॥
यावच्चेदाहृता कन्या मन्त्रैरपि सुसंस्कृता ।
अन्यस्मै विधिवद्देया, यथा कन्या तथैव सा ॥ २

परन्तु आजकल की छपी हुई स्मृतियों में इस २ पाठ-भेद है :—

न च मन्त्रोपनीता स्यात् (१)

और

मन्त्रैर्यदि न संस्कृता । (२)

परन्तु "पाणिग्रहे मृते वाला" इस श्लोक में कोई भी पाठ-भेद नहीं है। इसमें आजकल की स्मृतियों में भी "मन्त्रसंस्कृता" और "साचेदक्षतयोनिः" ही है। स्मृति के अनुसार "मन्त्रसंस्कृता अक्षत योनि" कन्या का विवाह विधियुक्त है। ऊपर जो "न च मन्त्रोपनीता" और "मन्त्रैर्यदि न संस्कृता" लिखा है, यदि इसी प्रकार शुद्ध माना जाय तो परस्पर विरोध होगा अर्थात् कहीं मन्त्र-संस्कृता को पुनर्विवाह की विधि और कहीं निषेध। इससे सिद्ध होता है कि किसी समय विधवा-विवाह के विरोधियों ने दो श्लोकों में भेद कर दिया और तीसरे में या तो भूल गए या किसी अन्य कारण से न कर सके। चूँकि यह श्लोक पास-पास ही हैं, अतः परस्पर अविरोध करने के लिए केवल इसी बात की सम्भावना होती है। अन्यथा इसका कुछ निश्चित अर्थ ही न होगा। यद्यपि यह भी कहा जाता है कि विधवा-विवाह के प्रचारकों ने अपनी पुस्तकों में अशुद्ध उद्धृत कर दिया है, तथापि यदि ऐसा मानें तो मूल स्मृति में परस्पर विरोध पड़ेगा और विधवा-विवाह के प्रचारकों के पास जब वशिष्ठ-स्मृति का एक स्पष्ट श्लोक था तो उसी अर्थ का दूसरा श्लोक गढ़ने की आवश्यकता भी क्या थी ?

इसके अतिरिक्त "वशिष्ठ धर्मशास्त्रम्" के पृष्ठ ४१ पर लिखा है :—

* जिसको Rev. Alois Auton Fahrer Ph. D. Professor

प्रेत ी पएमासान् व्रतचारिएयक्षारलवणं भुञ्जानाधः-शयीत ॥ ५५ ॥

ऊर्ध्वं षड्भ्यो मासेभ्यः स्नात्वा श्राद्धं च पत्ये दत्वा विद्याकर्म गुरुयोनिसम्बन्धान् संनिपात्यपिता भ्राता वा नियोगं कारयेत् ॥

अर्थ—मरे हुए पुरुष की स्त्री ६ महीने व्रत रक्खे, -रहित वस्तुओं को खावे और ज़मीन पर सोवे । ५५ । और छः नहा कर, पति के लिए श्राद्ध देकर विद्या, कर्म, गुरु, गोत्र आदि सम्बन्ध को विचार के पिता या भाई इसका नियोग कर दे । ५६ ।

बौधायन-धर्मशास्त्र के पृष्ठ १०१, चतुर्थ प्रश्न, प्रथम अध्याय में इस लिखा है*:—

बलाच्चेत् प्रहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता ।
अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सा ॥ १५ ॥
निसृष्टायां हुते वापि यस्यै भर्त्ता म्रियेत सः ।
सा चेदक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्यागता सती ।
पौनर्भवेन विधिना पुनः संस्कारमर्हति ॥ १६ ॥

अर्थ—"यदि किसी को ज़बरदस्ती ले जाया गया हो

---

of Sanskrit St. Xavier's College, Bombay ने edit किया है और जो Government Central Book Depot, Bombay से १८८२ में छपा है ।

*Edited by E. Hulzsch Ph. D. Vienna and Printed at Leipzig. 1884.

और यदि मन्त्रों से उसका संस्कार न हुआ हो तो विधि के अनुसार दूसरे के साथ विवाह कर दे। क्योंकि जैसी कन्या वैसी वह ॥ १५ ॥

"और जिसका विवाह-संस्कार हो गया हो और पति मर जावे और वह अक्षत-योनि हो, चाहे आई-गई भी हो तो भी, पुनर्विवाह की विधि से उसका होना चाहिए ॥ १६ ॥"

यहाँ दो की कन्याओं के विषय में पुनर्विवाह की आज्ञा है :—

(१) वह कन्या जिसको कोई छीन ले गया हो और बिना विवाह के ही धर्म भ्रष्ट कर दिया हो।

(२) वह कन्या जो योनि तो है, परन्तु विवाह भी हो गया है और पति के घर में आई-गई भी है।

अब हम लघुशातातप स्मृति को लेते हैं, जो "आनन्दाश्रम प्रेस" द्वारा १६०५ ई० की छपी हुई है। (पृष्ठ १२६)

उद्वाहिता च या कन्या न संप्राप्ता च मैथुनम् ।
भर्त्तारं पुनरभ्येति यथा कन्या तथैव सा ॥
समुद्धृत्य तु तां कन्यां साचेदक्षतयोनिका ।
कुल शीलवते दद्यादिति शातातपोऽब्रवीत् ॥

अर्थ—जिस कन्या का विवाह हो गया हो, परन्तु जो मैथुन को न हुई हो पति हो है, क्योंकि जैसी वैसी वह। उस कन्या को लेकर, यदि वह अक्षत योनि हो, कुल और शील वाले पुरुष को देवे—ऐसा का है।



दसवाँ अध्याय

पुराणों की साक्षी

न-विधवा-विवाह का विरोध करने वालों में अधिक संख्या उन लोगों की है जो पुराणों पर अपना विश्वास रखते हैं। उनका कहना है कि यद्यपि वेद में विधवा-विवाह की आज्ञा है, तथापि पुराणों से विरुद्ध होने के कारण ऐसा करना ठीक नहीं; क्योंकि इस में पुराणों का ही प्रचार होना चाहिए।

ऐसे पुरुषों से हमारी विनय है कि पुराण भी सर्वथा विधवा-विवाह का खण्डन नहीं करते।

हम यहाँ पद्मपुराण भूमिखण्ड; अध्याय ८२ से कुछ श्लोक उद्धृत करते हैं :—

उज्ज्वल उवाच

प्लक्षद्वीपे महाराज ! आसीत्पुण्यमतिः सदा ।
दिवोदासेति विख्यातः सत्यधर्मपरायणः ॥ ५० ॥
तस्यापत्यं समुत्पन्नं नारीणामुत्तमं तदा ।
गुणरूपसमायुक्ता सुशीला चारुमङ्गला ॥
दिव्यादेवीति विख्याता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ ५१॥
पित्रा विलोकिता सा तु रूपलावण्यसंयुता ।
प्रथमे वयसि दिव्या वर्त्तते चारुमङ्गला ॥ ५२ ॥



मूक रोदन

बिनु बसन्त का बाग हूँ, प्रिय-वञ्चित अनुराग हूँ !
बिना ताल का राग हूँ, भू-धूसरित पराग हूँ !!

स तां दृष्ट्वा दिवोदासो दिव्या देवीं सुतां तदा ।
कस्मै प्रदीयते कन्या सुवराय महात्मने ॥ ५३ ॥
इति चिन्तापरो भूत्वा समालोच्य नृपोत्तमः ।
रूप देशस्य राजानं समालोक्य महीपतिः ॥ ५४ ॥
चित्रसेनं महात्मानं हूय नरोत्तमः ।
कन्यां ददौ महात्माऽसौ चित्रसेनाय धीमते ॥ ५५ ॥
तस्या विवाहयज्ञस्य संप्राप्ते नृप ।
मृतोऽसौ चित्रसेनस्तु कालधर्मेण वै किल ॥ ५६ ॥
दिवोदासस्तु धर्मात्मा चिन्तयामास भूपतिः ।
ब्राह्मणान्स समाहूय प्रपच्छ नृपनन्दनः ॥ ५७ ॥
अस्या विवाहकाले तु चित्रसेनो दिवंगतः ।
अस्यास्तु कीदृशं कर्म भविष्यं तद् ब्रुवन्तु मे ॥ ५८ ॥

ब्राह्मणा ऊचुः

विवाहो जायते राजन् कन्यायास्तु विधानतः ।
पतिर्मृत्युं प्रयात्यस्या नोचेत्संगं करोति च ॥ ५९ ॥
महाव्याध्यभिभूतश्च त्यागं कृत्वा प्रयाति वा ।
प्रव्रजितो भवेद्राजन् धर्मशास्त्रेषु दृश्यते ॥ ६० ॥
उद्वाहितायां कन्यायामुद्वाहः क्रियते बुधैः ।
न स्याद्रजस्वला यावदन्येष्वपि विधीयते ॥
विवाहं तु विधानेन पिता कुर्यान्न संशयः ॥ ६१ ॥
एवं राजा दिष्टो धर्मशास्त्रार्थकोविदैः ।
विवाहार्थं समायात इन्द्रप्रस्थं द्विजोत्तमैः ॥ ६२ ॥

दिवोदासः सुधर्मात्मा द्विजानां च निदेशतः ।
विवाहार्थं महाराज उद्यमं कृतवांस्तदा ॥ ६३ ॥
पुनर्दत्ता तदा तेन दिव्यादेवी द्विजोत्तमाः ।
रूपसेनाय पुण्याय तस्मै राज्ञे महात्मने ॥
मृत्युधर्मं गतो राजा विवाहस्य समीपतः ॥ ६४ ॥
यदा यदा महाभागो दिव्या देव्याश्च भूमिपः ।
चक्रे विवाहं तद् भर्त्ता म्रियते लग्नकालतः ॥ ६५ ॥
एकविंशतिभर्त्तारः काले काले मृतास्तदा ।
ततो राजा महादुखी संजातः ख्यात विक्रमः ॥ ६६ ॥
समालोच्य समाहूय मन्त्रिभिः सह निश्चितः ।
स्वयंवरे तदा बुद्धिं चकार पृथिवीपतिः ॥ ६७ ॥
प्लक्षद्वीपस्य राजानः समाहूता महात्मना ।
स्वयंवरार्थमाहूतास्तथा ते धर्मतत्पराः ॥ ६८ ॥
तस्यास्तु रूपं संश्रुत्य राजानो मृत्युनोदिताः ।
संग्रामं चक्रिरे मूढास्ते मृताः समराङ्गणे ॥
एवं तात क्षयो जातः क्षत्रियाणां महात्मनाम् ॥ ६९ ॥
दिव्यादेवी सुदुःखार्त्ता गता साऽचल कन्दरम् ।
रुरोद करुणं बाला दिव्यादेवी मनस्विनी ॥ ७० ॥

अर्थः—उज्ज्वल ने कहा—

"प्लक्ष द्वीप में सदा पुण्यमति, सच्चे धर्म में परायण प्रसिद्ध महाराजा दिवोदास रहता था। उसके उसी समय स्त्रियों में उत्तम, गुण और रूपयुक्त, सुशील, चारु, मङ्गल, संसार में विख्यात, रूप

वाली 'दिव्यादेवी' कन्या हुई। पिता ने जब देखा कि यह पूर्ण युवती रूप और लावण्य से युक्त और सुन्दर हो गई तब वह यह सोच कर कि यह कन्या किसे विवाही जाय, चिन्ता करने लगा और रूप देश के राजा चित्रसेन को देख कर उसी बुद्धिमान के साथ दिव्यादेवी का विवाह कर दिया। उसके विवाह-यज्ञ के प्राप्त होने के समय काल-धर्म से प्रेरित होकर चित्रसेन मर गया। तब धर्मात्मा दिवोदास ने ब्राह्मणों को बुला कर उनसे पूछा कि 'इसके विवाह के समय चित्रसेन मर गया, अब आप बतलाइए कि मुझे क्या ा चाहिए।'

"ब्राह्मणों ने उत्तर दिया—'हे राजन्! कन्या का विवाह तो विधि के अनुकूल हो है, यदि उसका पति मर जाय और पति के साथ उसका सङ्ग न हुआ हो, या पति को महारोग लग गया हो, या पति उसे छोड़ कर चला जाय, या संन्यासी हो जाय। ऐसा धर्मशास्त्र में लिखा हुआ है। विवाहिता कन्या का बुद्धिमान लोग फिर दूसरों के साथ विवाह कर देते हैं, जब तक वह रजस्वला नहीं हुई। विधि-अनुकूल पिता उसका विवाह कर दे। इसमें कोई संशय नहीं।'

"जब धर्म के जानने वाले पण्डितों ने राजा को ऐसा उपदेश किया तो धर्मात्मा दिवोदास ने उसके विवाह का फिर किया और राजा रूपसेन के साथ उसका विवाह कर दिया। परन्तु विवाह के समीप ही वह राजा (रू) भी मर गया। जब-जब राजा दिव्यादेवी का विवाह करता, तब-तब समय पर ही पति मर जाता। इस प्रकार जब उसके इक्कीस पति मर गए तो

राजा बहुत दुःखी हुआ। वह मन्त्रियों को बुला कर फिर स्वयंवर की तैयारियाँ करने लगा और उसने प्लक्षद्वीप के सब राजाओं को निमन्त्रण दिया और जब धर्मात्मा राजा स्वयंवर के लिए बुलाए गए, तब उस लड़की के सौन्दर्य को सुन कर मृत्यु से प्रेरित हुए राजा लोग आपस में लड़ पड़े और रण-क्षेत्र में ही मर गए। इस प्रकार हे तात! महात्मा क्षत्रियों का सर्वनाश हो गया और दुखिया दिव्यादेवी 'अचल कन्दरा' को चली गई और वहाँ रोने-पीटने लगी।"

हमने यहाँ पद्मपुराण से दिव्यादेवी का पूरा वृत्तान्त उद्धृत कर दिया है, जिससे हमारे पाठकगण समस्त घटना पर पूर्णतया विचार कर सकें और किसी को यह कहने का साहस न हो कि हमने प्रकरण पर ध्यान नहीं दिया। यहाँ इतनी ॅ पर ध्यान देना चाहिए :—

(१) दिवोदास ने दिव्यादेवी का २१ बार 'विवाहं चक्रे' विवाह किया।

(२) और उसके २१ पति मर गए।

(३) दिवोदास ने जब ब्राह्मणों से पहले विवाह के पश्चात् सम्मति माँगी तो उन्होंने निम्न बातें कहीं :—

(अ) यदि कन्या का पति मर जाय और उसका सहवास न हुआ हो,

(आ) यदि पति महारोगी हो,

(इ) यदि पति छोड़ कर चला जाय,

(ई) यदि पति संन्यासी हो तो इन चारों दशाओं में

"उद्वाहितायां कन्यायां" विवाहित कन्या का विवाह हो सकता है। यहाँ चारों दशाएँ वही हैं जो पाराशर-स्मृति में दी हुई हैं। अर्थात् नष्टे, मृते, प्रव्रजिते, क्लीवे, पाँचवीं दशा अर्थात् 'पतिते' का इसमें उल्लेख नहीं है! क्लीवत्व और महारोग समान हैं।

(४) दिवोदास शूद्र नहीं, महात्मा और गुणवान् क्षत्रिय था इससे पद्मपुराण के अनुसार विवाह निषिद्ध नहीं है।

महाभारत में तो विधवा-विवाह तथा नियोग के अनेकों उदाहरण मिलते हैं। भीष्म-पर्व के अध्याय ९१ में धनुर्धारी अर्जुन के पुनर्विवाह का वर्णन है :—

अर्जुनस्यात्मजः श्रीमानिरावान्नाम वीर्यवान्।
सुतायां नागराजस्य जातः पार्थेन धीमता ॥ ७ ॥
ऐरावतेन सा दत्ता ह्यनपत्या महात्मना।
पत्यौ हते सुपर्णेन कृपणा दीनचेतना ॥ ८ ॥

अर्थ—नागराज की कन्या से अर्जुन का एक लड़का उत्पन्न हुआ जिसका नाम इरावान था।

जब सुपर्ण ऐरावत् ने उस (नागराज की कन्या) के पति को मार डाला तो उस बुद्धिमान (नागराज) ने अपनी दुखिया कन्या का विवाह अर्जुन के साथ कर दिया।



आठवाँ अध्याय

अङ्गरेज़ी क़ानून की आज्ञा

बहुत से विधवा-विवाह के विरोधी लोगों को यह कह कर बहका देते हैं कि यदि तुम विधवा का विवाह करोगे तो तुमको सज़ा हो जायगी और विधवा की सन्तान भी हरामी या नाजायज़ कहलाएगी। हमने स्वयं देखा है कि जब एक के भद्रपुरुष एक विधवा-विवाह में सम्मिलित हुए तो उनको यह कह कर डराया गया कि तुमको क़ानून के अनुसार छः-छः महीने की सज़ा होगी। उस समय उन अनभिज्ञ मनुष्यों को बड़ी घबराहट हुई।

इसलिए हम यहाँ सरकारी क़ानून को भी उद्धृत किए देते हैं जिससे सर्वसाधारण को इस विषय में अपने अधिकार और कर्त्तव्य ज्ञात हो जायँ।

जिस समय श्रीयुत पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने में विधवा-पुनर्विवाह का प्रश्न उठाया, उस समय यद्यपि विधवा-विवाह को अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई, तथापि सबसे बड़ा काम जो उक्त पण्डित जी ने किया और जिसके लिए हम सबको उनका कृतज्ञ होना चाहिए, यह था कि बृटिश गवर्नमेन्ट में आन्दोलन करके हिन्दू-लॉ (Hindu Law) में इस प्रकार का परिवर्तन करा दिया कि विधवा-विवाह जायज़ और नियमानुकूल निश्चित हो गया।

यह क़ानून २५ जुलाई, सन् १८५६ ई० को पास हुआ था और इसका नाम "The Hindu Widows' Remarriage Act, 1856" अर्थात् "हिन्दू-विधवाओं के पुनर्विवाह का निश्चय १८५६ है।" इसकी मूल भाषा यह है:—

AN ACT TO REMOVE ALL LEGAL OBSTACLES TO THE MARRIAGE OF HINDU WIDOWS

Preamble.

Whereas it is known that by the law as administered in the Civil Courts established in the territories in the possession and under the Government of the East India Company, Hindu Widows with certain exceptions are held to be, by reason of their having been once married, incapable of contracting a second valid marriage and the offspring of such widows by any second marriage are held to be illegetimate and incapable of inheriting property, and whereas many Hindus believe that this imputed legal incapacity, although it is in accordance with established custom, is not in accordance with a true interpretation of the precepts of their religion, and desire that the Civil Law administered by the courts of Justice shall no longer prevent those Hindus who may be so minded, from adopting different customs, in accordance with the dictates of their own conscience; and whereas it is just to relieve all such Hindus from this legal incapacity

of which they complain, and the removal of all legal obstacles to the marriage of Hindu widows will tend to the promotion of good morals, and to the public welfare. It is enacted as follows:—

Marriage of Hindu widows legalized.

1. No marriage contracted between Hindus (a) shall be invalid, and the issue (b) of no such marriage shall be illegitimate, by reason of the woman having been previously married or betrothed to another person who was dead at the time of such marriage, any custom and any interpretation of Hindu law to the contrary notwithstanding.

Rights of widow in deceased husband's property to cease on her remarriage.

2. (c) All rights and interests which any widow may have in her deceased husband's property by way maintenance, or by inheritance to her husband or to his lineal successors, or by virtue of any will or testamentary disposition

---

Case law—

(a) Act applies only to Hindu widows' remarriage as such, 19C. 289; enables widows, unable to remarry previously, to remarry, 11A 330; and does not apply to cases in which remarriage is allowed by custom of caste, 11B. 119;

(b) Of a marriage under the Act can inherit, 4 P.R. 1905; 61 P.R. 1905

(c) S. 2 divests her of the right only if she marries after

conferring upon her, without express permission to remarry, only a limited interest in such property, with no power of alienating the same, shall upon her remarriage cease and determine as if she has then died; and the next heirs of her deceased husband, or other persons entitled to the property on her death, shall thereupon succeed to the same.

Guardianship of children of deceased husband on the remarriage of his widow.

3. On the *remarriage* of a Hindu *widow*, if neither the widow nor any other person has been expressly constituted by the will or testamentary disposition of the deceased husband the guardian of his children, the father or paternal grand-father or the mother or paternal grand-mother of the deceased husband, may petition the highest Court having original jurisdiction in civil cases in the place where the deceased husband was domiciled at the time

---

succeeding to the estate. 26 B. 388=4 Bom. L R. 73; 29 B. 91. F.B.=6 Bom. L R. 779; transfer by a Hindu...for legal necessity before her remarriage is valid, 8 C. L. J. 542;

Section applies only to widows who could not have remarried prior to the Act, 11 A. 930; a...of a caste in which remarriage is allowed, e. g., the Kurmi, can remain in possession of her husband's *estate till* her death, *20* A. *476; see also 29* A. *122;* she does not lose her right to maintenance against her husband's estate, 31 A. 161; she forfeits estate inherited. 22 C. 589; from her son, 22 B. 321 (F.B.)

of his death for the appointment of some proper person to be guardian of the said children, and thereupon it shall be lawful for the said Court, if it shall think fit, to appoint such guardian, who when appointed, shall be entitled to have the care and custody of the said children, or of any of them during their minority, in the place of their mother, and in making such appointment the Court shall be guided, so for as may be by the laws and rules in force, touching the guardianship of children (a) who have neither father nor mother.

Provided that when the said children have not property of their own sufficient for their support and proper education whilst minors, no such appointment shall be made otherwise then with the consent of the mother (b) unless the proposed guardian shall have given security for the support and proper education of the children whilst minors.

Nothing in this Act to render any childless widow capable of inheriting.

4. Nothing in this Act contained shall be construed to render any widow who, at the time of the death of any person leaving any property is a childless widow, capable of inheriting the

---

Case law—

(a) Meaning of...4 A. 195;

(b) Who has no right to give her son in adoption. 24 B. 89.

whole or any share of such property, if before the passing of this Act, she would have been incapable of inheriting the same by reason of her being a childless widow.

Saving of rights of widow marrying except as provided in Sections 2 and 4.

5. Except as in the three preceding sections is provided, a widow shall not, by reason of her remarriage forfeit (a) any property or any right to which she would otherwise be entitled, and every widow who has remarried shall have the some rights of inheritance as she would have had, had such marriage been her first marriage.

Ceremonies constituting valid marriage to have same effect on widow marriage.

6. Whatever words spoken, ceremonies performed or engagements made on the marriage of a Hindu female who has not been previously married, are sufficient to constitute a valid marriage, shall have the same effect if spoken, performed or made on the marriage of a Hindu widow, and no marriage shall be declared invalid on the ground that

---

Remarriage does not prevent such a widow from inheriting her son's property, 2 B.L.R. A. C. 189...11 W. R. 82; a remarried Marwar...cannot claim her *first husband's property*. 1 M. 226; right to give in adoption is not a right reserved under the Section, 24 B. 89; Contra; 33 B. 107...11 Bom. L. R. 1134.

such words, ceremonies or engagements are inapplicable to the case of a widow.

Consent to remarriage of minor widows.

7. If the widow remarrying is a minor, whose marriage has not been consummated, she shall not remarry without the consent of her father, or if she has no father, of her paternal grand-father, or if she has no such grand-father, of her mother, or failing also brothers, of her next male relative.

Punishment for abetting marriage made contrary to this Section.

8. All persons knowingly abetting a marriage made contrary to the provisions of this section shall be liable to imprisionment for any term not exceeding one year or to fine or to both.

Effect of such marriage proviso.

And all marriages made contrary to the provisions of this section may be declared void by a Court of law: provided that in any question regarding the validity of a marriage made contrary to the provisions of this section, such consent is as aforesaid shall be presumed (a) until the contrary is proved and that no such marriage shall be declared void after it has been consummated.

Case law—

(a) Section 8 A 143.

Consent to remarriage of major widow.

In the case of a widow who is of full age, or whose marriage has been consummated, her own consent shall be sufficient consent to constitute her remarriage lawful and valid.

हिन्दू-विधवा-पुनर्विवाह एक्ट १८५६

क़ानून जिससे यह तात्पर्य है कि हिन्दू-विधवा के विवाह करने में किसी प्रकार क़ानूनी रोक नहीं।

भूमिका

चूँकि यह बात मालूम है कि जो देश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्वत्व और शासन में हैं, उन देशों की दीवानी अदालतों के क़ानून के अनुसार थोड़ी सी विधवा स्त्रियों को छोड़ कर शेष हिन्दू विधवाएँ एक बार विवाह हो जाने के कारण जायज़ तौर पर दूसरा विवाह नहीं कर सकतीं और जो सन्तान उन विधवाओं के दूसरे विवाह से उत्पन्न हो वह अनुचित है और सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी नहीं।

और चूँकि बहुत से हिन्दुओं का विश्वास है कि यह क़ानून के अनुसार अनुचित ठहराना, यद्यपि रिवाज के अनुकूल है, परन्तु उनके धर्मशास्त्र के वास्तविक अर्थों के अनुसार नहीं है और वह लोग यह बात चाहते हैं कि यदि भविष्य में कोई भी हिन्दू लोग दूसरे ˆ का जारी करना, इस रिवाज के विरुद्ध, अपनी आत्मा से स्वीकार करें तो उसके जारी करने में कोई रुकावट दीवानी के क़ानून द्वारा न हो सके।

और चूँकि यही न्याय है कि उन लोगों को इस प्रकार क़ानून

से नाजायज़ ठहराने की रोक से छुड़ाया जाय, जिसकी उनको शिकायत है और हिन्दू विधवाओं के विवाह के विषय में सब क़ानूनी रुकावटों के उठा देने से सदाचार बढ़ेगा और शान्ति फैलेगी।

अतः यह आज्ञा होती है कि :—

(१) हिन्दुओं का कोई विवाह नाजायज़ न होगा और इस प्रकार के किसी विवाह की सन्तान नाजायज़ न होगी केवल इसलिए कि, स्त्री का पहले विवाह हो चुका या मँगनी हो चुकी थी। ऐसे पुरुष के साथ में जिसकी इस दूसरे विवाह के पहले मृत्यु हो गई हो चाहे इस बात के विरुद्ध कोई रिवाज या शास्त्र की व्यवस्था हो।

(२) सब अधिकार जो किसी विधवा को अपने मृत पति की जायदाद में गुज़ारे के लिए, या पति की उत्तराधिकारिणी होने के कारण, या पति के वंश में क़ानूनी उत्तराधिकारी होने के मिलते हों या उसको किसी वसीयतनामे के अनुसार, जिसमें पुनर्विवाह की स्पष्ट आज्ञा न हो कोई जायदाद मिले जिसको पृथक करने का ो अधिकार न हो तो विधवा के दूसरे विवाह के समय वह सब जायदाद और अधिकार उसी प्रकार बन्द हो जायँगे और जाते रहेंगे कि जैसे वह विधवा मर गई होती और उस विधवा के मृत पति के निकटस्थ उत्तराधिकारी या वह लोग जो उस विधवा के मरने पर जायदाद के उत्तराधिकारी होते उस जायदाद को लेंगे।

(३) यदि हिन्दू-विधवा के विवाह के उसके मृत पति

ने अपने वसीयतनामे के अनुसार स्पष्टतया अपनी विधवा को या किसी अन्य पुरुष को अपनी सन्तान का वली नियत न किया हो तो मृत पति का पिता, या पिता का पिता, या माता, या पिता की माता, या मृत पति के किसी सम्बन्धी पुरुष को इस बात का अधिकार होगा कि वह उस स्थान पर जहाँ मरने के समय वह मृत व्यक्ति रहता था सबसे ऊँची अदालत में जिसको दीवानी के असली मुक़द्दमे सुनने का अधिकार है, यह अर्ज़ी दे कि उचित पुरुष उस सन्तान का वली नियत किया जाय और उस अर्ज़ी पर यदि अदालत उचित समझे तो वली नियत कर दे और जब वली नियत हो तो उस वली को अधिकार होगा कि समस्त सन्तान या उनमें से थोड़े बच्चों का पालन-पोषण और रक्षण उनकी कम अवस्था होने तक उनकी माता के बजाय रक्खे। और जब अदालत ऐसा वली नियत करे तो उसे जहाँ तक सम्भव हो सके उन सब क़ानूनों की पैरवी करनी पड़ेगी जो उन बच्चों के वली नियत करने के सम्बन्ध में हों और जिनके माता-पिता नहीं हैं।

परन्तु शर्त यह है कि यदि इन उपर्युक्त बच्चों के पास अपनी काफ़ी जायदाद न हो जिससे उनका छोटी अवस्था में पालन तथा शिक्षण हो सके तो माता की इच्छा के बिना कोई वली नियत न किया जायगा, सिवाय उस दशा के, जब वली यह ज़मानत कर दे कि छोटी अवस्था में, मैं इन बच्चों के पालन-पोषण और शिक्षा का भार अपने सिर लूँगा।

(४) क़ानून की किसी इबारत से यह बात न समझी जायगी कि कोई विधवा जो किसी जायदाद वाले पुरुष के मरने के समय

सन्तान-रहित है यदि इस क़ानून के पास होने के पूर्व सन्तान-रहित होने के कारण जायदाद पाने की अधिकारिणी नहीं थी तो वह अब उस सब जायदाद या उसके किसी भाग के पाने की अधिकारिणी होगी !

(५) सिवाय उन शर्तों के, जिनका वर्णन इससे पहले की तीनों धाराओं में हो चुका है, कोई विधवा पुनर्विवाह कर लेने के कारण किसी सम्पत्ति या दाय-भाग से, जिसके पाने की वह और प्रकार से अधिकारिणी है, अलग नहीं होगी और प्रत्येक विधवा का जिसने पुनर्विवाह किया है उसी का सम्पत्ति पर रहेगा मानों यह विवाह पहला ही विवाह था।

(६) जिस हिन्दू स्त्री का पहले विवाह न हुआ हो विवाह के समय में जिन शब्दों के बोलने या जिन रस्मों के करने या जिन प्रतिज्ञाओं के करने से वह विवाह विधि-अनुकूल होता है, हिन्दू-विधवा-विवाह के समय उन्हीं शब्दों के बोलने और उन्हीं रस्मों या प्रतिज्ञाओं के करने से पुनर्विवाह विधि-अनुकूल ठहरता है और कोई विवाह इस से नाजायज़ न ठहराया जायगा कि, ऐसे शब्द या रस्में या प्रतिज्ञाएँ विधवा के विषय से सम्बद्ध नहीं हैं।

(७) यदि कोई विधवा पुनर्विवाह करना चाहे और वह लिग़ हो और उसका पहिले पति से संयोग न हुआ हो तो अपने पिता या जो पिता न हो तो पिता के पिता और जो पिता का पिता न हो तो अपनी माता और जो यह सब न हों तो अपने बड़े भाई और यदि भाई भी न होवें तो अपने निकटस्थ सम्बन्धी की इच्छा के बिना वह विधवा पुनर्विवाह न करेगी।

(८) और जो लोग जान-बूझ कर किसी ऐसे विवाह में सहायता दें जो इस धारा की शर्तों के विरुद्ध है तो वह सब लोग अधिक से अधिक एक वर्ष तक क़ैद या जुर्माना या दोनों के दण्डनीय होंगे।

और जो विवाह इस एक्ट की शर्तों के विरुद्ध किए जाएँ तो उनको नाजायज़ ठहराने का अदालत को अधिकार होगा।

पर शर्त यह है कि यदि कोई झगड़ा इस प्रकार का पड़े कि विवाह इस कारण नाजायज़ है कि वह इस एक्ट की शर्तों के विरुद्ध किया गया है तो जब तक नारज़ामन्दी सिद्ध न हो उस समय तक रज़ामन्दी का देना स्वीकार कर लिया जायगा और यदि स्त्री-पुरुषों का संयोग हो गया हो तो कोई विवाह नाजायज़ न ठहराया जायगा।

यदि विधवा बालिग़ है, या उसका अपने पूर्व पति से संयोग हो चुका है तो स्त्री की ही रज़ामन्दी उसके पुनर्विवाह के करने में क़ानून और रस्म के अनुसार जायज़ ठहराने के लिए पर्याप्त होगी।

इस एक्ट से इतनी बातें प्रकाशित होती हैं :—

(१) प्रत्येक हिन्दू-विधवा का पुनर्विवाह क़ानून की दृष्टि में जायज़ है चाहे अक्षत-योनि, चाहे क्षत-योनि, चाहे सन्तान वाली या सन्तान-रहित।

(२) साधारण विवाह को जायज़ करने के लिए जो रस्में होती हैं वही पुनर्विवाह के लिए पर्याप्त हैं।

(३) यदि विधवा अक्षत-योनि और नाबालिग़ हो तो पुन-

विवाह केवल पिता, पितामह, माता, बड़े भाई या इनके अभाव में किसी निकटस्थ सम्बन्धी की रज़ामन्दी से ही हो सकेगा।

(४) और यदि क्षत-योनि या बालिग़ हो तो केवल उसी की रज़ामन्दी पर्याप्त है।

(५) अपने पूर्व पति की जो सम्पत्ति विधवा को केवल गुज़ारे के तौर पर मिलती है, वह पुनर्विवाह के पश्चात् उससे छिन जाती है।

(६) परन्तु जो सम्पत्ति उसकी अन्यथा होती है वह छिन नहीं सकती।

(७) पुनर्विवाहित पति से विधवा की जो सन्तान होती है वह अपने पिता की जायज़ सन्तान होती है और उसकी सम्पत्ति की भी उत्तराधिकारिणी होती है।

इसलिए विधवा-विवाह करने वालों को किसी प्रकार का भी क़ानूनी भय नहीं है।



नवाँ अध्याय

विधवा-विवाह-विषयक अन्य युक्तियाँ

हम गत अध्यायों में बता चुके हैं कि स्त्रियों का पुनर्विवाह निम्न-लिखित युक्तियों से सिद्ध है :—

(१) स्त्री और पुरुषों का मनुष्य-समाज में तुल्य पद, तुल्य अधिकार और तुल्य कर्त्तव्य है। जब पुरुष पुनर्विवाह कर सकते हैं तो स्त्रियों को भी अवश्य इसकी आज्ञा होनी चाहिए।

(२) वेद, स्मृति, पुराण तथा इतिहास के प्रमाणों से विदित होता है कि प्राचीन भारतवर्ष में स्त्रियों को नियोग अथवा पुनर्विवाह की आज्ञा थी।

परन्तु इनके अतिरिक्त और बहुत सी युक्तियाँ दी जा सकती हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि बिना विधवा-विवाह की आज्ञा दिए देश का कल्याण नहीं।

सबसे पहले विधवाओं को सदाचारिणी रखने का एकमात्र साधन यही है। आजकल जिन स्त्रियों के पति बाल्यावस्था में ही मर गए हैं उनकी ऐसी दुर्दशा हो रही है कि लेखनी लिखते हुए थर्राती है।

और न केवल विधवाएँ, किन्तु पुरुषों के आचार पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। बहुत से पुरुष इन्हीं विधवाओं को घर में डाल

लेते हैं जिनको 'सुरैत' कहते हैं। इससे न केवल नाजायज़ और हरामी सन्तान का ही देश में आधिक्य हो रहा है, किन्तु लोग जातियों से वहिष्कृत हो रहे हैं और इस प्रकार जाति के पुरुषों की संख्या दिन प्रति दिन न्यून होती जा रही है।

हम यहाँ आर्य गज़ट लाहौर के २७ पौष, सम्वत् १९७४ विक्रमी के पर्चे से उस अंश को उद्धृत करते हैं जिसमें पञ्जाब में विधवा-विवाह न होने से जो हानियाँ हो रही हैं उनको भली प्रकार दिखलाया गया है :—

हिन्दू विधवाओं का क्या होगा?

"मैं प्रथम लिख चुका हूँ कि हिन्दू विधवाओं का सत्यानाश समस्त हिन्दू स्त्रियों के लिए एक भारी आपत्ति है और स्त्रियों की ति पुरुषों के सत्यानाश की अग्रगन्ता है। हिन्दू-जाति में स्त्री-जाति के साथ उत्पत्ति के दिन से ही जो व्यवहार किया जाता है वह मैं थोड़ा सा दिखलाना चाहता हूँ :—

"परमात्मा की क़ुदरत के हिसाब में कोई भूल नहीं होती। इस कारण लड़के और लड़कियों की उत्पत्ति संख्या में लगभग बराबर होती है। परन्तु माता-पिता की ओर से जो व्यवहार लड़कियों से किया जाता है वह लड़कियों के अनुकूल नहीं है। इसका प्रभाव यह है कि सृष्टि-नियम के अनुसार जितने लड़के और लड़कियों को छोटी अवस्था में मरना चाहिए लड़कियों की मृत्यु इससे कहीं अधिक होती है। १९२१ ई० की मनुष्य-गणना इस से है कि पञ्जाब में एक साल तक आयु के १२३३४२ लड़के होते हुए

२०७११ लड़कियाँ हैं और पाँच वर्ष तक की आयु के ६०७०७ लड़कों के मुक़ाबले में ८५८३६ लड़कियाँ हैं और इससे पन्द्रह वर्ष की आयु की लड़कियाँ इस आयु के ३०७०२१ लड़कों में केवल २३०७५५ रह जाती हैं।

दूसरा हिसाब इस प्रकार है कि एक से पाँच वर्ष तक की आय की लड़कियाँ इस आयु के लड़कों से संख्या में ६०७०७-८५८३६ कम हैं और पाँच वर्ष से ऊपर दस वर्ष तक की आयु की लड़कियाँ इसी अवस्था के लड़कों से ४८७७५१-४३०६६४ कम हैं और दस से १५ वर्ष तक की आयु की लड़कियाँ इसी अवस्था के लड़कों से ४१६६६८-३१७२२७ कम हैं और १५ से ऊपर बीस वर्ष तक अवस्था की लड़कियाँ इसी के . ों से ३०७०२१-२३०७५५ कम हैं। मानो लड़कियों से जिस प्रकार का व्यवहार हिन्दू-जाति ने उचित माना है इसका परि यह है कि बीस वर्ष की आयु होने तक स्व : जितने लड़के और लड़कियाँ मरती हैं, लड़कियों की मृत्यु-संख्या इससे ३,६३,२०६ अधिक है। तो क्या यह बात समझ में आनी मुश्किल है कि इतनी अधिक संख्या में लड़कियों के छोटी अवस्था में मरने का कारण पुरुषों का स्त्री-जाति से व्यवहार है और यह जितना शोकप्रद है उसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं?

सहस्रों लड़कियाँ पालन-पोषण की धानी और रोग में बेपरवाही का शिकार हो जाती हैं। सहस्रों बाल्यावस्था में विवाही जाकर, -काल में मर जाती हैं। सहस्रों बूढ़े पतियों से ब्याही जाती हैं और छोटी अवस्था में विधवा होकर और भूख से सताई जाकर मरती हैं; या कहीं को निकल जाती हैं। सारांश यह कि

इस बात के सत्य होने में कोई सन्देह नहीं कि हिन्दू-जाति में पुरुषों का व्यवहार ही इस प्रकार का है जिसको स्त्रियों की सर्व-तन्त्र-हत्या कही जाय तो अत्युक्ति न होगी।

इस सर्व-तन्त्र-हत्या का दूसरा पक्ष इस प्रकार भी दृष्टिगोचर होता है कि दिल्ली नगर में २६,८३६ लाहौर में २६,०६४ अमृतसर में १५,७७१ मुल्तान में ७,७४३ रावलपिण्डी में ६,०५८ अम्बाले में ६,४८३ जालन्धर में ५,१०० स्यालकोट में ३,८१२ और फ़ीरोज़पुर में ६,४१६ स्त्रियाँ पुरुषों से कम हैं। इस प्रकार से पञ्जाब के इन बड़े नगरों में जहाँ कुल मनुष्य-संख्या हिन्दू-पुरुषों की २,५४,२६० है इनमें से १,१६,२८३ पुरुषों के भाग्य में स्त्रियाँ नहीं अर्थात् इनका विवाह न हुआ है और न होगा। क्योंकि स्त्रियों की संख्या बहुत कम है।

तीसरा पक्ष आप देखना चाहें तो वह इस प्रकार है कि समस्त पञ्जाब में कुँआरे हिन्दू-पुरुषों की संख्या २४,१२,३६५ और कुमारी लड़कियों की संख्या १३,२६,८३० है जिससे सिद्ध है कि ११,८६,५३५ पुरुषों का विवाह नहीं हो सकता। इनके अतिरिक्त ऐसे रँडुए पुरुष, जिनकी आयु एक वर्ष से लेकर ५० वर्ष तक है और वह भी विवाह के उम्मेदवार हैं, संख्या में २,४२,८२६ हैं। यह भी कुँआरे पुरुषों में सम्मिलित किए जावें तो १४,२६,३६४ पुरुष ऐसे हैं, जिनके लिए स्त्रियों का अभाव है। जो एक स्त्री के मरने पर दूसरा, उसके मरने पर तीसरा भी विवाह करते हैं और कई ऐसे हैं जो लड़के न होने के कारण एक स्त्री के होते हुए दूसरी स्त्री से विवाह करते हैं और कुँआरी स्त्रियों में प्रति शतक न्यून से न्यून पाँच यह अवश्य

ले जायँगे जो ४६,३४१ होती हैं। इनको भी सम्मिलित करके विवाह के योग्य पुरुषों से विवाह के योग्य स्त्रियों की संख्या १४,६६,७०६ या १५ के ल कम है।

और चौथे पक्ष पर दृष्टि डालने से यह संख्या १६ लाख के लगभग मालूम होती है। अब पाठकगण विचार करें कि यह १५ या १६ लाख मनुष्य सन्तान-वृद्धि की अपेक्षा से किसमें गिने जायँगे? इनमें से किसी एक का भी स्थानापन्न बच्चा—इसके पूर्वजों के वंश को जारी रखने का साधन, इसके अन्तिम श्वास लेने के समय उपस्थित न होगा, जिसके शोक और निराशा में यह लोग अपनी आयु के दिन शोक, चिन्ता, क्रोध, पाप और दुराचार में व्यतीत कर रहे हैं और जिस दुःख और कष्ट से यह अपना अन्तिम श्वास छोड़ेंगे क्या इसका कुछ प्रभाव शेष लोगों और कुल जाति पर पड़ रहा है या नहीं? जिनको आँखें हैं वह देखें और जिनके कान हैं वह सुनें कि यह केवल इन्हीं लोगों की बरबादी नहीं, किन्तु जो लोग संसार के विषयों में आसक्त हैं, धन-धान्य तथा बाल-बच्चों के सुख में आनन्द लूट रहे हैं उनके और उनकी सन्तान के लिए भी यही भाग्य बनाया जा रहा है। और इनका भी एक दिन यही होगा। यह १६ लाख पुरुष, जिनके हिस्से की स्त्रियों को, पुरुषों के अनुचित व्यवहार ने मार और सात लाख विधवाएँ, जिसमें से ६६ तो ऐसी हैं जिनकी अवस्था ५ वर्ष के भीतर हैं, और १,५३७ जि ी आयु ५ वर्ष से ऊपर १० वर्ष तक है, और ४,२८८ वह जिनकी अवस्था १० वर्ष से ऊपर और १५ वर्ष तक है, और ११,८४४ वह जिनकी आयु १५ वर्ष से ऊपर

२० वर्ष तक है, और २४,२३५ की अवस्था २५ वर्ष तक है और जिनकी दुर्दशा उनको दृष्टिगोचर हो . ी है, जो देखना चाहते हैं। क्या यह ज़िन्दा लाशें नहीं हैं, जोकि रात-दिन चिन्ता की चिता में जल रही हैं और कितने इनके सम्बन्धी हैं जो इन्हीं के कारण दुःखों की पीड़ा से सूख कर काँटा हो रहे हैं! इन २३ लाख के साथ अधिक नहीं तो २३ लाख के प्रेम का सम्बन्ध अवश्य है। इस हिसाब से पञ्जाब ही के भीतर हिन्दू-जाति के ४६ लाख स्त्री-पुरुष आजकल उपस्थित हैं, जो दिन-रात जल रहे हैं, जिनको जीवन का कुछ स्वाद नहीं और मृत्यु को बुलाते हैं और वह आती नहीं। अन्त में एक दिन मृत्यु अवश्य आएगी और हिन्दू-जाति के ८७,७३, ६२१ मनुष्यों में से ४६ लाख को दुःखों से छुड़ाएगी। फिर क्या होगा? इनका स्थान लेने वाले और बहुत से लोग हो जावेंगे। यह लोग कौन होंगे?

वह जो अपनी जाति के दुःखित भाई-बहिनों की परवाह नहीं करते और अपने मद में मस्त हैं। अब पाठकगण स्वयं हिसाब कर देख लें कि शेष बचे हुए ४१ लाख का इसी अवस्था में लाकर नाश के समुद्र में डुबोने के लिए कितने वर्ष का समय आवश्यक है। समय है कि जो लोग विषयासक्ति में मग्न हैं असावधानी की नींद से जागें, अपने दुखिया बहिन-भाइयों के लिए नहीं तो कम से कम अपने ही नाश को रोकने का यत्न करें। हे जगज्जननी! तू दया कर, अपने असावधान और मदमस्त बच्चों को प्रेम की लोरी दे, जिससे वह ईर्षा, द्वेष, आलस्य और प्रमाद को छोड़ कर परोपकार में लग जावें।"

कौन ऐसा कठोर हृदय होगा जो इस अपील पर द्रवित न हो और फिर भी पूछे कि वि -विवाह क्यों उचित है? पाठकगण, यदि आपने बाल-विधवा-विवाह का प्रचार न किया तो एक भयानक प्रश्न है कि हिन्दू विधवाओं की क्या दशा होगी? जिन महाशय का लेख हमने उद्धृत किया है उन्हीं के अन्वेषण से एक और भयानक सूचना मिली है, जिसके कारण हिन्दू-जाति के सत्यानाश में कोई सन्देह ही नहीं रहता। इन्होंने पता लगाया है कि सैकड़ों इस प्रकार के दलाल हैं जो संयुक्त-प्रान्त से हज़ारों विधवाओं को बहका कर पञ्जाब में ले जाते और उनको बेच देते हैं। मानो ग़ुलामी की प्रथा भी हमारे सामाजिक बिगाड़ के कारण अभी तक गई नहीं। बहुत से ऐसे पुरुष हैं जो यही व्यापार करते हैं और अपनी ही जाति के लोहू से ी प्यास बुझाते हैं। इन दलालों की भाषा गुप्त और पत्र-व्यवहार भी गुप्त होता है। उक्त महाशय ने पहली भादों सं० १९७४ को दो-तीन पत्र आर्य-गज़ट में इन दलालों के छपवाए थे जिनसे पता लगता है कि साधारणतया इनका पकड़ना भी मुश्किल है। हम यहाँ कुछ नमूने देते हैं :—

पहला पत्र—"श्रीगणेशाय नमः। आपका ख़त आया था सो बहुत कोशिश की थी कि तुमको इसका जवाब दूँ। लेकिन पता न मालूम होने के कारण मैं नहीं भेज सका। परन्तु ईश्वर की कृपा से अब पता मालूम हो गया है तो अब पत्र भेजता हूँ। गेहूँ १३ सेर फ़ी रुपया, चना १६ सेर फ़ी रुपया, अरहर २० सेर फ़ी रुपया है। तीन चीज़ें तैयार हैं। अगर आपको आना हो तो

१३ मई १६१७ ई० तक ज़रूर आइए, वरना मैं यहाँ से चला आऊँगा।"

दूसरा पत्र—"बाबू ....साहेब ! अर्सा हुआ, कुछ हाल मालूम नहीं हुआ। यहाँ का हाल यह है कि हमने माल तैयार किया है। आपको २३ तारीख़ बरोज़ सोमवार तार दिया है कि माल तैयार है। जल्द आओ। मगर आज आठ रोज़ हुए कुछ हाल मालूम नहीं हुआ कि आपको तार मिला है या नहीं। अगर आप देर में आवेंगे तो नुक़सान है। सौदागर माल वाला जल्दी करता है। जो हाल हो उससे बहुत जल्द इत्तला दो। वैसा इन्तज़ाम किया जाय। माल उम्दा है, और काम जल्दी का है। अगर जल्दी ख़रीद-फ़रोख़्त की न होगी तो वापिस हो जाने का ख़ौफ़ है। अगर आपका आना किसी वजह से न हो सके तो जल्द इत्तला दीजिए। माल वाले को जवाब दिया जाय कि वह अपने मकान वापस जावे या अपना दूसरी जगह वास्ते फ़रोख़्त के इन्तज़ाम करे; क्योंकि ख़र्च फ़िज़ूल हो रहा है और आपकी उम्मेद पर रुके हुए हैं और आपके कहने के माफ़िक़ माल ख़रीद कर लिया है, वरना कोई ज़रूरत नहीं थी। मगर ख़ैर, जो बात होवे उससे साफ़-साफ़ इत्तला दीजिए। तबीयत अज़हद परेशान है और हर रोज़ इन्तज़ारी करते-करते आँख बैठ जाती है। इस क़दर देर होने की क्या वजह है? अगर तशरीफ़ लाने में देरी हो तो फ़ौरन इत्तला दो। माल वाले को जवाब देवें। रोज़ाना ख़र्च हो रहा है। नुक़सान है, और ज़्यादा क्या लिखूँ?"

तीसरा पत्र—"बाबू............। आज हमने वापस

कर दिया। आपके आने में देरी पाई गई। और वाला सौदागर बहुत जल्दी करता था। इस वजह से वापस कर दिया गया। आपके न आने की वजह से मुझे बहुत नुक़सान बरदाश्त करना पड़ा। बराहे नवाज़िश ऐसा न किया कीजिए। इसमें क्या फ़ायदा? आपका जल्दी होने वाला है। दस-पाँच रोज़ की देरी है। अगर ईश्वर ने चाहा तो दस-पाँच रोज़ में आपका काम उम्दा होगा। मगर आना फ़ौरन। जिस वक्त आपको ख़त मिले, फ़ौरन आइएगा। देर न कीजिएगा। दिलोजान से कोशिश कर रहे हैं। उम्मेद है कि आपका काम बहुत जल्दी और उम्दा होगा।"*

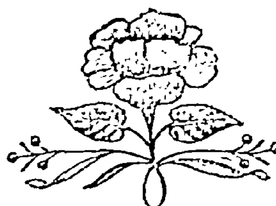
, जिस जाति को आप बहुत उच्च समझते हैं, उसी में देखो किस प्रकार सैकड़ों दलाल विधवाओं को बहकाने और उनको बेचने का उद्योग किया करते हैं। यदि वि -विवाह प्रचलित हो जाय तो इस भीषण कार्य में बहुत-कुछ कमी हो सकती है। हज़ारों विधवाएँ तो ऐसे लोगों के हाथ पड़ जाती हैं जिनके

---

* अक्टूबर, १६२८ के 'पायोनियर' में ख़बर है कि गवर्नमेण्ट की ख़ुफ़िया पुलिस ने एक भयानक षड्यन्त्र का पता । है। कुछ पञ्जाब और संयुक्त प्रान्त के लड़कियों का व्यापार करने वाले अपने को दरियों का सौदागर प्रसिद्ध करते हैं, परन्तु वह दरियाँ नहीं, किन्तु लड़कियाँ बेचते हैं। मिर्ज़ापुर, प्रयाग, अमृतसर आदि नगरों में इनके अड्डे हैं।

—लेखक

स्वभाव, आर्थिक दशा तथा जाति-पाँति से वह सर्वथा अनभिज्ञ हैं और उनके घर रहना भी नहीं चाहतीं। एक बार उनके हाथ बिक जाने के पश्चात् उनके लिए आपत्तियों का जो चक्र चलता है वह महा भयानक और हानिप्रद है। इन बेचारियों पर बड़े-बड़े अत्याचार होते हैं और जो कष्ट उनको डमरा या अन्य टापुओं में कुली की भाँति भरती होने में होता है उससे यहाँ किसी प्रकार भी कम नहीं होता। क्या विधवा-विवाह के विषय में यह युक्ति नहीं है?



दसवाँ अध्याय

विधवा-विवाह के विरुद्ध क्षेपों उत्तर

(१) क्या स्वामी दयानन्द विधवा-विवाह के विरुद्ध हैं ?

छि आर्य-समाज के सभासदों को विधवा-पुनर्विवाह के प्रचार में संलग्न देख कर इसके विरोधी यह आक्षेप किया करते हैं कि आर्य-स के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ में विधवा-विवाह के अनेक दोष दिखाए हैं, फिर न जाने क्यों आर्य- के लोग विधवा-विवाह का ढिंढोरा पीटा करते हैं ?

इ उत्तर यह है कि लोगों ने महर्षि दयानन्द के लेखों को ध्यानपूर्वक पढ़ा नहीं। यदि पढ़ते तो ऐसा कदापि न कहते। इसके अतिरिक्त एक बात और है। ऐसे आक्षेप करने वालों को स्वामी दयानन्द या उनके लेखों से कोई सहानुभूति नहीं है; किन्तु केवल छिद्र-दर्शन ही उनका मुख्य प्रयोजन है। यही है कि - विक बात को छोड़ कर व्यर्थ आक्षेप करते हैं। हम श्री० स्वामी जी का लेख सत्यार्थप्रकाश से उद्धृत करते हैं, वह यह है :—

(प्रश्न) स्त्री और पुरुष के बहुत वि होने योग्य हैं या नहीं ?

उत्तर) युगपत् न अर्थात् एक समय में नहीं।

(प्रश्न) क्या समयान्तर में अनेक विवाह होने चाहिए ?

(उत्तर) हाँ, जैसे :—

सा चेदक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्यागतापि वा ।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कार मर्हति ॥

—मनु० अ० ९, श्लो० १७६

स्त्री वा पुरुष का पाणिग्रहण मात्र संस्कार हुआ हो और संयोग न हुआ हो अर्थात् अक्षत-योनि स्त्री और अक्षत वीर्य पुरुष हो उनका, अन्य स्त्री वा पुरुष हो उनका, अन्य स्त्री वा पुरुष के साथ पुनर्विवाह होना चाहिए। किन्तु "ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में क्षत-योनि स्त्री तथा क्षत-वीर्य पुरुष का पुनर्विवाह न होना चाहिए।"

—सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थ समुल्लास

इससे स्पष्ट विदित होता है कि श्री० स्वामी दयानन्द सरस्वती अक्षत-योनि विधवा-विवाह को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी के लिए मानते हैं, परन्तु क्षत-योनि विधवा का विवाह केवल शूद्रों के लिए ही। जो लोग स्वामी दयानन्द के इस वाक्य में से कुछ अंश लेकर शेष को छोड़ देते हैं वह अनर्थ के ी हैं। जो आर्य-सामाजिक पुरुष अक्षत-योनि बाल-विधवाओं के पुनर्विवाह का प्रचार, उद्योग तथा उल्लेख करते हैं वह श्री० स्वामी जी के अभिप्रायों के प्रतिकूल नहीं जाते। इसके अतिरिक्त विधवा-विवाह के विरोधी श्री० स्वामी जी के उपदेशों को उद्धृत करते हुए एक बात और भूल जाते हैं। हमने जो लेख उनका उद्धृत किया है, उसके ठीक आगे स्वामी जी ने एक प्रश्न किया है :—

(प्रश्न) पुनर्विवाह में क्या दोष है?

इसके उत्तर में चार दोष दिखाए हैं। परन्तु यह सब क्षत-योनि विधवा-विवाह और बहुविवाह के सम्बन्ध में द्विजों के विषय में हैं। अक्षत-योनि के विषय में नहीं। अक्षत-योनि के विषय में तो उनकी सम्मति स्पष्ट है, जो ऊपर दी जा चुकी है। इसके अतिरिक्त द्विजातियों में उन्होंने क्षत-योनि विधवा-विवाह के स्थान में नियोग की विधि लिखी है। वह लिखते हैं :—

"जो स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य में स्थित रहना चाहें तो कोई भी उपद्रव नहीं होगा और जो कुल की परम्परा रखने के लिए अपनी स्वजाति का लड़का गोद में लेंगे उससे कुल चलेगा और व्यभिचार भी न होगा और जो ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लें।"

—सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थ समुल्लास

यहाँ उन्होंने तीन कोटियाँ, क्षत-योनि विधवाओं तथा उन क्षत-वीर्य पुरुषों की कर दी हैं, जिनकी स्त्रियाँ मर गई हैं :—

(१) वह जो ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी रह सकती हैं और जिनको सन्तान की भी इच्छा नहीं, ऐसों को तो किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं।

(२) वह जो ब्रह्मचर्य पालन तो कर सकते हैं, परन्तु कुल की परम्परा के लिए सन्तान की इच्छा रखते हैं, ऐसों के लिए गोद रखने की आज्ञा दी।

(३) जो ब्रह्मचर्य भी पालन नहीं कर सकते उनको नियोग की आज्ञा दी।

इसलिए स्वामी दयानन्द के बताए हुए पुनर्विवाह के चार दोषों पर ज़ोर देने का उन लोगों को अधिकार नहीं है जो—

(१) पुरुषों के लिए पुनर्विवाह मानते हैं और स्त्रियों के लिए नहीं। क्योंकि स्वामी जी स्त्री और पुरुष दोनों को विवाह के विषय में समान ही अधिकार देते हैं।

(२) जो पुरुष नियोग को नहीं मानते अथवा उसका प्रचार दूषित समझते हैं।

(३) जो "अष्ट वर्षा भवेद्गौरी" के फेर में पड़े हुए बाल-विवाह की प्रथा को उत्साहित करते हैं।

हमारे विचार में स्वामी जी का बताया हुआ नियोग का नुस्ख़ा सर्वत्र, सर्वकालों और सर्व दशाओं के लिए क्षत-योनि और क्षत-वीर्य पुरुष के पुनर्विवाह से अधिक उपयोगी है। इसमें संशय नहीं। परन्तु जब लोग नियोग जैसी पवित्र प्रथा के प्रचार का साहस न रक्खें तब तक उससे कम लाभदायक पुनर्विवाह के नुस्ख़े में भी लाभ ही लाभ है—हानि नहीं। यदि हम यह मानें कि नियोग के लिए बहुत समय लगेगा और मानव जाति इस समय इसके लिए तैयार नहीं है तो उस समय तक विधवा-विवाह ही जारी कर देना चाहिए। यदि रोग बढ़ रहा हो और सर्वोत्तम औषधि मिलने की सम्भावना न हो तो उससे कम उत्कृष्ट औषधि का ही प्रयोग करना चाहिए। सर्वोत्तम औषधि के में उससे कम उपयोगी औषधि का त्याग कर देना और रोगी को मर जाने देना मूर्खों का ही काम है



बाल-विवाह

यह दुर्बल सन्तान अरे ! वह विधवाओं का हृदयानल !
क्यों न जलाता पाण्डु-वर्ण वाली जनता की मति का मल !!

(२) विधवाएँ, उनके कर्म तथा ईश्वर-इच्छा

दूसरा आक्षेप यह है कि वि ।-विवाह करना ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध कार्य करना है। यदि स्त्री के कर्म में वैधव्य न होता तो वह विधवा क्यों होती? और कर्म की गति को कौन मिटा सकता है।

(उत्तर) यह ठीक है कि उसके कर्मानुसार ही उसे वैधव्य प्राप्त हुआ है। परन्तु इसका यह तात्पर्य तो नहीं कि भविष्य में कार्य ही न किए जायँ, या जो विपत्ति आ पड़ी है । प्रतीकार ही न किया जाय। यदि कोई पुरुष मार्ग में गिर पड़े और उससे कहें कि तू अपने कर्मानुसार गिरा है, यदि तेरे कर्म में गिरना न होता तो तू कदापि न गिरता, अब तुझे उठना नहीं चाहिए, नहीं तो ईश्वर की आज्ञा का विरोध होगा। इससे कितना अनर्थ होगा, यह आप स्वयं जान सकते हैं। क्या गिरे हुए को उठने की कोशिश न करनी चाहिए? इसी प्रकार यदि किसी का मकान गिर पड़े तो क्या उसका फिर बनाना ईश्वर-आज्ञा और कर्म-सिद्धान्त का विरोध करना है? कौन नहीं जानता कि मनुष्य पर अनेक प्रकार की विपत्तियाँ उसके कर्मानुसार आती रहती हैं और उनका प्रतीकार करना ही मनुष्य का कर्त्तव्य है।

फिर सन्तान-रहित स्त्री के लिए गोद रखना तो तुम्हारे मत में भी श्रेय है। यह क्यों? क्या इसमें ईश्वर की आज्ञा का विरोध नहीं होता? वहाँ भी यही युक्ति क्यों नहीं देते कि अमुक पुरुष अपने कर्मानुसार सन्तान-रहित है? यदि उसके कर्म्म अच्छे होते

तो ईश्वर अवश्य देता। यदि गोद रख कर सन्तान वाले बनोगे तो ईश्वर की आज्ञा भङ्ग होगी।

इसके अतिरिक्त तुम्हारी यही युक्ति पुरुषों के पुनर्विवाह में कहाँ जाती है? सहस्रों निस्सन्तान मनुष्य पुनर्विवाह करते हैं और उनके सन्तान होती हैं। तुम उनसे क्यों नहीं कहते कि तुम्हारी स्त्री कर्मों के कारण मर गई, अब फिर दूसरा विवाह करना ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध बात होगी? क्या तमाशा है कि जो युक्तियाँ विधवा-विवाह के विरुद्ध दी जाती हैं, वह रँडुओं के विवाह के सम्बन्ध में बिल्कुल भुला दी जाती हैं! हा अन्याय! हा क्रूरता!!

(३) पुरुषों के दोष स्त्रियों को अनुकरणीय नहीं

तीसरा आक्षेप यह है कि तुम जो रँडुओं के पुनर्विवाह का दृष्टान्त देकर विधवा-विवाह प्रचलित चाहते हो, यह ठीक नहीं। हम मानते हैं कि रँडुओं का विवाह भी वर्जनीय है। यदि एक मनुष्य चोरी करने लगे तो क्या दूसरे को भी चोरी करनी चाहिए। यदि तुम रँडुओं का विवाह बुरा समझते हो तो उसका खण्डन करो। इसके स्थान में विधवा-विवाह का क्यों हो? जो रोग अभी पुरुषों में है, उसका स्त्रियों में भी क्यों प्रवेश करना चाहते हो? यदि मानव जाति का एक भाग ही इन व्यसनों से बचा रहे तो अच्छा ही है।

(उत्तर) तुम्हारा चोरी का यह ठीक नहीं। विधवा-विवाह शास्त्रोक्त है। चोरी के निषिद्ध नहीं। इसके हम पूर्व ही दे चुके हैं। यहाँ प्रश्न अधिकारियों का है। यदि पुरुषों

को पुनर्विवाह करने का अधिकार है तो न्याय-सङ्गत यही है कि स्त्रियों को भी यही अधिकार दिया जाय। याद रखना चाहिए कि स्त्रियों के विवाह-सम्बन्धी नियमों में पुरुष सम्मिलित हैं और पुरुषों के विवाह में स्त्रियाँ। यह तो है ही नहीं कि पुरुष बिना स्त्रियों के विवाह कर सकें और स्त्रियाँ बिना पुरुषों के। जब पुरुष पुनर्विवाह करते हैं तो उसका प्रभाव स्वभावतः स्त्रियों पर भी पड़ता है। स्त्रियाँ उससे बच नहीं सकतीं। इसलिए पुरुष केवल यह कह कर छूट नहीं सकते कि यह हमारी निर्बलता है, इसको क्षमा करो और तुम सबल रहो। यदि पुरुष स्वीकार करते हैं कि पुनर्विवाह करना उनकी निर्बलता है तो मैं पूछता हूँ कि उनको दूसरों की निर्बलता पर आक्षेप करने का अधिकार ही क्या है? जो अपनी आँख का शहतीर नहीं देखता उसका दूसरों की आँख का तिनका देख कर हँसना कितना अनुचित और गर्हित कार्य है? फिर यह कि जो निर्बलता पुरुषों में है, वही स्वाभाविक निर्बलता स्त्रियों में भी है। इसमें उनका कुछ दोष नहीं और इसलिए उनको इसकी उत्तरदात्री ठहराना अन्याय है। स्त्रियों की बहुत सी निर्बलताएँ तो पुरुषों के कारण हैं। वे इससे अपना लाभ समझते हैं। वह नीचे गिरते हुए उनको भी गिरा लेते हैं। तुलसीदास जी ने ठीक कहा है :—

पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे।

वस्तुतः बात यह है कि जब तक पुरुष इन्द्रिय-दमन करना नहीं सीखते, उस समय तक स्त्रियों से यह आशा करनी बिलकुल असम्भव है।

(४) कलियुग और विधवा-विवाह

चौथा आक्षेप—हम मानते हैं कि पहले विधवा-विवाह और नियोग दोनों ही धर्मानुकूल समझे जाते थे ; परन्तु सतयुग, त्रेता, और द्वापर के धर्म को कलियुग में वर्तना असम्भव है। विधवा-विवाह को कलियुग में वर्जित कर दिया गया है। देखो प्रमाण :—

ऊढायाः पुनरुद्वाहं ज्येष्टांशं गोवधं तथा।
कलौ पञ्च न कुर्वीत भ्रातृजायां कमण्डलुम् ॥

—आदि पुराण

आदिपुराण में लिखा है कि विवाहिता का पुनर्विवाह और ज्येष्टांश, गो-वध, भौजाई से सन्तानोत्पत्ति और संन्यास, यह पाँच बातें कलियुग में वर्जित हैं।

(उत्तर) जो लोग यह मानते हैं कि विधवा-विवाह और नियोग पहिले धर्मानुकूल माने जाते थे और कलि में वर्जित हैं उनको कम से कम वेद के उन मन्त्रों के अर्थ बदलने की कोशिश न करनी चाहिए, जिनमें विधवा-विवाह का विधान है। एक तरफ़ विधवा-विवाह-सम्बन्धी वेद तथा स्मृति के प्रमाणों का अर्थ बदलना और दूसरी ओर यह मानना कि यह प्रथा केवल कलियुग में वर्जित है, परस्पर एक-दूसरे के विरुद्ध हैं और प्रकट करती है कि लोगों को सत्य से काम नहीं, किसी न किसी प्रकार विधवा-विवाह का खण्डन करना उनका अभिप्राय है।

प्रथम तो जितने वेद-शास्त्र-सम्बन्धी विषय हैं, वह सब युगों के लिए हैं, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है। परन्तु यह भी मान

लिया जाय कि धर्म भिन्न हैं तो यह ठीक नहीं कि कलियुग में विधवा-विवाह नहीं होना चाहिए। जो प्रमाण तुमने ऊपर दिया है वह तो बड़ा ही विलक्षण है। प्रथम तो इसमें लिखा है कि कलि में गो-बध वर्जित है। इससे मालूम होता है कि किसी समय गो-बध धर्म भी था। परन्तु यह बात नहीं है। वेद और वेदानुकूल शास्त्रों में गाय तो गाय, बकरी तक की हिंसा भी धर्म-विरुद्ध लिखी है। देखो, जिस मनुस्मृति को तुम सतयुग के लिए बताते हो उसमें हिंसा को बुरा बताया है। अध्याय ५ के ५१ वें श्लोक को देखो :—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रय विक्रयी ।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः ।।

अर्थात् अनुमति देने , खण्ड-खण्ड करने वाला, मारने , मोल लेने और वेचने वाला, पकाने , ले आने और खाने वाला—यह सब घातक अर्थात् हत्यारे कहलाते हैं। जब मनु जी ही हिंसा के इतने विरोधी हैं तो वेद जैसी पवित्र पुस्तक में गो-बध जैसी युक्त बात की किस प्रकार विधि हो सकती है। जो प्रमाण ऊपर दिया गया है वह सर्वथा प्रमाद और भूल से युक्त है। जिन मुसलमानों को तुम गो-बध के लिए इतना बुरा कहते हो उसी कार्य को सतयुग में धर्म-विहित कहना कैसी भूल है? यदि मुसलमान या ईसाई तुमसे कहने लगें कि भाई, तुम हमारे गो-बध को क्यों बुरा कहते हो? हम तो सतयुगी पुरुष हैं और वही करते हैं जो तुम्हारे पूर्वज किया करते थे तो क्या तुमको लज्जित न होना पड़ेगा? फिर ऐसे मानने से क्या लाभ?

दूसरी बात जो तुम्हारे प्रमाण में ˆ .ी है, वह यह है कि कलियुग में संन्यास वर्जित है। कहिए साहब, क्या कलियुग में केवल तीन ही आश्रम हैं? और क्या जो लोग आजकल संन्यासी हो रहे हैं, वह सब धर्म-विरुद्ध कार्य कर रहे हैं? क्या स्वामी शङ्कराचार्य आदि संन्यासी जो कलियुग में हुए हैं, अधर्मी थे? या इनको तुम्हारा प्रमाण ज्ञात न था? या तुमने इसे स्वयं गढ़ लिया है? इनमें से एक बात तो तुमको अवश्य ही माननी पड़ेगी।

तीसरी जो पाराशर-स्मृति का प्रमाण हमने दिया है (नष्टे, मृते इत्यादि) वह कलियुग के ही लिए है। पाराशर-स्मृति के आरम्भ को देखो :—

अथातो हिमशैलाग्रे देवदारु वनालये।
व्यासमेकाग्रमासीनमपृच्छन्नृषयः पुरा ॥ १ ॥
मानुषाणां हितं धर्मं वर्त्तमाने कलौयुगे।
शौचाचारं यथावच्च वद सत्यवतीसुत ॥ २ ॥
तच्छ्रुत्वा ऋषिवाक्यं तु सशिष्योऽग्न्यर्कसन्निभः।
प्रत्युवाच महा तेजाः श्रुतिस्मृति विशारदः ॥ ३ ॥
न चाहं सर्वतत्त्वज्ञः कथं धर्मं वदाम्यहम्।
अस्मत्पितैव प्रष्टव्य इति व्यासः सुतोऽवदत् ॥ ४ ॥
कस्मिन्नृषिसभामध्ये शक्तिपुत्रं पराशरम्।
सुखासीनं महातेजा मुनिमुख्यगणावृतम् ॥ ८ ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा व्यासस्तु ऋषिभिः सह।
प्रदक्षिणाभिवादैश्च स्तुतिभिः समपूजयत् ॥ ९ ॥

कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः ॥ २४ ॥
द्वापरे शङ्खलि : कलौ पाराशराः स्मृताः ॥ २५ ॥

अर्थ—हिमालय की चोटी पर देवदारु के वन में एकान्त में बैठे हुए व्यास से पहले में ऋषियों ने पूछा ॥ १ ॥

हे सत्यवती के पुत्र (व्यास) आप मनुष्यों के हित के लिए वर्त्तमान कलियुग में जो धर्म और आचार है उसको कहिए ॥ २ ॥

ऋषियों के इस वाक्य को सुन कर महातेज श्रुति और स्मृति के पण्डित और शिष्यों-सहित अग्नि तथा सूर्य की उपासना में लगे हुए व्यास ने उत्तर दिया ॥ ३ ॥

मैं तो सब तत्वों को नहीं जानता। धर्म कैसे कहूँ ? बेटे व्यास ने यह कहा कि हमारे पिता से पूछना चाहिए ॥ ४ ॥

ऋषियों की उस . के बीच में मुनियों के मुख्य समूह से घिरे हुए, सुख से बैठे हुए शक्ति के पुत्र पराशर जी को - तेजस्वी ॥ ८ ॥

व्यास ने ऋषियों के साथ हाथ जोड़ कर प्रदक्षिणा, अभिवादन तथा स्तुतियों द्वारा पूजा की ॥ ६ ॥

सतयुग में मानव-धर्म-शास्त्र, त्रेता में गौतम-स्मृति ॥ २४ ॥"
द्वापर में शङ्ख और लिखित स्मृतियाँ और कलियुग में पाराशर-स्मृति ीय है ॥ २५ ॥

पाराशर-स्मृति के इन वाक्यों से सिद्ध होता है कि :—

(१) व्यास और पराशर कलियुग में हुए, क्योंकि कलियुग के लिए वर्त्तमान शब्द प्रयुक्त हुआ है (वर्त्तमाने) कलौयुगे।

(२) व्यास ने कलियुग का धर्म बतलाने में अक्षमता प्रकट की।

(३) इसलिए वे सब ऋषि पराशर के पास गए।

(४) कलियुग के लिए पाराशर-स्मृति है।

अब यदि तुम आदि-पुराण को व्यास-कृत कहो और पाराशर-स्मृति को पराशर-कृत तो दोनों के परस्पर विरुद्ध होते हुए किसको मानोगे? तुम्हारे कथनानुसार:—

(१) व्यास जी आदिपुराण में कहते हैं कि विधवा-विवाह कलियुग में वर्जित है।

व्यास जी के पिता पराशर जी शर-स्मृति में कहते हैं कि स्त्री पाँच आपत्तियों में पुनर्विवाह कर सकती है, जिनमें एक आपत्ति विधवा होना है।

अब (१) या तो तुम दोनों (आदि पुराण और शर-स्मृति) को अप्रमाणित कहो। (२) या एक को प्रमाणित और दूसरी को अप्रमाणित। ऐसा कहना सर्वथा मनमाना, युक्ति-रहित और कपोल-कल्पित होगा। (३) या दोनों को सत्य मानो। ऐसी अवस्था में पुत्र की बात से पिता की बात अधिक माननीय है। यह भी नहीं कहा जा स कि पुत्र से पिता मूर्ख था, क्योंकि व्यास जी स्वयं कहते हैं कि मैं सब बातों को नहीं जानता। मेरे पिता पराशर जी से पूछना चाहिए।

महाभारत के प्रमाणों से विदित होता है कि कलियुग में विधवा-विवाह न केवल धर्मानुकूल ही समझा जाता था; किन्तु द्विजों में भी इसका प्रचार था।

अर्जुनस्यात्मजः श्रीमानिर मवीर्य्यवान् ।
सुतायां नागराजस्य जातः पार्थेन धीमता ॥ ७ ॥
ऐरावतेन सा दत्ता ह्यनपत्या महात्मना ।
पत्यौ हते सुपर्णेन कृपणा दीन चेतना ॥ ८ ॥

—महा भीष्म-पर्व अ० ६१

अर्थ—ना की कन्या से अर्जुन का एक न लड़का उत्पन्न हुआ जिसका नाम इरावान था ।

जब सुपर्ण ऐरावत ने उस (नागराज की कन्या) के पति को मार डाला तो उस बुद्धिमान राजा (नागराज) ने अपनी दुखिया कन्या का विवाह अर्जुन के साथ कर दिया ।

(प्रश्न) भला अर्जुन के विवाह से कलियुग में विधवा-विवाह होना किस प्रकार सिद्ध होता है ?

(उत्तर) क्योंकि अर्जुन कलियुग में ही तो हुए हैं । देखो, कल्हण की बनाई हुई राज-तरङ्गिणी की प्रथम तरङ्ग में लिखा है:—

शतेषु षट्सु सार्द्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले ।
कलेर्गतेषु वर्षाणामभवन् कुरुपाण्डवाः ॥

अर्थात्—कलियुग के आरम्भ होने के ६५३ वर्ष पश्चात् कौरव और पा लोग हुए ।

अब तो मानना पड़ेगा कि कलियुग में भी विधवा-विवाह हुए और द्विजों में हुए, न कि शूद्रों में, क्योंकि अर्जुन क्षत्रिय थे । और ी सन्तान उचित न (जायज़) मानी गई, क्योंकि इरावान को कोई हरामी बेटा नहीं बता सकता !

(५) क ान-विषयक

पाँचवाँ आक्षेप—प्रायः यह आक्षेप किया जाता है कि जब पिता एक वार अपनी कन्या का दान कर चुका तो दी हुई वस्तु पर फिर उसका अधिकार नहीं रहता। फिर वह उसी दी हुई । का कन्यादान कैसे कर है? विधवा-विवाह के विरोधियों के विचार से यह एक ऐसा आक्षेप है, जिसका कोई उत्तर दे ही नहीं । परन्तु यह उनकी सर्वथा भूल है।

जो पुरुष यह मानते हैं कि सतयुग, त्रेता आदि में विधवा-विवाह धर्मोक्त था अब निन्दनीय है उनको तो यह आक्षेप उठाना भी नहीं चाहिए। क्योंकि उनके लिए तो केवल इतना ही उत्तर पर्याप्त है कि जिस प्रकार सतयुग आदि में विधवाओं के पिता ी विधवा कन्याओं के विवाह किया करते थे, उसी प्रकार अब भी करेंगे। या जिस ने ी कन्या का पुनर्विवाह अर्जुन के साथ किया होगा उसी प्रकार अब भी होना चाहिए। परन्तु इसके अतिरिक्त कई मुख्य बातें हैं, जिनकी मीमांसा यक है।

हम स्त्री-अधिकार-विषयक अध्याय में भली प्रकार दिखला चुके हैं कि स्त्री-पुरुष के अधिकार स हैं। स्त्री भेड़-बकरी की भाँति पति या पिता की जायदाद या सम्पत्ति नहीं है। वह स्वयं एक स्वतन्त्र व्यक्ति है। प्रायः हम देखते हैं कि यदि किसी मनुष्य के पास भेड़, बकरी, भूमि, स्वर्ण आदि सम्पत्ति हो तो वह उसे:—

(१) अपने प्रयोग में ला सकता है।

(२) दूसरों को बेच है।

(३) दान दे सकता है।

(४) वह मोल या दान लेने वाला पुरुष स्वयं अपने उपयोग में ला है या दूसरों को मोल या दान दे स है।

(५) वह अपने इष्ट-मित्रों सहित सदैव या न्तर में उसे भोग है।

(६) प्रत्येक पुरुष, जो ऐसी सम्पत्ति का स्वामी है, अपनी इच्छानुसार जिस पुरुष को चाहे उसे दे है। इसमें किसी विशेष पुरुष, समय या देश की क़ैद नहीं है।

अब देखना चाहिए कि स्त्रियाँ उपर्युक्त अंशों में पिता या पति की सम्पत्ति हैं या नहीं। प्रथम पहली दशा को लीजिए। प्रत्येक ी ी वस्तु को अपने प्रयोग में ला । है। इस अर्थ में क्या पिता की सम्पत्ति है और उस पर । स्वत्व है? क्या कोई पिता ी कन्या को भोग सकता है? यह एक ऐसी बात है जिसके लिए प्र देना व्यर्थ है। सभी जानते हैं कि असभ्य जातियों में भी इससे घोर ध या अधर्म दूसरा नहीं। इससे स्पष्ट विदित है कि कन्या अपने पिता की सम्पत्ति नहीं है और न उस पर उसका स्वत्व है।

अब दूसरी बात; अर्थात् क्या पिता अपनी पुत्री को बेच सकता है? यद्यपि किसी-किसी जाति में पुत्रियाँ बेच दी जाती हैं और भारतवर्ष में भी कहीं-कहीं रिवाज है; परन्तु यह एक महा अधम प्रथा है, जिसको करते हुए पिता भी लज्जित हुआ करते हैं। कन्याओं का बेचना बड़ा य जाता है।

फिर क्या पिता उसे दान कर सकता है ? इस बात का हम सबसे पीछे निराकरण करेंगे।

चौथी बात ; अर्थात् साधारण सम्पत्ति के लिए नियम है कि यदि देवदत्त यज्ञदत्त से कोई वस्तु मोल या दान ले तो उसका पूरा अधिकार है कि वह उसे भोगे या दूसरे को दान या विक्रय कर दे। परन्तु विधवा-विवाह के महाशत्रु भी यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं कि यदि देवदत्त को यज्ञदत्त अपनी कन्या दान दे तो वह उसे किसी अन्य व्यक्ति को बेच या दान दे सकता है।

इसी प्रकार पाँचवीं बात रही। जैसे यदि मैं कोई मोल या दान में लूँ तो मुझे पूर्ण अधिकार है कि मैं स्वयं रहूँ या अन्य इष्ट-मित्रों सहित उसको उपयोग में लाऊँ। इसी प्रकार भूमि, फल, अन्न, घृतादि का हाल है। परन्तु जो पुरुष किसी कन्या को उसके पिता से दान लेता है, उसे यह अधिकार नहीं है कि वह अपने इष्ट-मित्रों सहित उसका भोग कर सके।

इसके अतिरिक्त जिस प्रकार स्वामी को अपनी सम्पत्ति ी पुरुष को, किसी स्थान या में बेचने या दान देने का -कार है उसी प्रकार पिता कन्या को चाहे किसी पुरुष को नहीं दे सकता। उसके लिए विशेष नियम है। अर्थात् ब्राह्मण अपनी कन्या को केवल ब्राह्मण को ही विवाह सकता है; क्षत्रिय, क्षत्रिय या ब्राह्मण को; वैश्य, वैश्य, क्षत्रिय या ब्राह्मण को और शूद्र सबको। इसके सिवा अ तो नियम यह है कि ी ही जाति या वर्ण में कन्या दी जाती है भिन्न वर्णों में नहीं।

इसके अतिरिक्त किसी सम्पत्ति के बेचने या दान देने का अधिकार केवल उसके स्वामी को ही होता है, अन्य को नहीं। परन्तु कन्या को देने का अधिकार अन्य को भी है, जैसे लिखा है :—

पिता दद्यात् स्वयं कन्यां भ्राता वानुमतः पितुः ।
मातामहो मातुलश्च सकुल्यो बान्धवास्तथा ॥
मातात्वभावे सर्वेषां तौ यदि वर्त्तते ।
तस्यामप्रकृति ां कन्यां दद्युः सजातयः ॥

—नारद- (उद्वाहतन्त्र)

अर्थात्—कन्या को पिता या तो स्वयं देवे या पिता की से भाई या नाना या या कुल के बान्धव। यदि यह कोई न हों और माता जीती हो तो और यदि भी न हो तो वाले देवें।

इन सब बातों से स्प सिद्ध होता है कि कन्या अन्य वस्तुओं के समान सम्पत्ति नहीं है और उसको उसी अर्थ में दान देने का अधिकार किसी को नहीं है।

परन्तु अब प्रश्न यह होता है कि हम संसार में ' दान' 'कन्यादान' सुनते आते हैं। क्या यह सब झूठ है? विवाह पद्धतियों में जो कन्यादान की विधि दी गई है, वह कैसे हो सकती है? क्या पिता को कन्यादान नहीं करना चाहिए? हमारे यहाँ तो कन्यादान का इतना पुण्य माना गया है कि जिस पुरुष के कन्या नहीं होती वह दूसरे की कन्या का कन्यादान कर देते हैं।

परन्तु बात यह है कि यहाँ 'दान' का अर्थ ही दूसरा है।

'दान' संस्कृत के 'दा' धातु से नि है, जिसका अर्थ 'देना' है। यहाँ 'ख़ैरात' से तात्पर्य नहीं। 'दा' और 'दान' का यह न्य अर्थ हमको कई शब्दों में मिलता है; जैसे जहाँ यह लिखा है कि पति स्त्री को वीर्यदान करे वहाँ 'दान' का अर्थ 'ख़ैरात' नहीं है। किन्तु सामान्य अर्थ 'देना' है। 'दान' शब्द भाषा में कुछ विचित्र सा मालूम पड़ता है, परन्तु संस्कृत में यह सामान्य अर्थ का सूचक है। इसी प्रकार 'दद्यात्' 'दद्युः' इत्यादि शब्दों में ख़ैरात का कुछ भी भाव नहीं है। विवाह-संस्कार वस्तुतः पाणिग्रहण-संस्कार है, जिसमें स्त्री-पुरुष एक-दूसरे का हाथ पकड़ते हैं; परन्तु उसका यह तात्पर्य नहीं कि पुरुष स्त्री को ख़ैरात में लेता है या उसका उस पर उसी प्रकार स्वत्व हो जाता है जैसे गाय, बैल या बकरी पर। पति न उसको बेच है न और किसी को दे है, किन्तु गृहस्थाश्रम का धर्म पालने के लिए स्त्री की अनुमति लेना भी कर्त्तव्य है। विवाह में कन्यादान केवल सामान्य अर्थ में आया है; अर्थात् जब कन्या अपने पति को वर लेती है अर्थात् स्वीकार कर लेती है तो पिता कहता है कि अब तक इसके न-पोषण का भार मेरे था, अब मैं इसको तुम्हें देता हूँ। तुम इसका पालन-पोषण करना, इत्यादि। कन्यादान के इस सामान्य अर्थ को विशेष अर्थ में उस ले लिया जब भार अपनी प्राचीन सभ्यता से गिर गया और स्त्रियाँ भोग या सम्पत्ति में गिनी जाने । उसी लोग उनको बेचने तथा मोल लेने लगे और इन पर अत्याचार भी होने लगा। र्ष के कई धनी पुरुष, जिनमें बुद्धि की मात्रा

केवल नाम-मात्र है, कन्यादान के अतिरिक्त स्त्री-दान भी करते हैं। यह इस प्रकार होता है कि पहले तो स्त्री को वस्त्राभूषण आदि से सुसज्जित करके पुरोहित को दान कर देते हैं; फिर पुरोहित - भूषण आदि तो ले लेता है और उस स्त्री को उसके पूर्व पति के हाथ बेच देता है। इस प्रकार की प्रथाएँ अर्द्ध सभ्यता की चिन्ह-स्वरूपा और स्त्री-जाति के लिए बड़ी अपमान-सूचक हैं।

यदि कन्यादान का अर्थ ख़ैरात होता तो समस्त संसार की कन्याएँ केवल ब्राह्मणों को ही दान दी जाया करतीं और ब्राह्मणों से इतर जातियों के पुरुष कुँआरे ही रह जाते, क्योंकि सिवाय ब्राह्मणों के और किसी को दान लेने का अधिकार नहीं है। जहाँ मन्वादि स्मृतियों में चारों वर्णों के कर्त्तव्य दिखाए हैं वहाँ ब्राह्मणों को छोड़ कर और किसी वर्ण को दान लेने की विधि ही नहीं दी है। परन्तु हम देखते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी कन्यादान लेते हैं। इससे सिद्ध है कि 'कन्यादान' पद में 'दान' शब्द केवल इसके सामान्य अर्थ 'देने' में आया है।

जब यह सिद्ध हो गया कि कन्यदान का अर्थ कन्या का ख़ैरात में देना नहीं है तो यह प्रश्न उठ ही नहीं कि विधवा कन्या के पुनर्दान करने का पिता को अधिकार नहीं है। देखो, हमने ऊपर जो प्रमाण नागराज की कन्या और अर्जुन के साथ पुनर्विवाह होने का दिया है उसमें 'दत्ता' शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिससे सिद्ध होता है कि पूर्व-काल में भी क्षत्रिय राजे अपने दामाद की मृत्यु पर अपनी विधवा लड़की का किसी अन्य पुरुष के साथ पुनः दान कर दिया करते थे।

यह तो कहा जाता है कि किसी चीज़ को एक वार देकर लेना नहीं चाहिए। यह आक्षेप भी विधवा-विवाह पर लागू नहीं होता। जिसको कन्या दी गई थी वह मर गया, अब कन्या विधवा (धवरहिता) अर्थात् अकेली है। यदि वह विना पति के नहीं रह सकती तो उसे दूसरे पति को दे दो। यह वापस लेने की बात तो है नहीं। यदि तुम किसी ब्राह्मण को गाय दो और वह ब्राह्मण मर जाय या भाग जाय और गाय अकेली खड़ी रह जाय तो तुम्हारा क्या धर्म है? क्या तुम उसको वहीं शेर और भेड़ियों के लिए छोड़ जाओगे, जैसा कि आजकल विधवा कन्याओं के पिता उनको दुष्टाचारियों के लिए छोड़ बैठते हैं। विधवा-विवाह में कन्या वापस नहीं ली जाती। किन्तु पिता उसे अकेली समझ कर दूसरे को देता है। इसलिए विधवा कन्या के फिर दान करने में कोई दोष नहीं। हम पहले कह चुके हैं कि कन्यादान कन्या की ख़ैरात नहीं है, क्योंकि कन्या पशुओं या निर्जीव पदार्थों की भाँति सम्पत्ति की कोटि में नहीं आ सकती।

(६) गोत्र-विषयक प्रश्न

कन्यादान के विषय में एक प्रश्न शेष रह जाता है, अर्थात् कन्यादान करते समय पुनर्विवाह में पिता किस गोत्र का उच्चारण करे; क्योंकि विवाह-पद्धति में लिखा है :—

ओं अमुकगोत्रोत्पन्नामिमाममुकनाम्नीमलंकृतां कन्यां प्रति गृह्णातु भवान्।

अर्थात्—अमुक गोत्र में उत्पन्न हुई अमुक नाम वाली इस

अलंकृत कन्या को आप ग्रहण करें। यहाँ स्पष्ट है कि विवाह होने से किसी कन्या का "वह गोत्र जिसमें वह उत्पन्न हुई है" बदल नहीं सकता। यहाँ शब्द 'अमुक गोत्राम्' नहीं है; किन्तु 'अमुक गोत्रोत्पन्नाम्' है। वृद्धवशिष्ठ-संहिता के चतुर्थ अध्याय में इसी विषय का निम्न श्लोक है:—

अमुष्य पौत्रीममुष्य पुत्रीममुष्यगोत्रजाम्।
इमां कन्यां वरायास्मै वयं कद्विवृणीमहे॥

अर्थात्—अमुक पुरुष की पौत्री, अमुक की पुत्री, क गोत्र में हुई को इस वर के लिए हम देते हैं।

यहाँ भी 'अमुक गोत्रजाम्' 'अमुक गोत्र में हुई' शब्द है। जिस गोत्र में एक स्त्री हुई है उसी गोत्र की उत्पन्न हुई वह आयु भर कहलाएगी। कोई यह नहीं कह कि "वह पति के गोत्र में उत्पन्न हुई है।" "जन्म-गोत्र" केवल अगले जन्म में बदल सकता है, इस जन्म में नहीं।

यदि विचार किया जाय तो पता चलता है कि विवाह के गोत्र का उल्लेख केवल इसलिए किया है कि विवाह पिता के गोत्र और माता की छः पीढ़ियों में वर्जित है। अर्थात् जिस गोत्र में कन्या उत्पन्न हुई है उसी गोत्र में उत्पन्न हुए पुरुष से जो ी के गोत्र की छः पीढ़ियों में हो, विवाह नहीं हो ।। डॉक्टरी से भी यह बात सिद्ध है कि उसी कुल में विवाह करने वाले स्त्री-पुरुषों की सन्तान रोगी होती है। इस बात का पता भारतवर्ष में बहुत कम लगता है, क्योंकि यहाँ कुल में विवाह करने की प्रथा है ही नहीं। परन्तु इसका अधिक

अनुभव यूरोप में होता है, जहाँ विशेषकर चचेरे भाई-बहिन में विवाह होने की प्रथा है। डॉक्टर मीमिस साहेब का है :—

३४ विवाह ख़ून के रिश्तेदारों में हुए, तो बाँझ रहीं और २७ के घर सन्तान हुई। २७ विवाहों से उत्पन्न हुए बच्चों की १९१ थी। १९१ बच्चों में से ४७ तो के में ही मर गए और इनमें से २४ की मृत्यु के निम्न-लिखित थे। शेष के रोगों का पता नहीं।

क्षय रोग से	१५	
मिरगी से	८	=२४
से	१	

शेष संख्या में केवल ४६ स्वस्थ थे, २२ दुर्बल पाए गए, १ के स्वास्थ्य का नहीं और ४७ प्रकार रोगी थे :—

दमे से	१९	
मिरगी से	४	
उन्माद से	२	
गूँगे	२	
मर्द	४	=४७
अन्धे	२	
लुञ्जे	२	
कोढ़ी	५	
कम दृष्टि वाले	६	
अति दुर्बल	१	

— -कृत विवाह-आदर्श, पृष्ठ ११८

इन्हीं महाशय ने अन्यत्र भी अन्वेषण किया है। इसके अतिरिक्त अन्य महानुभाव भी इसी परि पर पहुँचे हैं। इससे होता है कि हमारे ऋषि-मुनियों ने जो यह नियम था कि स्त्री उसी कुल या माता की छः पीढ़ियों की न हो, वह सर्वथा धर्म तथा विज्ञान के अनुकूल था और इसीलिए उन्होंने विवाह-संस्कार में गोत्र का नाम लेने की प्रथा डाली थी, जिससे बात स्पष्ट हो जाय।

जहाँ प्रसिद्ध ऋषियों के नाम पर गोत्रों की गणना की है वहाँ लिखा है:—

विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजो गोतमः अत्रिर्वशिष्ठः।
काश्यपइत्येते सप्तर्षयः सप्तर्षीणामगस्त्या ं
यदपत्यं तद्गोत्रमित्याचक्षते।

—पराशर- , उद्धृत बौधायन-वचन

:—

जमदग्निर्भरद्वाजो विश्वामित्रोत्रिगोतमाः।
वशिष्ठकाश्यपागस्त्या मुनयो गोत्रकारिणः।
एतेषां यान्यपत्यानि तानि गोत्राणि मन्यते॥

—पराशर-भाष्य, उद्वाहतन्त्रोद्धृत-स्मृति

यहाँ स्पष्ट बताया है कि जिन ऋषियों के अर्थात् सन्तान हैं उसी का नाम गोत्र है।

बहुत से लोगों का है कि स्त्री विवाह के पश्चात् पति के गोत्र में हो जाती है। परन्तु यह उनकी भूल है। वह गोत्र का

अर्थ 'गृह' लेते हैं। यदि गोत्र का अर्थ 'गृह' लिया जाय तो ठीक है कि विवाह के पश्चात् स्त्री पति के घर की हो जाती है। परन्तु यदि गोत्र का अर्थ वह लिया जो ऊपर के श्लोकों में दिया हुआ है, अर्थात् किसकी सन्तान है या किस कुल में उत्पन्न हुई है तो स्त्री का गोत्र विवाह के पश्चात् की तो बात दूर रही, मरते तक नहीं बदल सकता। क्या किसी स्त्री के पिता, पितामह, प्रपितामह उसके विवाह के कारण बदल सकते हैं? अतः यह शङ्का करना कि पुनर्विवाह के समय कौन सा गोत्र बोला जाय व्यर्थ और असङ्गत है; क्योंकि उस भी पहिले विवाह की भाँति पिता का ही गोत्र उच्चरित होगा।

यहाँ हम एक और युक्ति देते हैं। हम चुके हैं कि विवाह के लिए यह नियम है कि के गोत्र की छः पीढ़ियाँ और पिता का गोत्र सर्वथा है। अब यदि स्त्री के विवाह के उपरान्त गोत्र बदल गया होता और अपने पति का ही गोत्र हो तो के गोत्र की छः पीढ़ी बचाने का नियम व्यर्थ था; क्योंकि उसका वही गोत्र होता है जो पिता अर्थात् ा के पति का। उससे भी है कि विवाह के पश्चात् स्त्री का गोत्र बदला नहीं।

जो लोग मृतक-श्राद्ध को मानते हैं, ो श्राद्ध-तर्पण आदि करने में गोत्र का करना पड़ता है। परन्तु उन्होंने भी यह नियम कर दिया है:—

संस्कृतायान्तु भार्यायां सपिण्डीकरणान्तिकम्।
पैतृकं भजते गोत्रमूर्ध्वन्तु पतिपैतृकम्॥

—उद्वाह·

अर्थात्—विवाहिता स्त्री का सपिण्डी कर्म होने तक पिता का ही गोत्र रहता है। तत्पश्चात् पति का गोत्र हो है। यहाँ वंश अर्थात् गोत्र से तात्पर्य नहीं है; किन्तु प्रश्न यह था कि मृत-स्त्री का पिण्डदान आदि कौन करे और इस कार्य के लिए वह किस गोत्र में गिनी जाय। यहाँ यह नियम कर दिया कि पति के गोत्र में गिनी जाय अर्थात् उन लोगों का, जो पति के गोत्र में हैं, कर्त्तव्य होगा कि वह श्राद्ध-तर्पण आदि करें। जो लोग मृतक-श्राद्ध के उद्देश और विवाह के उद्देश में भेद कर सकते हैं वह भली प्रकार जानते हैं कि 'गोत्र' शब्द विवाह में उसी अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता जिसमें श्राद्ध में। कल्पना कीजिए कि किसी स्त्री के पालन-पोषण आदि का प्रश्न उठा कि किस गोत्र अर्थात् कुल के लोगों का कर्त्तव्य है कि उसे खाना दे; तो यह या सिद्ध है कि पिता के कुल वालों पर उसका कोई अधिकार नहीं। पति के कुल वाले अर्थात् पति के भाई-बन्धु ही उसको गुज़ारा देंगे अर्थात् वह पति के कुल में ही गिनी जायगी। परन्तु यह पूछा जाय कि यह स्त्री कौन 'गोत्रोत्पन्न' है अर्थात् उसका पिता कौन है तो कौन मूर्ख यह उत्तर देगा कि अपने पति के गोत्र में उत्पन्न हुई है? इसी प्रकार :—

स्वगोत्राद् भ्रश्यते नारी विवाहात् सप्तमे पदे।
पति गोत्रेण कर्त्तव्या तस्याः पिण्डोदकक्रिया ॥

—उद्वाह तन्त्रोद्धृत हारीत-वचन

पाणिग्रहणिका मन्त्राः पितृगोत्रापहारकाः।
भर्त्तुर्गोत्रेण नारीणां देयं पिण्डोदकं ततः ॥

—उद्वाह तन्त्रोद्धृत बृहस्पति-वचन

इन श्लोकों का अर्थ यह है कि विवाह के उपरान्त स्त्री अपने पिता के गोत्र से गिर जाती है, इसलिए उसकी पिण्डोदक क्रिया (अर्थात् पिण्ड = भोजन, उदक = पानी), खाना-पीना पति के गोत्र वालों को ही करना चाहिए। यहाँ केवल इतना ही कथन है कि जब स्त्री विवाहिता हो गई तो पति के घर में आ गई; इसलिए उसी घर के लोगों को पालन-पोषण करना चाहिए। उसको कोई अधिकार नहीं कि पिता के घर वालों से खाना-पीना माँगे।

(७) कन्यात्व नष्ट होने पर विवाह वर्जित है

विधवा-विवाह के विरुद्ध एक आक्षेप यह भी किया है कि लड़की की उसी समय तक 'कन्या' संज्ञा रहती है, जब तक उसका विवाह नहीं होता। जब एक बार विवाह हो गया तो फिर उसको कन्या नहीं कह सकते। और विवाह चूँकि केवल कन्या का ही हो सकता है, अतः पुनर्विवाह का निषेध सिद्ध है। यह युक्ति इस प्रकार दी जाती है :—

(१) विवाह-संस्कार केवल कन्या का हो है।

(२) विधवा की कन्या संज्ञा नहीं।

(३) अतः विधवा का विवाह-संस्कार निषिद्ध है।

यहाँ इतने प्रश्न विचारणीय हैं :—

(१) 'कन्या' शब्द का क्या अर्थ है ?

(२) क्या 'कन्या' शब्द किसी अन्य अर्थ में भी कभी प्रयुक्त होता है ?

(३) क्या 'विवाह-संस्कार' विषयक स्थलों पर ' ' शब्द इसी योगरूढ़ि अर्थ में प्रयुक्त । है अथवा साधारणतया ?

(४) क्या विवाह-संस्कार के सम्बन्ध में ' ' से इतर अन्य शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं ?

(५) विवाह-संस्कार के उद्देश का केवल 'शब्द' पर कैसे हो है ?

हम पहले ' ' शब्द के अर्थ पर विचार करते हैं। यह शब्द वस्तुतः भिन्न-भिन्न स्थलों पर भिन्न-भिन्न अर्थों में आया है।

उस लड़की को 'कन्या' कहते हैं, जिसका न विवाह हुआ हो और न वह क्षत-योनि हो।

दूसरे उस लड़की को भी 'कन्या' कहते हैं, जिसका विवाह न हुआ हो, परन्तु बिना विवाह के ही पुरुष के साथ सङ्गम हो गया हो। इस विशेष अर्थ में 'कन्या' शब्द का प्रयोग पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी के—

कन्यायाः कनीन च । ४ । १ । ११६

सूत्र में किया है। इस पर काशिका में वि है :—

'स्कृतविवाहकर्मिकैव कन्या कन्यात्वेन गृह्यते। तेन ततःप्राक्परोपभुक्तापि तत्वन्न जहाति नापि विप्रतिषिद्धवेति।

अर्थात्—जिसका विवाह-संस्कार नहीं हुआ उसको कन्या कहते हैं और उससे पहले पर-पुरुष से भोगी जाकर भी वह अपने कन्यात्व को नहीं छोड़ती और न इसमें विप्रतिषेध है।

महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि ने भी इस पर प्रश्न उठाया है :—

इदं विप्रतिषिद्धम्। कोविप्रतिषेधः। अपत्यमिति वर्त्तते।

यदि च कन्या नापत्यम्। अथापत्यं न कन्या। कन्या चापत्यं चेति विप्रतिषिद्धम्। नैतद्विप्रतिषिद्धम् कथम्। कन्या शब्दोऽयं पुंसाभिसम्बन्धपूर्वके सम्प्रयोगे निवर्त्तते। या चेदानीं प्रागभिसम्बन्धात् पुंसा सह संप्रयोगं गच्छति तस्यां कन्या शब्दो वर्त्तत एव। कन्यायाः कन्योक्तायाः कन्याभिमतायाः सुदर्शनायाः यदपत्यं सकनीन इति। अ० ४। पा० १। आ० ४

इसी पर भाष्य-प्रदीप में महोदय लिखते हैं :—

शास्त्रोक्तो विवाहोऽभिसम्बन्धस्तत्पूर्वके पुरुषसंयोगे कन्या शब्दो निवर्त्तते। या तु शास्त्रोक्तेन विवाहसंस्कारेण विना पुरुषं युनक्ति सा कन्यात्वं न जहाति।

इन सबका तात्पर्य यह है कि शास्त्रोक्त विवाह से पुरुष-सङ्ग होने पर कन्यात्व छूटता है और बिना विवाह के पुरुष-सङ्ग से कन्यात्व नहीं छूटता। इन से तीन बातें हैं :—

१—जो लड़की विवाहित है, परन्तु-क्षत योनि नहीं वह ' ' है, क्योंकि पतञ्जलि मुनि कहते हैं कि, "कन्या शब्दोऽयं पुंसाभिसम्बन्धपूर्वके संप्रयोगे निवर्त्तते" अर्थात् पुरुष का संयोग होने पर 'कन्यात्व' छूटता है, पहले नहीं।

२—अविवाहिता स्त्री पुरुष-संयोग होते हुए भी 'कन्या' है जिसके लिए पतञ्जलि मुनि कि हैं :—

"या चेदानीं प्रागभिसम्बन्धात् पुंसा सह संप्रयोगं गच्छति तस्यां कन्या शब्दो वर्त्तत एव।"

३—जो विवाहिता और क्षत-योनि हो वह कन्या नहीं।

'कन्या' का तीसरा अर्थ या स्त्री भी है। श्रीवामन शिवराम आप्टे जी अपने संस्कृत-अङ्गरेज़ी कोष में ' ' शब्द के कई अर्थ देते हैं :—

(१) An unmarried girl or daughter, एक अविवाहिता लड़की या पुत्री।

(२) A girl ten years old, दस वर्ष की वाली लड़की।

(३) A virgin. maiden, -योनि या अविवाहिता।

(४) A woman in general, एक साधारण स्त्री।

साधारण स्त्री के अर्थ में कन्या शब्द मनुस्मृति, अ० १० के ११ वें श्लोक में भी आया है :—

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः।

इस पर कुल्लूक भट्ट लिखते हैं :—

विवाहासम्भवात्कन्याग्रहणंस्त्रीमात्रप्रदर्शनार्थम्।

अर्थात्—यहाँ विवाह भव होने के कारण 'कन्या' शब्द 'स्त्री-मात्र' के लिए आया है।

गणरत्न-महोदधि में पण्डित वर्धमान कवि लिखते हैं :—

कनति शोभते वपुषा कन्या।

अर्थात्—शरीर से शोभायमान होने से कन्या कहलाती है।

कनन्ति गच्छन्ति तस्यां रागिमनोनयनानीति कन्या कुमारी।

—नाम गणाध्याय १, श्लो० ३८

या ` में रागी पुरुष का मन और आँखें " (आकर्षित हों) वह कन्या या कुमारी है।

उणादि कोष में स्वामी दयानन्द लिखते हैं :—

कन्यते दीप्यते काम्यते गच्छति वा सा कन्या कुमारी वा।

—पाद ४, सूत्र ११२

अर्थात्—जो शोभायमान होती या कामना की जाती है उसे कन्या या कुमारी भी कहते हैं।

' ।' शब्द विवाहित लड़की के लिए भी । है; जैसे—

ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायाम्बष्ठोनामजायते।

—मनुस्मृति अ० १०, श्लोक ८

इसे कुल्लूक भट्ट और स्पष्ट करते हैं :—

कन्याग्रहणादत्रोढायामित्यध्याहार्यम्।

कन्या शब्द से यहाँ विवाहिता कन्या समझनी चाहिए।

साधारण पुत्री के अर्थ में भी कन्या शब्द आता है, चाहे वह विवाहित हो या अविवाहित ; जैसे :—

अनुज वधू भगिनी सुत नारी।
सुन शठ ये कन्या सम चारी॥

अर्थात्—अनुज-वधू, भगिनी और पुत्र-वधू के हैं। अर्थात् अगम्य हैं, जिस प्रकार कन्या अर्थात् पुत्री। यहाँ विवाहिता और अविवाहिता दोनों से ही तात्पर्य है। ी पुत्री विवाहिता और क्षत-योनि भी अगम्य ही है।

हमारा कहना यह है कि विवाह-संस्कार में जहाँ कन्या शब्द

है, वहाँ सा पुत्री के अर्थ में है। वहाँ पहले विवाहिता या अविवाहिता विशेषण लगाना अन्याय है। जो लोग 'कन्यात्व' और 'विवाह- र के अधिकार' को एक-दूसरे से सम्बद्ध करते हैं, वह ी ही युक्ति को काटते हैं; क्योंकि हम ऊपर दिखा चुके हैं कि 'कन्या' शब्द सभी अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। कहीं-कहीं तो 'कन्या' शब्द विवाहित और क्षत-योनि के लिए भी है; जैसे :—

अहल्या द्रौपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा।
पञ्चकन्याः स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्॥

अर्थात्—अहल्या, द्रौपदी, तारा, कुन्ती और मन्दोदरी इन पाँच कन्याओं का सर्वदा स्मरण करे, जो महापातक का नाश करने है।

यहाँ ये पाँचों स्त्रियाँ विवाहित तथा क्षत-योनि दोनों थीं तो भी इनके लिए 'कन्या' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

यदि तुम 'कन्या' शब्द को केवल उसी अर्थ में लोगे, जिसमें पाणिनि के सूत्र (कन्यायाः कनीन च) में प्रयुक्त हुआ है और इसी प्रकार की कन्या को विवाह का अधिकार दोगे तो बड़ा अनर्थ होगा; क्योंकि "वेश्याएँ" "बिना विवाह पुरुष-संयोग" के एँ हुईं और उनको विवाह का अधिकार! परन्तु बाल-विधवा अक्षत-योनि धार्मिका लड़की को विवाह का अधिकार नहीं। कहो कैसा अन्धेर है!

वस्तुतः विवाह के मन्त्रों में 'कन्या' से इतर 'नारी', 'सूर्या' आदि शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

यदि -विधवाओं को संस्कार का निषेध होता तो वशिष्ठ, मनु आदि अपनी स्मृतियों में "पुनः संस्कारमर्हति" "फिर ार के योग्य है" ऐसा न लिखते। क्या उन लोगों को यह आक्षेप नहीं सूझता था? एक शब्द पर समस्त विवाह के गम्भीर प्रश्न को निर्भर कर देना और विवाह के उद्देश, अधिकार, कर्त्तव्य, सब पर पानी फेर देना न्याय-विरुद्ध है?

पाणिनि मुनि के जिस सूत्र पर इतना झगड़ा मचाया गया है, वहाँ 'कन्या' शब्द विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है; क्योंकि वहाँ 'कानीन' शब्द सिद्ध करना था। यदि उस सूत्र में 'कन्या' शब्द को साधारण (स्त्री-मात्र) अर्थ में लेते तो प्रत्येक पुरुष कानीन होता; अतः वहाँ ा शब्द को विशिष्ट कर दिया। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि कन्या शब्द अन्य स्थलों में भी इसी अर्थ में आता है। हम इसका अपवाद कई प्रमाणों द्वारा ऊपर दे चुके हैं।

(८) बाल-विवाह को रोकना चाहिए न कि विधवा-विवाह की प्रथा चलाना

कुछ लोगों का विचार है कि विधवा-विवाह की आवश्यकता केवल इसलिए पड़ती है कि भारतवर्ष में बाल-विवाह की प्रथा है। यदि बाल-विवाह रोक दिए जायँ तो विधवाएँ होंगी ही नहीं। फिर विधवा-विवाह की क्या आवश्यकता होगी? अतः लोगों को चाहिए कि जो समय विधवा-विवाह के प्रचार में लगाते हैं वह बाल-विवाह के रोकने में व्यय करें।

(उत्तर) यह अधिकांश में ठीक है कि विधवाओं की इतनी

संख्या केवल बाल-विवाह के कारण हुई है। परन्तु सर्वांश में यह ठीक नहीं ; क्योंकि कभी-कभी दैव-वशात् ऐसा भी हो जाता है कि पूर्ण युवा अवस्था में विवाह हुआ है और स्त्री विधवा हो गई। यद्यपि बाल्यावस्था में मृत्यु अधिक होती है, तथापि ऐसा नियम नहीं है कि युवा पुरुष मरें ही नहीं। इसलिए बाल-विवाह के रोकने से यद्यपि विध ‍ की संख्या बहुत न्यून होगी, तथापि सौ में एक का होना ‍ है। इसलिए विधवा-विवाह की आवश ‍ सर्वांश में दूर होना ‍ भव ही है।

फिर दूसरी बात यह है कि बाल-विवाह का रोकना तो अच्छा है। परन्तु इतने वर्षों के बाल-विवाह के कारण जो करोड़ों विधवाएँ इस देश में दुख उठा रही हैं, उनके लिए क्या उपाय है? भविष्य में बाल-विवाह के रुक जाने से वर्त्तमान विधवाओं का दुख कैसे दूर हो सकेगा?

किसी हैज़े के रोगी से यह कहना कि ‍ ति से रहा करो, ठीक नहीं है। परहेज़ से रहना उन लोगों के लिए उपयोगी है जो अभी रोग-ग्रसित नहीं हैं। किन्तु जो रोगी है उसको तो औषधि देनी ही होगी। यदि बाल-विवाह के अभाव से भविष्य में विधवाएँ कम होंगी तो जो हो गई हैं उनकी औषधि विधवा-विवाह ही है।*

* स्वास्थ्य के दो विभाग हैं, एक सफ़ाई का विभाग या सैनीटरी डिपार्टमेण्ट (Sanitary Department) जो कहता है, कि सफ़ाई रक्खो, जिससे रोग उत्पन्न न हो ; और दूसरा इर

एक प्रकार से बाल-विधवा-वि प्रथम विवाह के ही तुल्य है। क्योंकि -विवाह धर्म-विरुद्ध होने से न होने के तुल्य है। जब विवाह नहीं हुआ तो दूसरा विवाह कैसा ? इसलिए -विधवा-विवाह का विरोध तो किसी को भी उचित नहीं है।

और बालिकाओं का विवाह माता-पिता की मूर्खता तथा कतिपय पण्डितों के बहकाने के कारण होता है और इसका दण्ड मुख्य अपराधियों को नहीं दिया जाता; किन्तु उन बालिकाओं को दिया है जो अपनी छोटी अवस्था में किसी विषय की मीमांसा करने में असमर्थ रहती हैं। यह बड़े अन्धेर की बात है कि करे कोई और भोगे कोई।

(९) विधवा-विवाह लोक-व्यवहार के विरुद्ध है

जिन लोगों को कोई युक्ति नहीं सूझती वह अन्त को लोक-व्यवहार का आश्रय लेते हैं। यह उनका पक्षपात है। वस्तुतः इस प्रकार के लोग संसार में कोई सुधार नहीं कर सकते। ये लोग केवल लकीर पीटना । कर्त्तव्य समझते हैं। उनको यह नहीं मालूम कि लोक-व्यवहार किसके आश्रित है ?

जो विधवा-विवाह के विरोधी विधवा-विवाह को केवल इस-

जहाँ रोग की चिकित्सा होती है। इसी प्रकार बाल-विवाह रोकना सैनीटरी डिपार्टमेण्ट का काम है और विधवा-विवाह हस्पताल का। दोनों ही आवश्यक हैं। एक से काम नहीं चल सकता।

लिए त्याज्य समझते हैं कि लोक में, इसका रिवाज नहीं, वह न केवल वेद और स्मृतियों का ही तिरस्कार करते हैं, किन्तु साधारण लोक-हित के भी शत्रु हैं। वस्तुतः यदि लोकाचार ही प्रत्येक के अच्छे-बुरे होने की कसौटी होती, तो फिर वेद-शास्त्र के पढ़ने और प्राप्त करने की कुछ आवश्यकता न थी। जो कुछ लोक में हो रहा है वह सभी उचित नहीं। यदि लोक में उचित बातें ही होतीं, अनुचित न होतीं, तो किसी को दुख न होना चाहिए था। हम देखते हैं कि संसार में इतने दुखी पुरुष रहते हैं। इससे पता है कि लोक में उचित और अनुचित दोनों प्रकार के होते रहते हैं। इसीलिए लोकाचार कर्त्तव्याकर्त्तव्य की कसौटी नहीं समझा गया। इसका ज्ञान तो और तर्क से होता है।

यदि हम देखते हैं कि लोक में विधवा-विवाह को बुरा समझते हैं तो उसके साथ ही यह भी देखते हैं कि इस भूल के कारण सहस्रों हानियों का भार उठाते हैं, अतएव यह कोई युक्ति नहीं है कि अमुक कार्य लोक में देखा नहीं जाता।

क्या ो पता है कि लोक में प्रथाएँ किस प्रकार चलती हैं? जब विधवा-विवाह शास्त्रोक्त है तो अवश्य ही प्राचीन-काल में प्रचलित था। फिर इस प्रचलित संस्था को जिसने तोड़ा उसने लोकाचार के विरुद्ध कार्य किया और उसके अनुयायी अधिक हो जाने से लोकाचार बदल गया। इसी प्रकार यदि इस विधवा-विवाह की प्रथा नहीं है तो बहुत शीघ्र ही यह प्रथा फिर संस्थित हो ती है, यदि हम सब इसको चलाने लगें।

(१०) विधवा-विवाह आर्य- जिकों के लिए है। जो आर्य-सामाजिक नहीं को इससे घृणा करनी चाहिए

बहुत से लोग समझते हैं कि विधवा-विवाह आर्य-सामाजिकों के ही लिए हैं। जो किसी कारण आर्य-समाज के सिद्धान्तों को नहीं मानते उनको विधवा-विवाह में सहायता नहीं देनी चाहिए।

(उत्तर) परन्तु यह उनकी भूल है। इसमें सन्देह नहीं कि आर्य-सामाजिक पुरुषों ने विवाह में अधिक भाग लिया है। परन्तु सैकड़ों मनुष्य आर्य-समाज से कुछ सम्बन्ध न रखते हुए भी विधवा-विवाह को उचित समझते हैं।

देखो, जिस समय श्री० पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बङ्गाल में विधवा-विवाह का प्रश्न उठाया, उस समय आर्य-समाज का जन्म भी नहीं हुआ था और आजकल भी जिनकी आँखें खुली हैं और जिनके कानों में रूई नहीं लगी वह अवश्य विधवा-विवाह के अनुकूल हैं। बिजनौर के श्री० श्रोत्रिय शङ्करलाल जी आर्य- जिक न थे। वह विधवा-विवाह में उसी र गणेश-पूजन थे, जिस प्रकार कट्टर से कट्टर सनातन-धर्मी करते हैं। वृन्दावन के गोस्वामी राधाचरण जी आर्य-सामाजिक नहीं; किन्तु विधवा-विवाह के पक्षपाती हैं। प्रयाग के कायस्थ-पा ा के भूतपूर्व संस्कृत-प्रोफ़ेसर श्री० पं० सुदर्शनाचार्य जी ने बाल-विधवा से अपना विवाह किया। वह आर्य-स में नहीं। क्वीन्स कॉलेज बनारस के संस्कृत के प्रिन्सिपल प्रयाग-विश्वविद्यालय के वायस-

चैंस्लर श्री० डॉक्टर गङ्गानाथ जी झा विधवा-विवाह के पक्ष में हैं; परन्तु वह आर्य-समाज के सभासद नहीं। आनरेबिल सी० वाई० चिन्तामणि जी आर्य-समाज में नहीं हैं, परन्तु वह विधवा-विवाह को देश-हित के लिए आवश्यक समझते हैं। बड़ोदा के गायकवाड़ नरेश ने तो अपने यहाँ नियम कर दिया है कि जो पुरुष विधवा-विवाह में विघ्न डालेगा वह दण्डनीय होगा। इतने पुरुषों के विधवा-विवाह के पक्ष में होते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि विधवा-विवाह केवल आर्य-समाज का ही सिद्धान्त है। आजकल सैकड़ों विधवा-विवाह आर्य-समाज के बाहर भी हुए हैं और होते रहते हैं। अब तो सनातन-धर्म-सभा के कुछ* लोग भी इनमें सम्मिलित होने में सङ्कोच नहीं करते। हम यहाँ इस प्रकार के थोड़े से उदाहरण देते हैं :—

(१) १८ अप्रैल, १९१९ को रुड़की, ज़िला सहारनपुर में न-धर्म-सभा के एक पण्डित के घर विधवा-विवाह हुआ और सनातन-धर्म के अन्य सभ्य हर्षपूर्वक इसमें सम्मिलित हुए।

(२) जावली ज़िला करनाल में एक सनातनधर्मी गौड़ ब्राह्मण ने अपनी १९ वर्ष की बाल-विधवा लड़की का विवाह १९ अप्रैल, १९१९ की रात्रि को पं० मातूराम जी गौड़ ब्राह्मण के साथ किया। यह भी सनातनधर्मी थे।

---

* Census of India 1921, Vol. I, Part I. के १९१ पृष्ठ पर मारटन (J. T. Marten) साहब लिखते हैं कि पञ्जाब की विधवा-विवाह-सहायक सभा सनातनधर्मी है। इसने १९२१ में २०० विधवा-विवाह कराए।

इसके अतिरिक्त बहुत से विवाह इस के सनातन-धर्मियों द्वारा हो चुके हैं। आर्य-समाज के सम्बन्ध से जो बाल-विधवा-विवाह हुए हैं, उनकी संख्या तो गणना से बाहर है। पाठकगण प्रत्येक पत्र में नित्य प्रति देख ही सकते हैं।

सनातन-धर्म-सभा में इस समय जो कुछ विरोध विधवा-विवाह का हो रहा है, वह न केवल भ्रमलमूलक और स्वार्थ-प्रेरित ही है; किन्तु आश्चर्यजनक भी है, के सनातन-धर्म के सिद्धान्तानुसार जो पुरुष या स्त्री १०० योजन से भी 'गङ्गा' का पवित्र नाम ले ले, उसके असंख्य पाप छूट जाते हैं। फिर क्या कारण है कि जिस पातक के कारण विधवा को वैधव्य का दुख प्राप्त हुआ वह गङ्गाजल में डुबकियाँ लगा कर भी वैसे का वैसे ही बना रहे और उसमें किसी प्रकार की कमी न हो?

(११) पति-पत्नी का अटल और अटूट्य ग्रन्थ

कुछ विधवा-विवाह के विरोधी आक्षेप करते हैं कि विवाह-रूपी सम्बन्ध शरीर का शरीर के साथ नहीं, किन्तु आत्मा का आत्मा के साथ है। आत्मा अजर और अमर है। शरीर नाशवान है। पति के मरने का तात्पर्य यह है कि शरीर मर गया, परन्तु जिसके साथ विवाह हुआ था अर्थात् आत्मा; वह तो मरा नहीं, इसीलिए विधवा स्त्री को किसी प्रकार विवाह करना उचित नहीं।

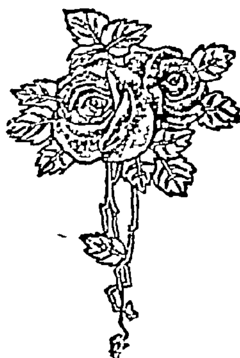
समाधान—जो लोग ऐसा कहते हैं वह वस्तुतः आत्मा के स्वरूप को न समझ कर शब्द-जाल में फँसे हुए हैं। वस्तुतः यह कहना सर्वथा भ्रम है कि विवाह आत्मा के साथ होता है।

यदि गूढ़ दृष्टि से देखा जाय तो विवाह न तो शरीर का शरीर के , न आत्मा का आत्मा के साथ, किन्तु स्त्री-लिङ्गयुक्त शरीर वाले आत्मा का पुल्लिङ्गयुक्त शरीर वाले आत्मा के साथ है। वस्तुतः आत्मा न स्त्री है न पुरुष। वह कभी स्त्री का शरीर धारण है कभी पुरुष का। विवाह का सम्बन्ध केवल मृत्यु-पर्यन्त रहता है। तत्पश्चात् न कोई किसी की स्त्री है न कोई किसी का पति। इसलिए यह कहना कि पति के मरने के पश्चात् भी वह स्त्री उस आत्मा की पत्नी है, जो शरीर छोड़ गया, सर्वथा निर्मूल है। ना कीजिए कि बारह वर्ष की स्त्री का पति मर गया। उसकी अवस्था उस १६ वर्ष की थी। अब पति का वह आत्मा सम्भव है, स्त्री का जन्म लिया तो जिस समय तक वह विधवा २५ या २६ वर्ष की होगी उस समय तक उसके पूर्व पति का आत्मा स्त्री-शरीर में जाकर किसी अन्य पुरुष की पत्नी बना होगा। उस समय उसमें अपनी पूर्व पत्नी के प्रति कुछ भी भाव न होंगे। है कि उसी आत्मा ने उस विधवा के भाई के घर जन्म लिया तो यह अपनी पूर्व-पत्नी को बुआ-बुआ कह कर पुकारता होगा। क्या है कि ऐसी दशा में यह विधवा अपने भाई के उस छोटे लड़के से पति का भाव प्रकट कर सके। यदि पशु या पक्षी हुआ तो और भी विचित्र बात होगी।

जो लोग यह कहते हैं कि हिन्दू-स्त्री का पातिव्रत्य केवल इसी संसार में स नहीं होता, वरन् उसकी डोर अन्य लोकों से लगी है, उन्होंने अपने शब्दों के ऊपर कुछ भी विचार नहीं किया। कल्पना कीजिए कि विधवा मर जाय और किसी स्थान पर

ी का उसको मिले तो क्या वह लड़की फिर किसी पुरुष से विवाह ही न करेगी और अपने पहले जन्म के पति की ही स्मृति में मग्न रहेगी ? क्या यह सम्भव है ?

यदि विवाह का अर्थ आत्मा का आत्मा के साथ सम्बन्ध है तो रँडुए क्यों पुनर्विवाह करते हैं ? उनके लिए यह युक्ति कहाँ जाती है ? वस्तुतः देश और जाति तथा धर्म की शब्दों की दुन्दुभी बजाने से नहीं होती। वास्तविक रीति से धर्माधर्म का विचार करना ही हमको पाप और अधर्म से बचा सकता है।



ग्यारह ँ अध्याय

वि -वि के प्रचलित न होने से हानियाँ

(१) व्यभिचार की वृद्धि



स अध्याय में हम इस बात की मीमांसा करेंगे कि यदि विधवा-विवाह सर्वथा रोक दिया जाय तो क्या हानि होगी।

सबसे बड़ी हानि जो विधवा-विवाह के प्रचलित न होने के कारण आजकल भारतवर्ष में हो रही है, वह आचार का बिगड़ना है। वस्तुतः विधवा-विवाह एक आचार-सम्बन्धी प्रश्न है और जो लोग इसका विरोध करते हैं उनकी सबसे युक्ति यही है कि इसके प्रचार से आचार की हानि होगी। परन्तु तमाशा यह है कि यह जिस बात का समझा जा रहा है, ठीक उसके अभाव में ही रोग की वृद्धि हो रही है। जिस प्रकार साधारण विवाह गृहस्थाश्रम को ठीक-ठीक चलाने और व्यभिचार के रोकने के लिए है उसी विधवा-विवाह न होने के कारण भी ब्रह्मचर्य-व्रत को क्षति पहुँच रही है और व्यभिचार बढ़ रहा है। केवल विधवा-विवाह रोकने से ही स्त्री-पुरुषों की वृत्तियाँ नहीं रुक सकतीं। और जब तक स्वाभाविक वृत्तियाँ बनी हुई हैं, उस तक उनकी पूर्ति करनी होगी।

यदि भारतवर्ष की विधवाओं की ओर ध्यान दें और इनके वास्तविक जीवन पर दृष्टि डालें तो यह बात भली-भाँति विदित हो जायगी कि उनके आन्तरिक जीवन ऐसे नहीं हैं जैसे हम समझे बैठे हैं। उनके भीतर अनेक के घुन लगे हुए हैं, जो समस्त आर्य-जाति को की ओर ले जा रहे हैं।

१८८१ ई० की मनुष्य-गणना के अनुसार भारतवर्ष में कुल विधवाओं की संख्या २ करोड़ से कम थी; परन्तु १९११ ई० की मनुष्य-गणना ी है कि भारतवर्ष में कुल विधवाएँ २ करोड़ १६ हज़ार हैं*। इस को हुए बारह वर्ष हो चुके जिनमें युद्ध-ज्वर, महामारी तथा इससे भी भयानक यूरोप का विश्वव्यापी युद्ध भी हो चुका है। इसलिए विदित होता है कि सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार विधवाओं की संख्या में एक और शोकजनक आधिक्य हुआ होगा। १८८१ ई० की मनुष्य-संख्या के अनुसार ९ वर्ष तक की विधवाएँ ६३ हज़ार ५ सौ -वन थीं; परन्तु १९११ में ९ वर्ष तक की विधवाएँ ७७ हज़ार ९ सौ ८५ हो गईं। इसी २४ वर्ष तक की विधवाएँ १८८१ ई० में ६ दस हज़ार ९२ थीं; परन्तु १९११ ई० में इसी की विधवाओं की संख्या सात दो हज़ार हो गईं। ७५९

*१९२१ ई० की मनुष्य-गणना के अनुसार भारतवर्ष की विधवाएँ २ करोड़ ६८ ३४ हज़ार ८३८ हैं। पाँच वर्ष से कम की १५,१३९ पाँच से १० वर्ष तक की १,०२,२९३, और २५ वर्ष तक की विधवाएँ १८,७६,०७१। इनमें से २० से २५ वर्ष तक की विधवाएँ ९,६६,६१७ हैं।

विधवाएँ इस प्रकार की हैं जिनकी अभी एक या दो वर्ष की ही है। ६१२ का दो वर्ष, १६०० की तीन, ३४७५ की चार और ८६११ की पाँच वर्ष है और जो अभी भली प्रकार 'माँ' और 'बाप' शब्द भी ण नहीं कर सकतीं। इनका जीवन अभी आरम्भ ही हुआ है और अभी आयु काटने को पड़ी है। इनके पास कोई साधन नहीं है, जिससे वह ब्रह्मचर्य-व्रत भली प्रकार पाल सकें। इनका ब्रह्मचर्य-व्रत केवल निम्न-लिखित ओं में ही सम्भव हो सकता था :—

(१) उनको इन्द्रिय-दमन की शिक्षा दी जाती और उन सबके आत्मा इतने दृढ़ होते कि वह ब्रह्मचर्य-व्रत के गौरव को भली प्रकार सकतीं। उनको योग सि और वह विषयों से इतनी घृणा करने लगतीं कि उनको कभी विषय-गमन की इच्छा ही न होती।

यदि ऐसा होता तो व्यभिचार में किसी अंश तक कमी हो जाती। परन्तु नितान्त अभाव तो असम्भव ही था। क्योंकि इतिहास के अवलोकन से विदित होता है कि समस्त संसार जितेन्द्रिय और योगिराज हो ही नहीं । में भिन्न-भिन्न स्थिति के पुरुष हैं। कहा है :—

विचित्र रूपाः खलु चित्त वृत्तयः।

अतः यह कहना दुस्तर है कि हम की सभी विधवा स्त्रियों को योगी बना देंगे और वह अपनी इन्द्रियों को वश में करने लगेंगी।

यदि थोड़ी देर के लिए यह कल्पना भी कर ली जाय कि यह

सब योगी हो जायँगी तब भी इतिहास से हमको जो एक बात और विदित होती है वह यह कि जब काम का वेग होता है तो बेचारी अबलाओं का तो कहना ही क्या है, भले-भले योगिराजों तक के छक्के छूट जाते हैं और वह भय तथा लज्जा को छोड़ कर अपने आप को बिगाड़ लेते हैं फिर चाहे थोड़ी देर के पश्चात् उनको पछताना ही क्यों न पड़े! बहुधा देखा गया है कि लोग बिगड़ कर पछताते हैं और थोड़े समय के पश्चात् पछताना भूल कर फिर वही काम कर बैठते हैं। इस प्रकार व्यभिचार और पछताना एक-दूसरे के पश्चात् आयुपर्यन्त जारी रहते हैं और उनका अन्त होने को नहीं आता। पुराणों ने तो बड़े-बड़े ऋषियों के गले ऐसे-ऐसे दोष मढ़ दिए हैं, जिनको सुन कर हृदय कम्पायमान होता है; फिर जो पुरुष मानते हैं कि ऐसे ऋषि-मुनि भी काम के प्रकोपों से सुरक्षित न रह सके वह विधवाओं को ब्रह्मचर्य-व्रत पालने पर बाधित करने का किस मुँह से साहस कर सकते हैं? यह कह देना तो सरल है कि विधवाओं को ब्रह्मचारिणी बन कर रहना चाहिए, इन्द्रिय-निग्रह सीखना चाहिए और अपने पूर्व पति की स्मृति-मात्र से जीवन का अवलम्बन करना चाहिए। परन्तु ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय-निग्रह खिलौना तो है नहीं, जिनसे सभी खेल सकें। यह तो वह टेढ़ी खीर है जो भले-भलों के गलों में अटकती है। प्रिय पाठकगण! अपने कलेजे पर

रख कर अपने आन्तरिक जीवन पर दृष्टि डालिए, अपने अभ्यान्तरिक भावों को टटोलिए और सत्य-सत्य कहिए कि की इस विषय में क्या सम्मति है?

(२) विधवाओं के व्यभिचार में उस समय भी कभी आ

सकती थीं जब उनको पुरुषों का दर्शन-स्पर्शन ही न होता और वह सबकी सब निर्जन स्थान में रख दी जातीं।

परन्तु यह केवल असम्भव ही नहीं, किन्तु आचार की का सबसे अधम उपाय है। क्योंकि धर्म में स्वतन्त्रता आ है। जिसकी जिह्वा काट दी गई उसके लिए यह कहना कि यह सत्यवादी है, अनर्थ और मिथ्यावाद है। इसी प्रकार यदि विधवाओं को निर्जन स्थान में रख दिया जाय तो उनको धर्मात्मा नहीं बताया जा सकता। धर्मपरायणता आन्तरिक इच्छा पर निर्भर है। जिस प्रकार पुरुष बिना स्त्रियों के भी कुचेष्टा करते हैं इसी प्रकार स्त्रियाँ भी बिना पुरुषों के कुचेष्टा कर सकती हैं, और व्यभिचार के अनेक ढूँढ़ सकती हैं। जिन स्त्रियों को व्यभिचार से रोकने के लिए परदे के भीतर रक्खा जाता है और उन पर अनेक प्रकार के पहरे बिठाए जाते हैं, उन्हीं के गुप्त रहस्य बड़े भयानक सिद्ध हुए हैं। मुग़ल बादशाहों ने जब अपनी पुत्रियों का विवाह करना छोड़ दिया तो वह कड़े से कड़े परदे में रहती हु भी अनर्थ करने लगीं, जैसा कि इटली के यात्री मनूची के लिखे हुए इतिहास से प्रकट होता है।

(३) यदि समस्त पुरुष जितेन्द्रिय हो जायँ तो भी किसी अंश तक विधवाओं के ब्रह्मचर्य-व्रत पालन में सहायता मिल सकती है।

परन्तु यह भी उसी प्रकार असम्भव है जिस स्त्री-वर्ग का योगी बन जाना। प्रायः देखा तो यह गया है कि निर्लज्ज पुरुष विधवाओं को पहले से ही ब ा भ कर देते

हैं और जब वह एक-दो बार अपने धर्म को नष्ट कर बैठती हैं, तो फिर उनका स्वभाव भी वैसा ही हो जाता है और उनको किसी प्रकार भी कुचेष्टा करने में सङ्कोच नहीं होता।

इस समय भारतवर्ष में इतनी विधवाओं की विद्यमानता न केवल विधवाओं को ही, किन्तु अन्य मनुष्यों को भी व्यभिचारी और व्यभिचारिणी बना रही है। यह इस प्रकार होता है कि जो पुरुष युवती विधवाओं को पति-रहित और स्वतन्त्र देखते हैं, वह उन पर आसक्त होकर उन्हें बहकाने में कृतकार्य हो जाते हैं और विधवाएँ भी अपनी युवावस्था के भार को न सँभाल सकने के कारण अपना सतीत्व नष्ट कर बैठती हैं। इस प्रकार न केवल यह विधवाएँ ही भ्रष्ट होती हैं, किन्तु इनके साथ-साथ अधिकांश भी पतित हो जाते हैं।

(प्रश्न) क्या इसी प्रकार लोग सधवाओं को भी नहीं बिगाड़ते?

(उत्तर) सधवाओं को बिगाड़ने की प्रति शतक एक की सम्भावना है, परन्तु विधवाओं के बिगाड़ने की सौ में ११ की सम्भावना है। सधवाओं को अपनी विषय-पूर्ति के साधन, अपने पति का भय और बिगाड़ने वाले पुरुषों को भी इनके पतियों से भय होता है, अतएव वे सुरक्षित रह सकती हैं। जिसके पास पुष्कल खाने को है वह भला भिक्षा क्यों माँगेगा; परन्तु जो कई दिन का भूखा है वह आत्मगौरव रखते हुए भी परवश होकर हाथ पसारने लगता है।

विधवाओं के बिगड़ने का गौण उनकी जीविका का

अभाव भी होता है। क्योंकि स्त्रियों की जीविका का एकमात्र आश्रय उनका पति ही होता है। जब पति मर जाता है तो उनको पति के भाई या अपने भाइयों के आश्रय में रहना पड़ता है। उस
जो-जो अत्याचार उनको सहन करने पड़ते हैं उनको वही पुरुष जान सकते हैं जिनके हृदय में दूसरों के लिए सहानुभूति है। देवरानी-जिठानी के सदा के ताने, समस्त दिन भर का गृहस्थी का कड़ा कार्य और फिर भी पेट के लिए भोजनों की कमी !! यह दुख कभी-कभी इनको अपने सन्मार्ग से डिगा देते हैं और वह उन प्रलोभनों में फँस जाती हैं जो नीच पुरुष अवसर तकते हुए उनके सामने करते हैं।

जो पुरुष विधवा स्त्रियों से अनुचित सम्बन्ध कर बैठते हैं, उनकी निज स्त्रियों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। कलह और लड़ाई-झगड़ा बढ़ते-बढ़ते प्रेम का ह्रास हो जाता है और स्त्रियाँ स्वभावतः अपने ऐसे व्यभिचारी पतियों से घृणा करते-करते पतिव्रत धर्म से च्युत हो जाती हैं।

जिस देश में स्त्री-पुरुषों का एक बड़ा अङ्ग इस प्रकार धर्म-च्युत हो जाता है, उस देश की स्थिति बिगड़ जाती है। कहावत है कि एक मछली समस्त व को गन्दा कर देती है; फिर जिस भार -रूपी में २ करोड़ १६ हज़ार* मछलियाँ हों उसके गन्दा होने में सन्देह ही क्या रहा? जब एक बार वायु-
व्यभिचार के भावों से पूरित हो चुका तो यह दुर्गन्ध समस्त घरों

* १६२१ के अनुसार २ करोड़ ६८ लाख ३४ र ८३८ कहना चाहिए।

में फैल जाती है और वृद्धों से लेकर बच्चों तक सभी के जीवन पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः विधवाएँ एक चिनगारी हैं, जो भारत-रूपी रुई को जला देने के लिए काफ़ी हैं। इसका एक-मात्र इलाज यही है कि विधवा-विवाह का प्रचार किया जाय।

(२) वेश्याओं का आधि

आप यदि भारतवर्ष की अवस्था पर विचार करें तो एक भयानक दृश्य सामने आ जाता है। प्रत्येक नगर की मुख्य गलियों और बाज़ारों के अड्डे आजकल वेश्याओं के निवास-स्थान हो रहे हैं। लखनऊ, प्रयाग, बनारस, कलकत्ता, जिस ओर निकल जाइए, बड़े-बड़े व्यापारियों के सिरों पर वेश्याएँ बैठी हुई हैं।

अब भला ये वेश्याएँ कहाँ से आईं? यदि इनका इतिहास लिखा जाय तो पता लगेगा कि यह उच्च घरों की बहू-बेटियाँ हैं, जो वैधव्य-पीड़ा को सहन न करके दुराचार के गढ़े में गिरी हुई हैं और अपने साथ अनेकों को गिराती चली जा रही हैं। प्रत्येक पुरुष जानता है कि वेश्याओं की वर्षा नहीं होती और न उनकी कोई मुख्य जाति ही है। इनका रण्डी नाम ही प्रकट करता है कि यह वास्तव में रायडें (विधवाएँ) थीं जो किसी न किसी कारणवश रण्डियाँ हो गईं। यह रण्डियाँ अपना कुटुम्ब बढ़ाती रहती हैं। जब एक वेश्या बूढ़ी हो जाती है और उसके पास जीविका के साधन नहीं रहते तो वह किसी रूपवती विधवा को बहका कर लाने में कृतकार्य हो जाती है और इस प्रकार उसका कुटुम्ब बढ़ता रहता है।

बहुत से भोले-भाले मनुष्य कहेंगे कि ऐसा हमने कहीं नहीं देखा कि अमुक घराने की विधवा निकल कर वेश्या हो गई। परन्तु ऐसे मनुष्यों से कहना चाहिए कि भोले-भाले! अभी तुमने देखा ही क्या है? तुम तो आँख बन्द किए बैठे हो। तुम्हें क्या पता है कि तुम्हारे ही पड़ोस में क्या-क्या अनर्थ होते हैं? हम यहाँ दो-तीन उदाहरण देंगे जो हमारी आँख के देखे हैं। इनके नाम हम देना नहीं चाहते, क्योंकि इससे वंश के लोगों की कीर्ति में बट्टा लगेगा।

खत्री जाति की २० वर्ष आयु की एक रूपवती विधवा थी। वह बेचारी किसी न किसी प्रकार अपने ज्येष्ठ के यहाँ रह कर अपना पालन किया करती थी। उसके रूप को देख कर उसका ज्येष्ठ उस पर मोहित हो गया और उसको फँसाना चाहा। कुछ दिनों तक तो वह किसी न किसी प्रकार अपने जेठ का प्रतिरोध करती रही, परन्तु अन्त को वह बहक गई और उन दोनों में गुप्त रीत्या अनुचित सम्बन्ध हो गया। कुछ समय तक ऐसा ही रहा। परन्तु यह भेद प्रथम घर वालों पर, फिर पड़ोसियों पर और फिर जाति-बिरादरी के लोगों पर विदित हो गया। उस समय तो बड़ा कोलाहल मचा और जेठ को अपनी पगड़ी सँभालनी भारी पड़ गई। ऐसी अवस्था में उनको यह सूझी कि उस बेचारी विधवा को घर से निकाल दिया। फलतः वह अन्य स्थान में जाकर वेश्या हो गई। यदि उस नववयस्का बाल-विधवा का विवाह कर दिया जाता तो जेठ के व्यभिचार, उसके व्यभिचार और उन पुरुषों के व्यभिचार में कमी हो जाती जो उसके वेश्या होने

पर उसके विगड़ते रहे और जिनकी संख्या
म्भव है।

इसी प्रकार एक कायस्थ थे। उनकी बहिन के विषय में ीं स्त्री बताया करती थीं कि हमारी नन्द विधवा थी जिसकी मृत्यु हो गई। में उस विधवा की मृत्यु नहीं हुई थी। किन्तु वह नगर से दस-बारह कोस की दूरी पर ही किसी नीच जाति वाले पुरुष के घर में थी। यह पड़ोस के सभी स्त्री-पुरुषों पर विदित थी। यह थी कि यह लड़की -विधवा थी और इन लाला जी के घर एक नौकर रहता था, जिससे उसका सम्बन्ध हो गया। जब भेद प्रकट होने तो नौकर उस विधवा को लेकर भाग निकला। ा जी की तो कट ही चुकी थी, वे नकटा कहलाना नहीं चाहते थे, अतः उन्होंने उसकी झूठ-मूठ मृत्यु प्रसिद्ध कर दी और क्रिया-कर्म करके जाति वालों का सहभोज भी कर दिया। बेचारे क्या करते? देश के रिवाज का दोष है, जी का नहीं।

एक जैनी वैश्य थे, जिनकी पुत्र-वधू विधवा थी। इन्होंने
विधवा को बहका लिया। यद्यपि गाँव वाले सभी
को खूब जानते थे, परन्तु कोई मुँह पर कहने का साहस नहीं करता था। जब वह वैश्य जी वृद्ध हो गए तो वह विधवा बहुत सा गहना लेकर घर से भाग गई।

एक ब्राह्मण थे, जिनकी बहिन विधवा थी उनके नगर में विधवा-विवाह के प्रचारक और सहायक भी थे। उन्होंने उस लड़की की -ढाल देख कर ताड़ लिया था कि दाल में

काला है। चूँकि इस देवता का वंश उच्च था और लोग उसका आदर करते थे, अतः उस कुल को धब्बे से बचाने के लिए इस विधवा के भाई से कहा कि तुम इसका पुनर्विवाह कर दो। परन्तु यह महात्मा बड़े लाल-पीले हुए और खुल्लमखुल्ला लड़ना आरम्भ किया कि हम जैसे उच्च वंशज ऐसे निकृष्ट कार्य कब कर सकते हैं? थोड़े दिनों में कुछ गुल खिल गया। उसको तो इन्होंने किसी प्रकार दबाया। परन्तु जब इसी नगर में एक अन्य विधवा का पुनर्विवाह हुआ, तो उस ब्राह्मणी विधवा से नहीं रहा गया और उसने अपने भाई और भावज से प्रार्थना की कि मेरा भी पुनर्विवाह कर दिया जाय। यह बात उन दोनों को कब सहन थी? इतना तो ही था कि गुप्त रीत्या जो चाहे होता रहे, परन्तु पुनर्विवाह पर राज़ी नहीं हुए। और भाई ने बहिन को और ने ननद को कोठरी में बन्द करके अनेक की अनिर्वचनीय पीड़ाएँ दीं। इन सबका परि यह हुआ कि वह एक दिन निकल भागी और ईश्वर जाने कहाँ और किस में है।

(३) भ्रूण-हत्या तथा -हत्या

व्यभिचार के अतिरिक्त, जिसका वेश्या-वृद्धि केवल एक ही अङ्ग है, विधवा-विवाह के प्रचलित न होने के कारण देश में भ्रूण-अर्थात् गर्भपात और बाल-हत्या भी बहुत ही बढ़ रही है। इसमें सन्देह नहीं कि ब्रिटिश राज्य की ओर से बाल-हत्या के दोषियों को बड़ा कड़ा दण्ड दिया है; परन्तु पाप केवल कड़े नियम और कड़े दण्ड से ही बन्द नहीं हो जाते। "कारणा त् कार्य्या-

:" जब तक कारण का   नहीं होता उस समय तक कार्य का अभाव हो ही नहीं सकता। वृक्ष को उन्मूलित करने के लिए जड़ को काटना चाहिए। जब गर्भपात और बाल-हत्या की विधवा-रूपी जड़ें मज़बूत हो रही हैं तो उस प्रकार के पातकों का बढ़ना एक स्वाभाविक सी बात है। स्मृतियों में भ्रूण-हत्या और गर्भपात को महापाप* लिखा है। इससे न केवल उसी जान का पाप होता है, जो मारी जाती है, किन्तु उस जाति का भी ह्रास हो जाता है, जिसकी व्यक्तियाँ पृथ्वी पर आने से पहले ही नष्ट कर दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त हिंसा बढ़ जाने से जाति में हिंसा और क्रूरता का स्वभाव बढ़ जाता है। यदि भारतवर्ष में गणना की जाय तो सहस्रों गर्भपात प्रतिदिन होते हैं, जो केवल विधवाओं के ही कारण हुआ करते हैं। बहुत सी विधवाओं को लोग तीर्थ-स्थानों में जाकर छोड़ आते हैं और वहाँ वे अनेक गुप्त रीतियों से हत्या-काण्ड की प्रवृत्ति में तत्पर होती हैं।

मुझे एक सम्बन्धी का पता है कि जब उनकी बाल-वि लड़की किसी प्रकार गर्भवती हो गई और उनको उसका पता लग गया तो उन्होंने उसको आगरे ले जाकर गर्भ से मुक्त कराना चाहा, परन्तु वहाँ कोई डॉक्टर इस भीषण कार्य को करने के लिए राज़ी न हुआ। वह बेचारे इतने तो धनवान न थे कि जो कुछ चाहते कर लेते। वस्तुतः रुपए में बहुत बड़ी शक्ति है; परन्तु अन्त में उन्होंने

---

* वशिष्ठ-स्मृति, प्रथम अध्याय में लिखा है :—

पञ्चमहापातकान्याचक्षते। गुरुतल्पं सुरापानं भ्रूणहत्या सुवर्ण हरणं पतितसंप्रयोगं च ब्राह्मे वा यौनेन वा।

तीर्थयात्रा का एकमात्र उपाय करने का निश्चय कर लिया और अपनी वृद्धा स्त्री और युवती गर्भवती पुत्री को लेकर चारों धाम करने चल पड़े। मथुरा, काशी, गया, जगन्नाथ सब बड़े-बड़े तीर्थों में फिरे और इन देवतों के प्रसाद से लड़की भी गर्भ-दोष से मुक्त हो गई। दैव जाने इन महाशय को क्या-क्या करना पड़ा होगा। क्या ? कहाँ ? और किस प्रकार हुआ ? मुझको ज्ञात नहीं है।

कहीं-कहीं तो ऐसा भी हुआ है कि माता-पिता ने अपना नाम बचाने के लिए अपनी दोषयुक्त लड़कियों को विष देकर मार डाला है। एक महाशय ने तो अपनी लड़की के ऊपर मिट्टी का तेल डाल कर दीप-शलाका लगा दी और प्रसिद्ध कर दिया कि लड़की लैम्प लेकर कनस्तर के पास तेल लेने गई थी, वहाँ उसके वस्त्रों मे लग गई और वह मर गई।

पाठकगण ! विचार कीजिए कि एक विधवा-विवाह का प्रचार न होने के कारण ही कैसी-कैसी मर्म-वेधक घटनाएँ हमारे देश हो रही हैं। कैसा हृदय-विदीर्ण करने वाला दृश्य है ! जो माता-पिता अपनी सन्तान के लिए सदैव प्राण न्यौछावर करें, जो अपने लड़की-लड़कों को अपनी आँखों के तारे और कलेजे के टुकड़े कहें, वही माँ-बाप एक सामाजिक निर्बलता के कारण ऐसे क्रूर हो जायँ कि अपनी कोख से ज्याए हुए, अपने हाथ से पाले हुए जीवों को अपने ही हाथ से मार डालें ! ऐसी क्रूरता तो पशुओं में भी देखने में नहीं आती। सिंह, भेड़िए, चीते आदि बड़े-बड़े भयङ्कर जन्तु अन्य प्राणियों पर तो बड़ी निर्दयता करते हैं और

सदैव उनके रक्त के प्यासे रहते हैं, परन्तु उनका कठोर हृदय भी अपनी सन्तान के लिए पिघल ही जाता है और सिंहनी का जो हाथ दूसरों को चीर-फाड़ कर खाने के लिए दौड़ता है, वही हाथ अपने बच्चों के लिए रूई और ऊन से भी कोमल हो है। परन्तु यह मनुष्य, जिसे अपनी उच्चता पर अभिमान है, यह हिन्दू-मनुष्य जिसको अपने "अहिंसा परमोधर्मः" पर घमण्ड है, जो समझता है कि धर्म के ठेकेदार केवल हम ही हैं और में हमसे अधिक कोई धर्मात्मा ही नहीं, यह उच्च और कुलीन मनुष्य जो चींटियों के मरने पर भी श्चित्त है, केवल विधवा-विवाह के प्रचार न होने के कारण अपनी ही सन्तान पर अनेक प्रकार की क्रूरताएँ करता है। विधवा-स्त्रियाँ जिस अपने गुप्त रीति से जन्मे हुए बच्चों को मारने के लिए होती होंगी, तो आकाश थर्राता और भूमि काँपती होगी। हा दैव! माता का वह स्नेह कहाँ गया, जो अपने हृदय के टुकड़े को देख कर उसका मुख चूमने की इच्छा करता है। कौन माता है जो अपने पुत्र को देख कर स्वर्ग-प्राप्ति के सुख का अनुभव न हो। परन्तु समाज की कुरीतियाँ मनुष्य से क्या कुछ नहीं करातीं। इधर प्रेमपात्र बच्चे ने जन्म लिया है, उधर माता लोक-लाज से मर रही है! कहाँ तो इस समय बाजे-गाजे होते और बच्चे को दूध-मिश्री पिलाई जाती, कहाँ इस निर्लज्ज हिन्दू-जाति के बच्चे का न्त करने के लिए उसी की माता का हाथ उठ रहा है! कभी तो मारना चाहती है और कभी अपने प्यारे पुत्र का मुख देख कर उसे तर्स है। बहुत-सी स्त्रियाँ हैं जो ऐसे में अपने पुत्रों को नहीं

सकतीं और केवल दैव के आश्रय पर उनको मार्गों में फेंक कर चल देती हैं; सैकड़ों हैं जिनके बच्चे दाइयों के हाथ से नष्ट हो जाते हैं। सैकड़ों हैं जिनका पता पुलिस को लग जाता है। उस समय लाला जी, पण्डित जी अथवा सेठ जी की जो कुछ कीर्ति-वृद्धि होती है, वह तो पाठक स्वयं ही सोच सकते हैं।

अभी हाल की घटना है कि संयुक्त-प्रान्त के एक प्रसिद्ध नगर की एक मण्डी में एक बच्चा मरा हुआ पाया गया। पुलिस को लगी। पता चल गया और मालूम हुआ कि उस नगर के बड़े माननीय महाशय की करतूत का यह फल है। पुलिस ने क्या किया और इसमें किसका दोष था, इसका तो पता नहीं, किन्तु उक्त महाशय के पड़ोसी और सम्बन्धी नित्य-प्रति इस प्रकार की कानाफूसी करते हैं। यदि अब भी हिन्दू-जाति को बुद्धि आवे और यह बुरे-भले का विचार कर सके तो अच्छा है, नहीं तो गिरने में सन्देह ही क्या रहा है !!

(४) अन्य क्रूरताएँ

इस देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में विधवाओं के लिए कड़े नियम रक्खे गए हैं। जिस समय कोई विधवा हो जाती है उसी समय उसकी तथा अन्य घर वाले उसे कोसने लगते हैं कि यह अभागी ऐसी आई कि इसने मेरे लाल को डस लिया। यह डायन है, यह साँपिनी है, इत्यादि-इत्यादि। उस समय उसका कोई नहीं होता। प्रथम तो वह बेचारी ससुराल में अकेली होती है। माता-पिता, भाई-बहिन सबसे छूट कर वह पराए घर जाती है। उसका आश्रय पति ही होता है। वह भी मर गया और वह

अकेली रह गई। फिर उसकी अवस्था खेलने-खाने की होती है। इसे संसार का कुछ अनुभव भी नहीं होता। ऐसे समय में चारों ओर से ताने और गालियाँ सुनना और लोगों को धैर्य और शान्ति देने के उसे कोसना बड़ा भयङ्कर होता है और विधवा का हृदय विदीर्ण हो है। कैसा अन्याय है? का पुत्र मर गया, परन्तु माता नहीं कहती कि मेरे दुर्भाग्य से मेरा पुत्र मर गया; बहिन नहीं कहती कि मेरे दुर्भाग्य से भाई मर गया; दादी नहीं कहती कि मेरे दुर्भाग्य से नाती मर गया; परन्तु सब यही कहते हैं कि इस बहू के दुर्भाग्य से उसकी मृत्यु हो गई। वस्तुतः दुर्भाग्य तो सभी का है, परन्तु यह किसी के हाथ में नहीं। क्या वह बेचारी चाहती थी कि मेरा पति मर ? फिर उसको डायन, साँपिन आदि नामों से सम्बोधित करना कितना बुरा है? इतने पर भी उसकी विपत्ति समाप्त नहीं होती। कहीं-कहीं तो उसका सिर मुँड़ा दिया जाता है। चूड़ियाँ और बिछुए तो प्रायः सभी जगह उतार दिए जाते हैं। कहीं-कहीं रण्डसाला पहना देते हैं, जो एक अपमान और शोक-सूचक वस्त्र है और जो हर घड़ी उसके घावों को ताज़ा करता है। इसके पश्चात् कोई उससे प्यार से नहीं बोलता। न अच्छे कपड़े पहनने को मिलते हैं और न अच्छा खाना। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि विधवा बेचारी छः या सात वर्ष की ही होती है। उसे यह पता भी नहीं होता कि स्त्री कैसे होती है। माता ज़बरदस्ती उसकी चूड़ियाँ और बिछुए ती है और लड़की चिल्ला कर रोती है। कवि ने विधवा-बाला का विलाप बड़े हृदय-बे शब्दों में लिखा है:—

अत्याचार

रोती हूँ इसलिए कि सुन्दर चूड़ी फोड़ी जाती है !
क्या समझे ! मेरे सुहाग की हड्डी तोड़ी जाती है !!

भजन

माय मोरी तुरियाँ चूँ फोरे मुझे नन्दा बरती हाय !
तू तो तद्दे थी बनें दी नोद्री, एत तुझे धड़वा दूँ तिलरी।
आज उतारे है चूँ सिंदरो, नथ बिछुए मोरे। मुझे०
तड़े छड़े झाँझन अरु बाली, झाँवर नुइयाँ मेरी निताली।
हार पचलड़ी भूँ में दाली, चों फेंदे तोरे॥ मुझे०
हाय माय ! तू हो दई वैरिन, छोड़ मुझे मैं जाऊँ हूँ थेलन।
ताले तरों दे है चों हाथन, है तोरे दोरे। मुझे०
मात सुन सुन खाय पछाड़े, खून बहे सिर दे दे मारे,
छिपे चन्द्र नैनों के तारे। फूटे भाग तोरे॥ मुझे०
हाय शोक दिल टुकड़े होवे, ज्यूँ वह विधवा कन्या रोवे।
पाठक खेलें कूदें सोवें, झूले हिन्डोरे॥ मुझे०

वस्तुतः इसमें उसका दोष नहीं था। चेचक के खाजे से छोटी में विवाह कर दिया गया और अब -पिता के दोष से वह विधवा हो गई, परन्तु उसके निर्दोष होते हुए भी उसे दोष दिया है। आज से वह सभी शुभ कार्यों से बहिष्कृत कर दी जाती है। जब कभी विवाह आदि का शुभ अवसर आता है तो स्त्रियाँ उसे सम्मिलित नहीं करतीं। जब घर का कोई पुरुष परदेश जाने को होता है तो चलते समय उसका मुख नहीं देखता। बहुधा लोग प्रातःकाल भी उसका मुख नहीं देखते, इससे प्रतीत होता है कि हमारी जाति ऐसी पतित हो गई है कि उसको अपनी दुखिया व्यक्तियों से सहानुभूति नहीं रही। इसमें सन्देह नहीं कि विधवा

को घोर दुःख है और वह उसका अनुभव कर रही है; परन्तु जाति का कर्त्तव्य था कि जिस पर विपत्ति पड़ी है उसके साथ सहानुभूति और समवेदना प्रकट की जाती, उसके घावों पर मरहम लगाया जाता, उसके साथ ऐसा बर्त्ताव किया जाता कि जिससे उसको दुःख-रूपी पहाड़ के काटने में कुछ सहायता मिलती, जिससे उसकी कड़ी राह कुछ आसान होती। परन्तु जाति की क्रूरता को तो देखिए कि घायल के घावों पर और निमक छिड़कती है। मरे को मारे शाह मदार! यह भी कोई सभ्यता है? यह भी कोई गौरव की बात है कि गिरे हुए को दो लातें और लगा दो। वस्तुतः बात यह है कि—

जिसके नाहीं पैर बिवाई। वह का जाने पीर पराई।

बहुत से लोग कहेंगे कि हम यह सब विधवाओं की आत्मोन्नति के लिए करते हैं। यदि ऐसा न किया जाय तो यह भोग-विलास में फँस जायँ। लोक की अपेक्षा परलोक का सुधारना अधिक आवश्यक है। परन्तु यह हमारे भोले भाइयों की भूल है। वह यह नहीं समझते कि आत्मोन्नति और परलोक-सुधार किसे कहते हैं। हम ऊपर दिखा चुके हैं कि गुप्त व्यभिचार, वेश्यापन, गर्भपात और बाल-हत्या करने वाली आत्माएँ परलोक-सुधार के लिए जो कुछ कर रही हैं उससे चुप ही भली। परन्तु एक बात और है। जो विधवाएँ रात-दिन के अपमान सहते-सहते इस लोक में स आत्म-गौरव खो चुकीं; जिनके हृदय से वास्तविक आत्मोन्नति का स्रोत ही सूख गया; जिनको केवल इतना ही ज्ञान रह गया है कि हम अधम, नीच और अभागिनी हैं, वे दूसरे जन्म में भी

उन्नति नहीं कर सकतीं। हमारा जीवन सादि और सान्त नहीं, किन्तु अनादि और अनन्त है। यह वस्तुतः एक शृङ्खला है, जिसकी कड़ियाँ हमारे जन्म-जन्मान्तर हैं। जो सामग्री हम इस जन्म में इकट्ठी करते हैं वह दूसरे जन्म में काम आती है। जितनी उन्नति इस में कर चुके हैं उसी के आगे दूसरे जन्म में करेंगे। जिन विधवाओं की उन्नति को इस जन्म में बन्द कर दिया गया वह परलोक में क्या करेंगी? मेरा विचार तो यह है कि जिसने इस जन्म में आत्म-गौरव खो दिया वह दूसरे जन्म में दास ही उत्पन्न होगा।

बङ्गाल तथा अन्य प्रान्तों में विधवाओं को बड़े कड़े-कड़े व्रत रखने पड़ते हैं। यदि कोई विधवा ऐसा नहीं करती तो समस्त घर की स्त्रियाँ उसे कोसतीं और ताने देती हैं। इसी घोर दुख में कभी-कभी उसकी मृत्यु भी हो जाती है। अभी थोड़े दिन हुए एक स -पत्र में एक विधवा की विपत्ति का हाल छपा था। यह बेचारी रोग-ग्रसित थी कि निर्जला एकादशी आ गई, जो ग्रीष्म ऋतु में पड़ा करती है। उस विधवा बीमार को व्रत रखने पर मजबूर किया गया। वह बेचारी अशक्त थी और घड़ी-घड़ी पर पानी माँगती थी, परन्तु क्रूर अन्धविश्वासियों को दया न आई और उन्होंने ज़बरदस्ती उससे उ रखवा दिया। जिस बीमार को घड़ी-घड़ी पर जल की आवश्यकता हो उसे यदि दिन भर जल न मिले तो उसका बुरा हाल होता है। यही गति उसकी भी हुई। सायङ्काल को पानी माँगते-माँगते उसका चिल्लाना बन्द हो गया। घर के लोग कहते थे कि १२ घण्टे की बात है, क्यों व्रत तोड़ कर

इसका ोक विगाड़ा जाय। पाठकवर्ग ! कभी आप पर ऐसा कष्ट पड़ा है? क्या कभी आपने ज्येष्ठ मास की दुपहरी को बिना जल के विताया है? फिर इस पर भी यदि रोग की अवस्था हो तो विपत्ति का क्या कहना ! जब आधी रात का समय हुआ तो बेचारी लड़की की मारे प्यास के सचमुच जान निकलने लगी। परन्तु माँ-बाप उसे सचमुच स्वर्ग भेजना चाहते थे, उनको कुछ भी दया न आई, या यों कहिए कि धर्म के वास्तविक स्वरूप को न जान कर वह अन्धे हो रहे थे। परिणाम यह हुआ कि तीन बजे रात को उस बेचारी विधवा का प्राण-पखेरू मारे प्यास के इस नश्वर शरीर को छोड़ कर उड़ गया।

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ प्रतिदिन सुनने में आती हैं, जिनसे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ६० वर्ष हुए कि इसी देश में विधवाओं पर इससे भी अधिक अत्याचार होते थे और उनको अपने पति के साथ जीवित जलना पड़ता था। इसको लोग सती होना कहते थे। पहले तो स्त्री को अपने पति के साथ के लिए उत्तेजित करते थे और जब वह तैयार हो जाती तो उसे चिता पर रख दिया जाता था। यदि कोई तैयार न होती तो घर के लोग उसे इतने ताने देते और कहते कि इस दुष्टा को अपना शरीर इतना द है कि पति का अनुसरण ही करना नहीं चाहती। कोई कहता था कि यह कुलटा है, कोई कहता कि अजी यह तो यही चाहती थी। इन शब्दों को सुनने की अपेक्षा वह ही पसन्द करती थी और जब एक बार चिता पर पहुँच गई और लगते ही उसने भागना चाहा तो लोग लाठियों के मारे उसे उसी चिता

में भस्म कर देते थे और 'सती'-'सती' के शब्दों से आ गूँज जाता था। वस्तुतः बात यह है कि अपना शरीर किसको प्यारा नहीं होता? और आग में कौन जलना चाहता है? हो ब्रिटिश राज्य का, जिसने सदा के लिए इस प्रकार की क्रूर प्रथा बन्द कर दी। कल यदि कोई सती होने में सहायता या उत्तेजना उत्पन्न है तो उसे दण्ड दिया जाता है।

(५) जाति का ह्रास

ये व्यक्ति हानियाँ तो विधवा-विवाह के प्रचलित न होने से हैं ही, परन्तु इनके अतिरिक्त जातिगत हानियाँ भी हैं, जिनसे हिन्दुओं की संख्या दिन-प्रतिदिन कम हो रही है। १६११ ई० की भारतीय मनुष्य-गणना की जो रिपोर्ट ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की ओर से छपी है उसकी पहली पुस्तक (Vol. I) के प्रथम भाग (Part I) के पृष्ठ ४६ पर लिखा है कि आजकल हिन्दुओं की जन-संख्या २१ करोड़ ७२ लाख है।* एक समय था कि समस्त भारतवर्ष में यही लोग थे। अब घटते-घटते दो-तिहाई रह गए हैं; अर्थात् प्रत्येक तीन में से एक इनसे छिन गया। जो जाति ८ या १० शताब्दियों के हेर-फेर में दो-तिहाई रह जाय वह इतने ही समय के और व्यतीत होने तक सर्वथा नष्ट हो जायगी, यदि बिगड़ने के वर्त्तमान ज्यों के त्यों उपस्थित रहे। हिन्दू लोग समझते हैं कि अभी तो हम बहुत हैं; कुछ चिन्ता नहीं।

---

*१६२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार २१ करोड़ ६७ लाख ३४ हज़ार ५६६ है।

परन्तु यह उनकी भूल है। घटते-घटते करोड़पति का कोष भी एक न एक दिन ख़ाली हो ही जाता है, और बढ़ते-बढ़ते छदम्मी-लाल भी करोड़ीमल हो ही जाते हैं। इसलिए जाति के नेताओं का कर्तव्य है कि उन कारणों पर विचार करें, जिनसे इनकी जन-संख्या में प्रति दिन कमी होती जा रही है।

उसी रिपोर्ट के पृष्ठ १२० पर हिन्दुओं की वृद्धि के विषय में लिखा है :—

The number of Hindus has increased since 1901 by 5 per cent while that of Mohamedans, Sikhs and Budhists has increased respectively by 7, 37 & 13 per cent. As is now well-known, the Hindus are less prolific than the Mohamedans, Budhists and Animists and other communities owing mainly to their Social customs of early marriage and compulsory widowhood. Girls are commonly married long before they reach maturity to men who may be much older than themselves, and a very large proportion of them lose their husbands while they are still of child bearing age or even before they have attained it.

अर्थात्—हिन्दुओं की संख्या १९०१ से प्रति ५ के हिसाब से बढ़ी है, परन्तु मुसलमान, सिक्ख और बौद्धों की क्रमशः ७,३७ और १३ प्रति शतक। यह एक प्रसिद्ध है कि मुसलमान, बौद्ध तथा भूत-प्रेतादि के पूजकों और जातियों की अपेक्षा हिन्दू कम वृद्धिशील हैं। इसका मुख्य और

अनिष्ट वैधव्य आदि सामाजिक कुरीतियाँ हैं। कन्याओं का युवावस्था से बहुत पहले ऐसे पुरुषों से विवाह कर दिया जाता है, जो उनसे बहुत बड़े होते हैं और अधिकांश के पतियों की ऐसी अवस्था में मृत्यु हो जाती है, जब ये सन्तान उत्पन्न करने के योग्य होती हैं; या जो अभी तक सन्तान उत्पन्न करने के योग्य भी नहीं हुईं।

पृष्ठ १२६ पर लिखा है :—

The greater reproductive capacity of the Mohamedans is shown by the fact that the proportion of married females to the total number of females aged 15—40 exceeds the corresponding proportion for Hindus. The result is that the Mohamedans have 37 children aged 0'5 to every hundred persons aged 15—40 while the Hindus have only 33. Since 1881 the number of Mohamedans in the areas then enumerated has risen 26'4 p.c. while the corresponding increase for Hindus is only 15'1 per cent.

अर्थात्—मुसलमानों में अधिक उत्पत्ति-शक्ति होने का एक प्रमाण यह भी है कि १५ वर्ष से लेकर ४० वर्ष की अवस्था की स्त्रियों में स्त्रियों की संख्या मुसलमानों में हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक है। इसका परिणाम यह है कि मुसलमानों में १५ से ४० वर्ष के प्रति १०० मनुष्यों में ५ वर्ष या कम आयु वाले बच्चे ३७ मिलेंगे; परन्तु हिन्दुओं में केवल ३३। १८८१ ई० से इधर मुसलमानों में प्रति शतक २६'४ वृद्धि हुई और हिन्दुओं में केवल १५'१ ही।

पृष्ठ १२१ पर लिखा है :—

The Mohamedans and Christians also have a considerably larger proportion of children than the Hindus, whose Social customs are less favourable to rapid growth. Hindu girls are as a rule married before puberty, and the difference in age between them and their husbands is often very great. A very large proportion of them become widows while they are still capable of bearing children and these are frequently not allowed to marry again.

अर्थात्—मुसल्मान और ईसाइयों में हिन्दुओं की अपेक्षा की संख्या बहुत अधिक है, क्योंकि हिन्दुओं के सामाजिक नियम जन-वृद्धि के अनुकूल नहीं हैं। हिन्दू-लड़कियाँ युवावस्था से पूर्व ही ब्याह दी ी हैं, और उनकी तथा उनके पतियों की आयु में बड़ा अन्तर होता है। इनमें से अधिकांश तो ऐसे समय विधवा हो जाती हैं जब कि उनमें उत्पत्ति की पूर्ण रूप से शक्ति होती है और बहुधा उनको पुनर्विवाह की आज्ञा नहीं दी जाती।

१६६ वें पृष्ठ पर एक चित्र दिया जिससे विदित होता है कि बङ्गाल में ६ वर्ष से नीचे या २२ वर्ष से ऊपर, बम्बई प्रान्त में १६ वर्ष से नीचे या ३७ वर्ष से ऊपर, मद्रास प्रान्त में ६ वर्ष से नीचे या २१ वर्ष से ऊपर, संयुक्त-प्रान्त में ८ वर्ष से नीचे या १८ वर्ष से ऊपर मनुष्यों की अपेक्षा स्त्रियाँ कम मरती हैं, अर्थात् चूँकि ६ या १० वर्ष से पूर्व ही लोगों का विवाह हो है, लिए अधिक स्त्रियाँ इसी अवस्था में विधवा हो जाती हैं। यह

बात पृष्ठ २७८ पर दिए हुए एक और चित्र से भी विदित होती है; अर्थात् हिन्दुओं में प्रति एक सहस्र मनुष्यों में पाँच वर्ष तक की आयु की ९; १० से १४ वर्ष तक की आयु की १७; १५ से ४० वर्ष तक की आयु की १२४ और ४० वर्ष से ऊपर की ६२७। प्रकार प्रत्येक अवस्था की विधवा को मिला कर प्रति १००० पर १८८ विधवाएँ हैं अर्थात् जन-संख्या का लगभग पाँचवाँ विधवा है।

२७३ वें पृष्ठ पर लि है :—

The statistics of marriage by caste show that except in Bengal, the proportion of widows is greatest among the higher castes. Thus in Behar and Orrissa, of every 100 females aged 20—40, more than one fifth are widowed among the Babhans, Brahmans, Kayasthas and Rajputs. In Bombay among Brahmans are one-fourth.

अर्थात्—विवाहित जन-संख्या के जाति-आत्मक अङ्कों से होता है कि बङ्गाल को छोड़ कर अन्य प्रान्तों में विधवाओं की संख्या उच्च जातियों में अत्यधिक है। बिहार और उड़ीसा में बीस से लेकर चालीस वर्ष तक की प्रति १०० स्त्रियों में पाँचवें भाग से अधिक विधवाओं की संख्या बाभन, ब्राह्मण, कायस्थ और राजपूतों में है। बम्बई में ब्राह्मणों में चौथाई विधवाएँ हैं।

इसका कारण यही है कि उच्च जातियों में विधवा-पुनर्वि का निषेध है। समस्त भारतवर्ष में १५ से ४२ वर्ष के भीतर की स्त्रियों में ११ प्रति शतक विधवाएँ हैं; हिन्दुओं में १२ प्रति

शतक और मुसलमानों में ६ प्रति । मुसलमानों में भी इतनी विधवाओं के होने का कारण यह है कि, यद्यपि उनके यहाँ विधवा-विवाह की विधि है; तथापि हिन्दुओं की देखा-देखी मुसलमान उच्च वंश भी विधवाओं का बहुत कम विवाह करते हैं। और इस प्रकार हिन्दुओं के दोष मुसलमानों में भी प्रवेश करने लगे हैं, यद्यपि आधिक्य के साथ नहीं।

हिन्दुओं के सामाजिक दोष इनको अन्य जातियों की अपेक्षा कई गुनी हानियाँ पहुँचाते हैं। यह एक विचित्र बात है कि जो रोग मुसलमान आदि को कम हानि पहुँचाता है वही रोग हिन्दुओं के लिए अधिक हानि का कारण हो जाता है। वस्तुतः बात भी यह है कि दीर्घ रोगियों के लिए छोटी सी बीमारी भी मृत्यु का होती है।

जन-संख्या पर दृष्टि ने से प्रकट होता है कि कई सौ वर्षों से हिन्दुओं की संख्या कम और मुसलमानों की अधिक हो रही है; और दिन पर दिन घटते-घटते हिन्दू आज दो तिहाई रह गए हैं। यह तो एक प्रसिद्ध बात है कि जो भारतवर्ष में छः करोड़ छि लाख मुसलमान पाए जाते हैं, उनमें से एक करोड़ भी बाहर से नहीं आए। परन्तु, इन्होंने हिन्दुओं में से ही अधिक पुरुषों को लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि जितनी संख्या हिन्दुओं की कम हुई, उतनी मुसलमानों की बढ़ गई और इसका एक मुख्य कारण हिन्दुओं में विधवा-विवाह के प्रचार का अभाव था। मनुष्य-गणना की रिपोर्ट के १२१ वें पृष्ठ पर लिखा है :—

Though there is at present no organized proselytism

by the Mullas, here and there individuals are constantly attorning to Mohamedanism.........in the case of widows, the allurement of an offer of marriage. Whenever there is a love affair between a Hindu and a Mohamedan, it can only culminate in an open union if the Hindu goes over to Islam, while the discovery of a secret liaison often has the same sequel.

अर्थात्—यद्यपि आजकल मुसलमानों में मुल्लाओं के द्वारा मुसलमान बनाने की नियम-बद्ध संस्था नहीं है, तथापि एक-दो व्यक्तियाँ सदैव मुसलमानों में मिलती ही रहती हैं......। और विशेषकर विधवाएँ हैं, जिनको वहाँ विवाह का है। जब कभी किसी हिन्दू और मुसलमान में प्रेम होता है तो हिन्दू मुस- हो जाता है, और खुल्लमखुल्ला विवाह हो जाता है, और यदि गुप्त प्रेम होता है तो भेद के खुल जाने पर भी वही परिणाम होता है।

वस्तुतः देखा गया है कि यदि ख़रबूज़ा छुरी पर गिरे तो भी ख़रबूज़ा ही कटता है, और यदि छुरी ख़रबूज़े पर गिरे तो भी ख़रबूज़ा को ही हानि पहुँचती है। यही हाल हिन्दू और मुसलमान का है। यदि कोई मुसलमान किसी हिन्दू-स्त्री से फँस है तो वह हिन्दू-स्त्री तथा उसकी सन्तान मुसलमान हो जाती है, और यदि कोई हिन्दू किसी मुसलमानिन के लग है तो वह हिन्दू-पुरुष तथा उसकी सन्तान मुसलमान हो जाती है। दोनों प्रकार से हिन्दुओं की क्षति और मुसलमानों की

वृद्धि होती है। वस्तुतः हिन्दू इतने निर्बल हो गए हैं। इनका न वीर्य प्रधान है और न रज। मुसलमानों के रज और वीर्य दोनों ही प्रधान हैं।*

---

* आजकल एक और कठिनाई आ उपस्थित हुई है। जो जातियाँ नीच समझी जाती हैं वह सब उठने की कोशिश कर रही हैं। यह तो अच्छा ही है, परन्तु बुराई यह है कि वे उच्च जातियों के गुणों का अनुकरण न करके उनके दोषों का अनुकरण करती हैं। बहुत दिनों से हिन्दुओं की उच्च जातियों में मूर्खतावश यह बात प्रसिद्ध कर दी गई है कि विधवा-विवाह करना नीचपन है। इसलिए नीच जातियाँ, जिनमें पहले से विधवा-विवाह होता था, उच्च बनने के लिए विधवा-विवाह को त्यागती जाती हैं। मर्टिन महोदय (J. T. Marten) Census of India 1921 Vol. I Part 1 के पृष्ठ १६१ पर लिखते हैं:—

There is, on the other hand, some reason to suppose that the restriction in widow remarriage is actually increasing among the classes in the lower ranks of the social scale and is likely still further to increase. The custom is one which, more than any other, is associated with Hindu Orthodoxy, and it is in consequence one of the first to be adopted by an ambitious community which is attempting to better its social condition. To imitate the customs of the highest classes is to acquire some increase of tone and respectability; and this desire to better their status which,

अब मुसलमानों के अतिरिक्त एक और धर्मानुयायी मैदान में आ गए हैं, जो हमारी विधवाओं के लिए हाथ फैलाए

as the country develops, is gaining in extent and intensity especially among the depressed classes and the aboriginal tribes, finds its first expression in an assumption of the most characteristic and imposing traditions of the twice-born castes.

"इसके अतिरिक्त कुछ प्रमाणों से सिद्ध होता है कि विधवा-विवाह में रुकावटें छोटी ॓ ों में बढ़ रही हैं; और बढ़ने वाली हैं। यह रिवाज हिन्दू धर्म का विशेष अङ्ग है, इसलिए जो जाति बढ़ना चाहती है वह पहले विधवा-विवाह में रुकावट पैदा करती है। बड़ी जातियों के रिवाज के अनुकरण करने से गौरव बढ़ है। इस बढ़ने की इच्छा दलित जातियों तथा प्रारम्भिक जातियों में बहुत पाई जाती है। वे द्विजों में सम्मिलित होने के लिए इसी बात का अनुकरण करती हैं।" पृष्ठ १६२ पर लिखा है :—

In the United Provinces, although the Bhuinhars (240), Brahmans (234) Kayasthas (210) and other high castes have the highest proportion of widows, the figures suggest a tendency among the lowest castes to regard widow-remarriage with increasing disfavour; the Pasis, Bhangis, Chamars, and Dhobis all have appreciably more widows than they had ten years ago.

रहते हैं। इनका नाम है ईसाई। इनकी संख्या मुसल-
मानों की अपेक्षा भी बढ़ रही है। १८८१ ई० में केवल १८ लाख

"संयुक्त प्रान्त में यद्यपि भूमिहार, ब्राह्मण, कायस्थ तथा ऊँची जातियों में अधिक विधवाएँ हैं, तथापि नीच जातियों में विधवा-विवाह को बुरा समझने का रिवाज बढ़ रहा है। पासी, भङ्गी, चमार और धोवियों में दस वर्ष पहले की अपेक्षा कम अधिक विधवाएँ हैं।"

"In the North-West Frontier Province the Chamars, Chuhars, Jhinwars, Mochhis, and Telis actually have a higher proportion of widows than the high caste Hindus." (p. 162).

" पश्चिमीय सीमा प्रान्त में चमार, चुहड़े, ि , माछी तथा तेलियों में उच्च जातियों की अपेक्षा विधवाओं की संख्या बहुत है।"

"Similarly the proportion of widows per 1000 females among the Goalas, who are the largest caste in Behar & Orissa and have been making constant efforts to raise themselves in the Hindu Scale, has increased slightly, from 168 to 173." (p 162).

"इसी प्रकार ग्वालों में जो बिहार और उड़ीसा में सबसे बड़ी जाति हैं और जो हिन्दुओं में अपनी जाति का दर्जा बढ़ाने की निरन्तर कोशि करते रहे हैं, विधवाओं की संख्या कुछ बढ़ गई है, अर्थात् १००० में १६८ के बजाय १७३ हो गई है।"

९२ हज़ार ईसाई थे। परन्तु चालीस वर्ष में ही उनकी संख्या ४७ लाख ५४ हज़ार अर्थात् २॥ गुनी अधिक हो गई।* इस सबके उत्तरदाता हिन्दू हैं। मुझे याद है कि एक खत्री-विधवा का एक समय एक बङ्गाली ब्राह्मण-युवक के साथ अनुचित सम्बन्ध हो गया। हिन्दुओं में उनका विवाह दुस्तर क्या, असम्भव था। अतः वे दोनों ईसाई हो गए। इस उन दोनों के ६ बच्चे हैं।† इनमें कई लड़के और लड़कियाँ हैं। जब इन लड़के-लड़कियों का विवाह होगा तो बहुत शीघ्र ६ के ५० हो जायँगे! इस हिन्दू-जाति ने विधवा-विवाह का निषेध करके, अपने दो व्यक्ति खोकर, थोड़े ही दिनों में ५० की संख्या कम कर दी। और इन ५० के प्रचार के कारण जो हिन्दू ईसाई हो जायँगे उनकी संख्या अगणनीय है।

जो हिन्दू लोग विधवा-विवाह का निषेध इसलिए करते हैं कि ब्रह्मचर्य की वृद्धि होगी, वह सर्वथा भूलते हैं। ब्रह्मचर्य की वृद्धि तो होती नहीं, होता वही है जो प्रकृति के नियमानुसार होता

यह अङ्क तारस्वरेण रहे हैं कि सुधारकों को चारों ओर दृष्टि रखनी पड़ेगी। जहाँ दलित जातियों को उठाने की कोशिश है वहाँ यह भी कोशिश होनी चाहिए कि जिन बुराइयों से ऊँची जातियाँ पीड़ित हो रही हैं वह इन जातियों में न फैलने पावें, नहीं तो सुधार के बदले बिगाड़ होगा।

*१९२१ ई० की मनुष्य-गणना के अनुसार भारतवर्ष में ४७ लाख ५३ हज़ार ९३७ ईसाई हैं।

† यह बात मैंने १९१८ में देखी थी। अब कुछ नहीं है।

है ; परन्तु हिन्दुओं की संख्या घट कर अन्य जातियों की बढ़ जाती है । आजकल प्रत्येक स्थान में देखा जाता है कि हिन्दू-विधवाएँ निकल कर अन्य जातियों के घर में बैठ जाती हैं । यदि विधवा-विवाह जारी होता तो ऐसा कभी न होता । हिन्दू लोग अपने को उत्कृष्ट रखना चाहते हैं; परन्तु उनको पता नहीं कि उत्कृष्टता सामाजिक वस्तु है, व्यक्तिगत नहीं । अर्थात् आप अकेले धर्मात्मा बन ही नहीं सकते, जब तक आपके साथी भी साथ-साथ धर्मात्मा न बनें । जो मनुष्य झूठ से बचना चाहता है उसे यत्न चाहिए कि सत्यवादी बने, नहीं तो उसे भी झूठ बोलना ही पड़ेगा । जो मनुष्य मांस से घृणा करता है ; परन्तु मांसाहारियों से -भक्षण छुड़ाने का यत्न नहीं , उसको याद रखना चाहिए कि कम से कम मांस की दुर्गन्ध ही उसकी नाक द्वारा उसके पेट में पहुँचेगी । इसी यदि व्यभिचार में फँसा हुआ है तो या का परिवार ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर ही नहीं सकता ।

यदि केवल हिन्दू ही हिन्दू संसार में होते तो सम्भव था कि विधवा-विवाह न करके भी इन विधवाओं को हिन्दू-जाति में रहने देते । परन्तु जब जातियाँ भी उन विधवाओं को लेने और उनसे विवाह करने को तैयार हैं, तो उनका हिन्दू रहना कैसे सम्भव हो सकता है ?

बहुत से लोग कहेंगे कि हमको जन-संख्या बढ़ाने की परवाह नहीं, हम तो गुण-वृद्धि चाहते हैं । हिन्दू-धर्म में दो आदमी ही रहें और अच्छे रहें, यह अच्छा है और सहस्रों अधर्मी रहना अच्छा

नहीं। परन्तु यह उनका स्वार्थ है, जो धर्म के मूल तत्त्व से सर्वथा विरुद्ध है। दो आदमी भी तभी धर्मात्मा रह सकते हैं, जब उनको धर्म पर स्थित रखने के लिए अनेक पुरुष उ ति हों। सहस्रों के अधर्मी रहते हुए दो का भी धर्मात्मा रहना है। यदि आपके नियम इस के हैं कि आपके मित्र मित्रता छोड़ कर शत्रु बन रहे हैं, तो ऐसे नियमों से अनियमित होना ही भला! जिन लोगों ने विधवा-पुनर्विवाह इस समय कराए हैं, वह उनको वैदिक धर्म के अनुयायी रखने में कृतकार्य हुए हैं। . ी सन्तान पूर्व की भाँति ही राम और कृष्ण की भक्त है और वेद- पर श्रद्धा रखती है। परन्तु जब पुनर्विवाह के शत्रुओं के विधवाएँ ईसाई या मुसलमान हो गईं तो उनकी स सदा के लिए वेद-विमुख हो गई और राम, कृष्ण के स्थान में ईसा, अली आदि को अपने पूर्वज मानने लगेगी। इस प्रकार विधवा-विवाह के विरोधी वस्तुतः वैदिक धर्म के मित्र नहीं, किन्तु शत्रु ठहरते हैं। हम प्रमाण देकर बता चुके हैं कि वैदिक धर्म अक्षत-योनि विधवा के पुनर्विवाह को विधियुक्त बताता है। परन्तु यदि ऐसा न होता तो भी की दशा को देख कर विधवा-विवाह की आज्ञा देना ही उचित था, क्योंकि आजकल वैदिक धर्म के आदर्श तक ले जाने के लिए लोगों को कई ऐसी अवस्थाओं से गुज़रना है, जो यदि निरन्तर धर्म नहीं तो धर्म की ओर ले जाने वाली ज़रूर हैं; और जिन पर न गुज़रने से हम वैदिक आदर्श तक पहुँच ही नहीं सकते।

इस समय विधवा-विवाह का विरोध करने से कई गौओं की

हत्या का पाप लगता है। वह इस प्रकार। सभी जानते हैं कि यद्यपि चींटी मारना पाप है, किन्तु बकरी के मारने में सैकड़ों चींटियों के मारने के बराबर पाप लगता है और गौ के मारने में कई बकरियों के बराबर। इसी प्रकार मनुष्य के मारने में कई गौओं के बराबर पाप होता है। विधवा-विवाह के विरोधी भ्रूण-हत्या की वृद्धि के एक मुख्य कारण हैं; अतएव गो-हत्या के पाप से वह मुक्त नहीं हो सकते। स्मृति भी कहती है कि भ्रूण-हत्या और ब्रह्म हत्या बराबर है। अतः ब्रह्म-हत्या के पाप से बचना भी विधवा-विवाह विरोधियों के लिए दुस्तर है। इसके अतिरिक्त विधवा-विवाह के न होने से वेश्याओं की वृद्धि हो रही है; और यह एक प्रसिद्ध बात है कि वेश्याओं की आय का एक अंश गौओं के वध की भेंट होता है। इस प्रकार विधवा-विवाह करने से गो-हत्या में भी बहुत-कुछ कमी हो सकती है।



बारहवाँ अध्याय

विध ों । चिट्ठा



त १८ फ़रवरी सन् १९२३ के सहयोगी उर्दू 'प्रताप' (लाहौर) का कहना है :—

मौज़ा बागड़ियाँ, ज़िला लुधियाना की एक विधवा को अपने सम्बन्धी के साथ अनुचित सम्बन्ध होने के कारण गर्भ रह गया और बच्चा उत्पन्न हुआ। बच्चा पैदा होने की कोई रिपोर्ट दाख़िल नहीं की गई। गाँव के पास एक स्थान पर नवजात बच्चा फेंक दिया गया; जिसकी लाश कुत्ते नोच-नोच कर खा रहे थे। पुलिस में ख़बर पहुँचने पर भारतीय दण्ड-विधान की ३१८ वीं धारा के अनुसार उस विधवा का चालान किया गया......।

*

पुत्र की घातक माता

बम्बई प्रान्त में २५ अगस्त १९१७ ई० को बाई नाम की एक विधवा के एक लड़का उत्पन्न हुआ। उसके मित्र गिराम और उसकी स्त्री वहीं उपस्थित थे। लड़का जीवित उत्पन्न हुआ था। कुछ देर के बाद । चिल्लाने लगा। गङ्गाबाई ने अपना पैर उसके गले पर पटक कर उसे मार डाला और लड़के को एक कपड़े

में लपेट कर अपने यार को दे दिया। वह उसे कहीं छिपा आया।
दिन लड़के की लाश मिली और काशीराम पकड़ा गया।

बच्चे को फाँसी

३ कार्तिक १९७४ विक्रमी के "आर्य गज़ट" लाहौर में एक सज्जन लिखते हैं :—

हमारे यहाँ एक वैश्य अग्रवाल की १४ वर्ष की लड़की विधवा हो गई और कुछ दिनों पश्चात् एक जुलाहे नौकर से फँस गई। जब गर्भ रहने का हाल जेठ और ससुर को मालूम हुआ तो मैके भेज दी गई। जब माँ-बाप को पता मिला तो उसे लुधियाना अस्पताल में भेजा गया। परन्तु गर्भ के कारण ा-पिता उसके साथ न गए। किन्तु दो और पुरुषों को साथ कर दिया गया कि या तो गर्भ गिरा आवें या उस लड़की को खो आवें। वह लड़की पहिले मिस जोन के पास गई, फिर हरिद्वार चली गई। वहाँ उसके बच्चा उत्पन्न हुआ जो उसी समय फाँसी लगा कर गङ्गा जी में डुबो दिया गया। लड़की घर वापस आ गई; परन्तु अब माता-पिता की यह कोशिश थी कि उसको किसी प्रकार मार दिया जावे। इस भय से लड़की किसी का पकाया भोजन न करती, रात रोती और लड़की की माँ उसको बहुत तङ्ग किया करती थी। इस वर्ष कई स्त्रियों ने गुरुकुल काङ्गड़ी जाने का विचार किया जिनमें वह भी एक थी। मुझे ज्ञात न था इसलिए ले आया। गुरुकुल में हरिद्वार आकर वह लड़की गुम हो गई। थोड़े दिनों पश्चात् ससुराल से पता चला कि हरिद्वार से रेल में सवार होकर लड़की जुलाहे नौकर के

घर पहुँची और पुलिस ने गिरफ़्तार करके उसे जेठ के सुपुर्द किया। इस समय न ससुराल वाले उसे रखते हैं, न मैके वाले ; उ बुरा हाल है।



बच्चा फेंक दिया गया

तीर्थराज प्रयाग में अगस्त १९१९ में एक अभियोग था, जिसका वृत्तान्त यह है :—

एक विधवा गोमती और उसके ससुर केदारनाथ पर एक मुक़दमा था, जिसमें उन पर दोष लगाया गया था कि उन दोनों में अनुचित सम्बन्ध था। उससे जो बच्चा उत्पन्न हुआ उसको एक वृक्ष के नीचे फेंक दिया गया, जिसे एक मातादीन नामक पुरुष ने देखा और पुलिस में पहुँचा दिया। आठ दिन पीछे वह मर गया। केदारनाथ कहता है कि गोमती का एक ब्राह्मण से सम्बन्ध था, यह उसी का लड़का है।



प्रयाग का दूसरा मा र

लगभग दो वर्ष हुए इलाहाबाद के अहियापुर मोहल्ले की एक गली में, जहाँ कूड़ा फेंका था, एक नवजात बालक की पाई गई थी। बच्चे में उस समय कुछ-कुछ जान बाक़ी थी। बालक लम्बे क़द का बहुत सुन्दर और प्यारा था। वह रस्सियों से इस बुरी तरह जकड़ कर बाँधा गया था कि उसके मुँह से ख़ून जा रहा था। अहियापुर-निवासी घर-घर इस घटना से परिचित हैं......।



लोहार के घर में ब्राह्मणी

सोनीपत के निकट एक गाँव ब्राह्मणों की गढ़ी है, वहाँ सन् १९१७ ई० में एक विधवा ब्राह्मणी लोहार के घर में बैठ गई। उसका पिता पुनर्विवाह करने को राज़ी था, परन्तु उसके भाई-बान्धवों ने उसका विरोध किया। अब वह और लोहार कालका में है।



हृषिकेश में बाल-हत्या

एक विधवा ब्राह्मणी की सास ने ा सम्पत्ति एक हृषिकेश के महन्त के सुपुर्द कर दी कि वह विधवा उसके संरक्षण में रह कर भगवान का स्मरण करे। सास के मरने पर वह हृषिकेश में रहने लगी। परन्तु वहाँ उसे गर्भ रह गया। गर्भपात का बहुत यत्न किया गया, पर बच्चा उत्पन्न ही हुआ; जिसे बड़ी भयानक रीति से मारा गया। उस विधवा की भी बड़ी हृदय-वेधक दुर्गति हुई। हा दैव !!



ससुराल की दुकान के सामने वेश्या

लुधियाना के एक प्रसिद्ध वंश की कन्या ज़िला जालन्धर में विवाही थी। थोड़े दिनों में उसका आचार बिगड़ने लगा। ससुराल वालों से पुनर्विवाह के लिए कहा गया, परन्तु उन्होंने कहा हमारी नाक कट जावेगी। उसका आचार और भी बिगड़ने लगा, तब लोगों ने किसी के साथ उसका पुनर्विवाह कर दिया। इस

पर उसके ससुराल वाले बड़े क्रुद्ध हुए कि हमारे घर की विधवा दूसरे घर में बैठी है। बिरादरी को उसकाया और उस लड़की को बड़ा तङ्ग किया गया। अन्त में उसके दूसरे पति ने उसके ससुराल वालों के कहने से उसे निकाल दिया। अब वह ससुराल वालों की दूकान के सामने ही वेश्या बन कर बैठी है। शायद अब तो उनकी नाक बच गई होगी।



मुसलमान के साथ निकाह

आर्य-समाज-मन्दिर लाहौर में एक विधवा अपनी लड़की के आई और शुद्ध होने की प्रार्थना की। इसका वृत्तान्त उसी के मुख से यह है :—

मैं एक हिन्दू थानेदार की स्त्री हूँ, जिसकी दो स्त्रियाँ थीं। थानेदार बूढ़ा था और मेरा विवाह इसके बुढ़ापे में हुआ था। थानेदार की मृत्यु पर मेरी सौत की सन्तान ने अभियोग किया; क्योंकि थानेदार अपनी सब जायदाद मुझे दे गया था। मेरा कोई तरफ़दार न था। मैं पूर्ण युवा थी। मैंने स्वयं ही मुक़दमे की पैरवी की। दो वर्ष तक मेरी दुर्गति रही और मैं मुक़दमा भी हार गई। तब एक मुसलमान मिला जिसके साथ मुसलमान बन कर निकाह कर लिया। इससे पहले एक लड़की मेरे पैदा हो चुकी थी। अब मुसलमान से भी न बनी। मुझे अपनी पुरानी दशा पर पश्चात्ताप है और शुद्ध होना चाहती हूँ।

एक ज़मींदार क़त्ल

बाबू प्राण कि टो बङ्गाल के एक ज़मींदार अपने पड़ोस की एक २० वर्ष की विधवा से सम्बन्ध रखते थे। एक दिन विधवा को घर में न पाकर उसके भाई और चचा क्रिस्टो के घर में पहुँच गए और उसको वहीं मार डाला; मुक़द्दमा भी चलाया।

१८ वर्ष के लिए लापानी

ज़िला बिजनौर के एक रईस ने मरते समय युवती छोड़ी, जिसका शीघ्र ही एक ज़मींदार से अनुचित सम्बन्ध हो गया। यह बात उसके भान्जे को बुरी लगी और उसने ज़मींदार को बन्दूक़ से मार दिया। कहते हैं कि भान्जे का भी दोष था। अब वह १८ वर्ष की सज़ा भोग रहा है। उस स्त्री का अब भी यही हाल है।

ग ती को विष

राजपूताने की एक रि त में ओसवाल जाति के एक पुरुष की विधवा चाची किसी गर्भवती हो गई। लाला जी ने विष देकर अपनी चाची और गर्भस्थ बच्चे दोनों को समाप्त कर दिया। यह वह हैं जो चींटी को मारना भी पाप समझते हैं।

भ्रूण-हत्या की पु रावृत्ति

ज़िला मुरादाबाद की एक विधवा को गर्भ रह , जो उसके पिता ने बड़े यत्न से गिरवाया। जब वह लड़की ससुराल

पहुँची तो देवर से गर्भ रहा, वह भी गिराया गया। इस समय बिरादरी जानती है कि उसका देवर से गुप्त सम्बन्ध है।



पिता और वि वा-पुत्री

सेण्ट्रल इण्डिया की एक रियासत में एक बाल-विधवा महाजनी का उसके पिता से..........................पुलिस में रिपोर्ट हुई। हा दैव !!



"देवदर्शन" में भी स्त्रियों के छपे हैं, वह इस प्रकार हैं :—

'विश्वबन्धु के मकान के पास ही एक कुलीन महाशय का घर था। उनके यहाँ एक परम रूपवती विधवा थी। उनके यहाँ परदे का बड़ा नियम था, तो भी विश्वबन्धु उनके यहाँ बेरोक-टोक जाया करते थे। कुछ दिनों के बाद न जाने क्यों ब्राह्मण महाशय ने छोड़ देने का निश्चय किया। तब विश्वबन्धु ने ि माँ से कह-सुन कर उस मकान को ख़रीद लिया।

म य सपरिवार अपने देश (क़न्नौज) चले गए; और उस म की मरम्मत शुरू हुई। एक क़ोठरी जिसे पण्डिताइन "ठाकुर जी की कोठरी" कहा करती थीं और जो में केवल कुल-देव की पूजा के खोली जाती थी, (बड़ी सड़ी नम और बदबूदार थी) उसे पक्की करा देना निश्चय कि । जब मिट्टी को मज़दूर खोदने , सुना है कि उसमें से एक ही उम्र के

कई बच्चों के पञ्जर निकले। एक तो हाल ही का दफ़नाया हुआ ज्ञात पड़ता था।

लेखक का फिर कहना है :—

सिविल सर्जन साहब जेल और अस्पताल आदि से लौट कर लगभग एक बजे बँगले पर आए। मेज़ पर तार मिला, जिसका आशय यह था—"रोगी सख़्त बीमार है, जल्दी आने की कृपा कीजिए ; देवदत्त।" साहब बड़े दयालु थे। उसी समय घोड़े पर सवार हो गए। उन्होंने देवदत्त के घर जाकर पूछा कि रोगी कहाँ है? देवदत्त हाँफते-हाँफते आए और बोले हुज़ूर बड़ी ग़लती हुई ; माफ़ कीजिए। साहब ने डपट कर पूछा कि रोगी कहाँ है? देवदत्त गिड़गिड़ाते हुए साहब के हाथ में फ़ीस रख कर पैरों पर लोट गए और गर्भपात की दवा पूछने लगे। साहब लाल हो गए, ज़मीन पर ज़ोर से पैर पटक कर छिः कह कर लौट गए। बँगले पर पहुँच कर उन्होंने इस बात की सूचना पुलिस-कप्तान के पास भेज दी।

उसी दिन रात को देवदत्त की चचेरी बहिन अकस्मात मर गई और रातोंरात चिता पर भस्म कर दी गई। यह विधवा थी। कई दिनों के बाद देवदत्त की तलबी कोतवाली में हुई। सुना जाता है कि वहाँ के देवता ने अपनी पूजा पाई और रिपोर्ट में लिख दिया कि देवदत्त एक प्रतिष्ठित रईस हैं। उस दिन उनकी बहिन को हैज़ा हो गया था, इसीलिए साहब को बुलवाया था। वे गर्भपात नहीं, बल्कि बन्देज की दवा पूछना चाहते थे और यह क़ानूनन कोई जुर्म नहीं है।

इसके अतिरिक्त नीचे ऐसी विधवाओं के बयान तथा पत्र दिए जा रहे हैं जिनके माता-पिता तथा ससुराल वालों ने उन्हें तीर्थ-स्थानों में छोड़ दिया है :—

(१) रामकली, विन्ध्याचल—मैं क्षत्राणी हूँ। मेरे भाई दर्शन कराने के बहाने से मुझे छोड़ गए। उनके इस तरह त्याग का कारण मैं समझ गई। इसलिए मैंने कभी पत्र नहीं भेजा और न लौटने की चेष्टा की। अब भीख माँग कर ी गुज़र करती हूँ, मैं सर्वथा असहाय हूँ और कोई ज़रिया पेट पालने का नहीं है। उमर २०-२२ वर्ष की है। यहाँ मुझ-सी अभागिनी ८-९ स्त्रियाँ और हैं। चरित्र ठीक नहीं है।

❦

(२) लक्ष्मी, वृन्दावन—मैं ब्राह्मणी हूँ। मेरी सास आदि कई स्त्रियाँ मुझे यहाँ छोड़ कर चल दीं। पत्र भेजने पर उत्तर मिला कि ा कर्त्तव्य स्मरण करो। यहाँ लौट कर क्या मुँह दिखाओगी। वहाँ जमुना में डूब मरो। मेरी माँ नहीं है। पिता ने मेरे पत्र का कभी उत्तर नहीं दिया।

❦

(३) श्यामा, हरिद्वार—मेरे पिता मुझे यहाँ छोड़ गए हैं..........!

❦

(४) राजदुलारी, गया—मेरे ससुराल के लोग बड़े धनी हैं। यहाँ मुझे पुरोहित जी छोड़ गए हैं। कुछ दिनों तक पाँच

रुपया मासिक आता रहा। पर अब कोई ख़बर नहीं लेता। पत्रो-त्तर भी नहीं ।



(५) नलिनी और सरोजनी, काशी—हम दोनों अभागिनें बङ्गाल की रहने वाली हैं। हम दोनों का एक ही घर में विवाह हुआ था। नलिनी विधवा हो गई। मेरे पति मुझे एक लड़की होने पर वैराग लेकर चल दिए। मेरे ससुर जो १०) मासिक पेन्शन पाते थे, काशी-वास करने यहाँ आए और हम दोनों को साथ लेते आए। तीन महीने बाद वह मर गए। एक परिचित बङ्गाली महाशय सहायता देने के बहाने से मिले और एक दिन हम दोनों का ज़ेवर चुरा ले गए। फिर इसी से लगी हुई पुलिस की एक घटना से बलपूर्वक हम अनाथों का सर्वनाश किया गया और इस दीन-हीन दशा को पहुँचाई गईं। एक सौ बीस रुपया क़र्ज़ हो गया है। इस पुत्री के सयाने होने पर इसी को बेच कर

वेश्या बना कर क़र्ज़ अदा करूँगी।



मुसम्मात मायादेवी, ब्राह्मणी, मौज़ा अशरफ़पुर, थाना जलालपुर अथवा बसरवारी, ज़िला फ़ैज़ाबाद—

मेरा विवाह बहुत बचपन में मेरे माता-पिता ने अपना धर्म

कर कर दिया। दो वर्ष पश्चात् मेरा पति मर गया। मैं विधवा हो गई। विधवा होने की वजह से ससुराल और मायके में, दोनों ओर मेरा निरादर होता था। खाने-पीने को ठीक न मिलता था। कपड़े तक अच्छे नहीं पहन सकती थी। शादी-विवाह

में विधवाओं का शरीक होना पाप था। मैं हो गई। घर वालों ने मेरा कोई इन्तज़ाम नहीं किया। सरदारसिंह हि , जो मौज़ा भल्लू, ज़िला गु का रहने है, कपड़ा बेचने को करता था। वह मुझे लालच देकर भगा । १० वर्ष तक उसके घर में रही। वहीं पर मेरे एक लड़की पैदा हुई। जब मैं कुछ बीमार हुई, काम करने के क़ाबिल न रही तब उसने एक दिन मेरे पेट में एक ज़ोर के मारी; मैं ज़मीन पर गिर पड़ी। मेरे पाख़ाने और पेशाब की जगह से ख़ून गिरने लगा। उसने मेरा ज़ेवर और पैसा छीन कर निकाल दिया। अब बीमार होकर धर्म- में पड़ी हूँ। मेरी लड़की घरों से रोटी माँग लाती है; तब खाती हूँ। अब वह एक मोहनी नाम की णी बारा-बङ्की के ज़िले से भगा और २००) रु० में स्यालकोट बेच आया है। से सैकड़ों औरतें पञ्जाब में भगा लाई जाती हैं और बेची जाती हैं। प्रायः कपड़े बेचने वाले पूरब से औरतें भगा लाते हैं। बहुत सी हिन्दुओं की औरतें मुसलमानों के फ़रोख़्त की गई हैं। बहुत सी हिन्दुओं की औरतें ईसाइन भी हो गईं। यह केवल बाल-विवाह का है। अब मेरी बहुत बुरी दशा है।

निशानी अँगूठा—मायादेवी

मुसम्मी रामलाज बेटा मायादेवी—मेरी १२ वर्ष की है। मेरा पहला बाप हाकिमसिंह सन्तपुर, ज़िला गुजरात का था। फिर मेरी माँ मायादेवी सरदारसिंह, ग्राम भल्लू, ज़िला गुज-रात वाले के घर आई। अब उसने मुझे और मेरी माँ को निकाल

दिया। वह सख़्त बीमार है। यहाँ से ̣ बेचने वाले पूर्व में जाते हैं और औरतों को निकाल लाते हैं। मुसलमानों के हाथ बेच डालते हैं। ब्राह्मण-क्षत्रियों की सैकड़ों औरतें मुसलमान हो गई हैं।

निशानी अँगूठा—रामलाल, झेलम



कपड़े के व्यापार करने वाले जो पञ्जाबी स्त्रियों को भगा लाते हैं और पञ्जाब में उन्हें बेच देते हैं, उनका वृत्तान्त कुछ लिख चुका हूँ, किन्तु वह लेख पूरा नहीं हुआ। मैंने पता मँगाया है कि सैकड़ों की संख्या में विधवा स्त्रियाँ संयुक्त-प्रान्त से भगाई गईं और पञ्जाब में बेची गई हैं। पञ्जाब के कपड़े के व्यापारी देहली और कानपुर से सड़े-गले कपड़े ख़रीद कर संयुक्त-प्रान्त में उधार देकर ̣ पर अच्छा मुनाफ़ा करते हैं; और फिर अपने दलालों द्वारा विधवा-स्त्रियों को अपने साथ भगा लाते हैं और वे पञ्जाब में बेची जाती हैं। नीचे मैं उन कुछ स्त्रियों की फ़ेहरिस्त देता हूँ जो संयुक्त-प्रान्त से भगा लाई गई हैं—

(१) मुसम्मात मायादेवी, ब्राह्मणी, मौज़ा अशरफ़पुर, (फ़ैज़ाबाद)।

(२) रामदेवी, ब्राह्मणी, शहर बरेली; इसे सखियाँ भगा और कुञ्जाह ज़िला गुजरात में रहता है।

(३)..........मौज़ा गुलग्राम का जबलपुर से तीन औरतें भगा लाया। एक को ४००) रुपए में बेचा, दूसरी को रावलपिण्डी में २५०) में बेचा, तीसरी को एक गूजर के हाथ बेचा।

(४)........मौज़ा कुञ्जाह ज़िला गु का—सुन्दरिया

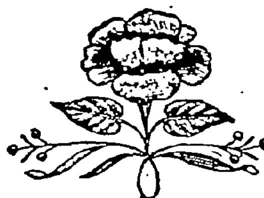
ब्राह्मणी को प्रयाग से भगा । २००) रुपए में मुसल-मानों के बेचा, जो मौज़ा सिरगोदा के रहने वाले थे ।

(५) मधुरी ब्राह्मणी को शहर सीतापुर से......पार्चा फ़रोश कुआह का रहने भगा लाया । ४००) रुपए में......के बेचा ।

(६) सीतापुर की लछमिनियाँ ब्राह्मणी को, जो बेवा हो गई थी......कुआह का पार्चा फ़रोश भगा । । एक उसे रख कर, मुसलमान के हाथ ७०) में बेच दिया ।

(७) रामप्यारी छत्राणी शहर पीलीभीत की बेवा को कु का............भगा लाया और अपने के लड़के के हाथ बेच ।

इसी के सैकड़ों बयान और एँ हमारे पास मौजूद हैं, पर स्थानाभाव के कारण उन सभों को हम यहाँ प्रकाशित करने में हैं । में हर की होने वाली ओं का केवल एक नमूना ही हमने पाठकों के ने रक्खा है ।



तेरहवाँ अध्याय

विधवाओं की दुर्दशा

एक प्रतिष्ठित महिला का

श्रीयुत सम्पादक महोदय 'चाँद',

वारम्बार नमस्कार !

'चाँद' द्वारा स्त्री-संसार का जो अकथनीय उपकार कर रहे हैं, इसके लिए हमारी बहिनों को ही नहीं, बल्कि उनकी सन्तानों को आजीवन आपका ऋणी रहना होगा। ख़ासकर विधवाओं की दीन दशा पर जो प्रकाश आप समय-समय पर फेंकते आए हैं, यह बात संसार से आज छिपी नहीं है। "समाज-दर्शन" द्वारा भी आपने विधवाओं की दशा का वास्तविक चित्र जनता के सामने रक्खा है। मैं एक अभागी विधवा अपनी समस्त विधवा-बहिनों की ओर से आपको हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। जिस समय आपके प्रभावशाली लेख अन्य मासिक पत्रिकाओं में छपा करते थे; मैंने उन सभों को भी बड़े ध्यान से पढ़ा है और उनका सदैव प्रचार करती रही हूँ। अभी मैंने कलकत्ते के "भारत-मित्र" में इस बात की सूचना पढ़ी है कि 'चाँद' का अगला अङ्क 'विधवाङ्क' के रूप में निकल रहा है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा आपको इसमें ता

प्रदान करें; और जनता को इतनी बुद्धि दें कि वह हम अभागी विधवाओं की ओर शीघ्र दे। हमारी दशा बड़ी ही - जनक है, और देश की उन्नति में इसके द्वारा भारी बाधा पड़ रही है।

मैं भी एक अच्छे घराने की लड़की और उससे भी अच्छे खत्री घराने की बहू हूँ। मेरे पिता कट्टर सनातनधर्मी और भारत-धर्म- के सदस्य भी हैं। पर चूँकि मैं विवाह के केवल २१ दिन विधवा हो गई और तब से उनके गले पड़ी हूँ; इसलिए उन्हें मेरी दशा पर दया आई और उन्होंने मेरा पुनर्विवाह निश्चय किया।

जिस समय मेरा विवाह हुआ, उस समय मेरे पति को पहिले से ही ी की बीमारी थी। जो शायद शादी-विवाह में कुपथ्य (बदपरहेज़ी) के कारण बढ़ गई और ठीक इक्कीसवें दिन तार आया कि वे ोक सिधार गए। उस मेरी उम्र ८ वर्ष की थी। सुना था कि वे (पति) पहले से ही बीमार रहते थे। उनकी आयु जब वि हुआ तो ३५ साल की थी और उनकी ी दो स्त्रियाँ प्रसूत-रोग से मर चुकी थीं।

इस समय मेरी १७ साल की है। मैंने.........क्लास तक अङ्गरेज़ी शिक्षा भी पाई थी। मेरी माता भी सौतेली होने के क स्वभावतः मुझ पर वह प्रेम नहीं रख सकतीं जो आज मेरी वह माता कर सकती, जिसके उदर से मैं जन्मी हूँ। उनका विरोध होते हुए भी मेरे पिता जी ने मुझसे एक दिन एकान्त में कई प्रश्न पूछे। थोड़ी देर की लज्जा को त्याग कर और सौतेली

माता के अत्याचार से रिहाई पाने की अभिलाषा से मैंने सजल नेत्रों से उनके प्रश्न का निर्भीकता से उत्तर दिया। उन बातों का केवल इतना ही है कि मैंने पुनर्विवाह करने की अनुमति दे दी। मेरे पिता उस समय बहुत फूट-फूट कर रोए और घण्टों तक रोते रहे। मेरी......अवस्था की ओर देखते ही वे एकदम अधीर हो उठे और उसी दिन उन्होंने मेरा पुनर्विवाह निश्चित कर लिया, जैसा कि मैं पहिले ही निवेदन कर चुकी हूँ।

जिस दिन से घर और बाहर वालों को इस का पता है—कि मेरा दूसरा विवाह होने वाला है—घर-घर में मेरे पिता जी की निन्दा हो रही है; और लोग उन्हें बहुत दिक़ कर रहे हैं। हमारे रिश्तेदारों ने भी हम लोगों को छोड़ देने की धमकियाँ दीं और बहुत ही नीचता का परिचय दिया।

मुझे समाज से कुछ नहीं कहना है। मैं केवल यह जानना चाहती हूँ कि किस वेद, पुरान या क़ुरान में यह आज्ञा दी गई है कि पुरुष जब चाहें पैर की जूतियों के हमें त्याग कर एक, दो, तीन, चार अथवा पाँच-पाँच विवाह कर लें। पर स्त्रियाँ बेचारी ऐसी स्थिति में रहते हुए भी—जिसमें आज मैं हूँ—दूसरा विवाह न कर सकें? यह स की भयङ्कर नीचता नहीं तो और क्या है?

मैं विधवा-विवाह के पक्ष में तो अवश्य हूँ, पर मेरे साथ यदि मेरी माता तथा घर का अच्छा व्यवहार होता तो मैं अपने पुनर्विवाह की कल्पना अपने दिल में भी न आने देती, और

चूँकि अब मेरे कर लेने से मेरे पिता जी पर एक भारी त्ति आ जाने की सम्भावना है, इसलिए पहिले तो मैंने आत्म-हत्या की बात सोची थी। पर नहीं—मैं ऐसा न करूँगी। मैं अपने घर का परित्याग करूँगी।

मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि अब मैं अपनी विधवा बहिनों की सेवा में अपना शेष जीवन लगाऊँगी और जो मैं इस सम्बन्ध में कर सकती हूँ, करूँगी।

भारत में ऐसी कोई संस्था भी नहीं है कि जिससे मिल कर मैं कार्य कर सकूँ। आप निस्सङ्कोच मेरे इस पत्र को विधवा-अङ्क में प्रकाशित कर दें; पर मेरा नाम वग़ैरह न लिखें, ताकि हमारी अन्य विधवा बहिनें, जिनका जीवन भी मेरे जैसा ही हो रहा है, स्वयं ी सहायता करें; और शीघ्र एक भारी आन्दोलन महात्मा गाँधी जी और उनके अनुयायियों के सामने उपस्थित कर दें, और उन्हें इस बात के लिए बाध्य करें कि राजनैतिक आन्दोलन करते हुए वे अपनी विधवा बहिनों की दशा पर भी ज़रा ध्यान दें। मेरा पूर्ण रूप से विश्वास है कि जब तक स्त्रियाँ स्वयं इन बातों पर ध्यान न देंगी, उद्धार न हो सकेगा। अतएव परमात्मा के नाम पर, समाज के पर और राष्ट्रीयता के नाम पर उन्हें तुरन्त इस ओर ध्यान देना चाहिए। सम्पादक जी! अन्त में मैं फिर आपको हार्दिक धन्यवाद देती हूँ और इस बात का विश्वास दिलाती हूँ कि अन्य कार्यों के साथ ही साथ 'चाँद' जैसे अमूल्य पत्र का घर-घर प्रचार करना भी मेरा एक उद्देश्य है; क्योंकि मैं स्वयं 'चाँद' को पथ-प्रद-

श्रंक समझती हूँ। इसके समान स्त्रियों का सच्चा हितैषी कोई पत्र नहीं है। मेरी भूल-चूक को क्षमा कीजिएगा......।

देहली, } भवदीया—
ता०......३-२३ } ......कपूर



विधवा-विवाह-सहायक-सभा, लाहौर के मुख्य उर्दू पत्र "विधवा-सहायक" के गत मार्च १९२३ वाले अङ्क में दो भिन्न-भिन्न पत्र प्रकाशित हुए हैं, जो विधवा-विवाह-सहायक-सभा के मन्त्री महोदय के पास आए थे। हम उनका हिन्दी-अनुवाद दे रहे हैं :—

एक विधवा पिता का पत्र

धर्ममूर्ति परे ारीजन लाला जी साहब,

तस्लीम !

निवेदन है कि मेरी पुत्री, जिसकी अवस्था इस समय १८ वर्ष की है, विधवा हो गई है। दो हुए मैंने एक विद्यार्थी के साथ विवाह कर दिया था, लेकिन दुर्भाग्यवश वह लड़का कठिन परिश्रम करने के कारण इन्ट्रेन्स की परीक्षा पास करते ही बीमार हो गया। मैंने यद्यपि मेरी हैसियत न थी—मगर करता क्या न करता—डॉक्टरों की आज्ञानुसार उसे एक साल प पर भी रक्खा, लेकिन वह अच्छा न हो सका। चार मास हुए, उसका देहान्त हो गया।

जी.............................उसे * देख कर मुझे ३ ही दुख और क्लेश होता है। मेरे मित्र ....हेडक्लर्क दफ़्तर...............लाहौर में हैं। उन्होंने यह दी थी कि ऐसी विधवा हो जाने वाली लड़कियों की दूसरी शादी करा देने का प्रबन्ध करने वाले हैं—उनसे तुम पत्र-व्यवहार करो। सो आपकी सेवा में विनीत और बहुत नम्र निवेदन है कि मेरी लड़की के वास्ते कोई सुशील......लड़का ि ी या २० या २२ हद पचीस वर्ष की हो—और पहिली स्त्री से उसे कोई न न उत्पन्न हुई हो तो करके उसके पूरे पते से मुझे दे से, या तौर में ....जी को दें।

और यदि इसी समय आपकी निगाह में कोई ऐसा नहीं है, तो मेरा नाम अपने रजिस्टर में नोट कर लें। सुविधा होने पर इसकी सूचना दें। मैं की इस महती कृपा को कभी न भूलूँगा।

तक मैं लड़की का पुनर्वि कर देना चाहता हूँ; क्योंकि नव-विवाहित युवती बालिका को घर में बैठी देख कर मेरा और मेरी स्त्री का दिल बहुत दुखी होता है।

लाला...............जी ने श्रीमान् शिवदयाल , एम० ए० से भी इस बात की चर्चा की थी और उन्होंने भी , बात की दी थी कि आप ला य ी के

* अर्थात् पुत्र-वधू को।

लिए प्रार्थना-पत्र भेज दें, फिर हम सोच कर और अच्छा देख कर इस की सूचना दिला देंगे। लाला शिवदयाल जी को मेरी इस विपत्ति का हाल विदित है।

सो आप कृपा करके इस मामले में अवश्य मेरी स ता करें और कोई बहुत ही सुशील, ने और किसी उच्च कुल का लड़का अवश्य दें।

लड़की की अवस्था १८ वर्ष की है......क्लास तक पढ़ी हुई है। उर्दू भी लि -पढ़ ती है। घर-गृहस्थी के काम- से भी ी-भाँति परिचित है और वह बेचारी देवी-फेरों की चोर है। एक दिन भी अपने ससुराल के घर नहीं गई है। अगर आपके यहाँ चन्दा के रूप में कुछ रुपया जमा करने का नियम हो तो वह बाबू...........जी से वसूल कर लीजिए या मुझे लिख दीजिए, मैं यहाँ से मनी र द्वारा भेज दूँगा। *

यदि के अलावा कोई बात ना चाहें तो मैं आपके लिखने पर लिख दूँगा।

प्रार्थना यह है कि इस को गुप्त र जावे †

---

* लाहौर की विधवा-सहायक-सभा ऐसे सम्बन्ध कराने में किसी का चन्दा नहीं लेती, बल्कि यथाशक्ति आर्थिक सहायता भी देती है। पत्र-व्यवहार लाला लाजपतराय जी साहनी, बी॰ ए॰, अवैतनिक मन्त्री, विधवा-सहायक-सभा, मैकलागन रोड, सलीम बिल्डिङ्ग, लाहौर (पञ्जाब) से करना चाहिए।

† ऐसी घटनाओं के प्रकट हो जाने पर ऐसे सज्जनों की, जो

और मैं सामाजिक रीति ‡ से या सनातनी रीति से अर्थात् जैसा कि लड़का या उसके माता-पिता स्वीकार करेंगे, विवाह करने को तैयार हूँ। यद्यपि मेरे अपने विचार सनातनी हैं, किन्तु मुझे जिक रीति से कर देने में कोई आपत्ति नहीं है।

भवदीय........

५

एक विधवा कन्या का अपने हाथ से हिन्दी में लिखे हुए पत्र सारांश

दुखियों पर दया करने वाले पूजनीय मन्त्री जी,

सेवा में निवेदन है कि मैं एक विधवा दुखियारी ी सहायता के लिए प्रार्थना करती हूँ। मेरी अवस्था इस समय १८ वर्ष की है। मुझे विधवा हुए ३ साल हो गए। मैं वैश्य अग्रवाल जाति की । मेरे एक लड़की हुई थी, जो इस समय ४ वर्ष की है और कोई सन्तान नहीं हुई। मेरे माता-पिता जाति का डर होने के और निर्धन होने के कारण चुप हैं और मेरे शत्रु बन रहे हैं। मेरे -ससुर भी, जैसा हिन्दू-विधवा के साथ इस जाति में घोर अत्याचार प्रचलित है, कर रक्खा है, करते हैं। शोक है, मेरे जेठ, जिनकी उम्र ४० वर्ष से कम नहीं है, जिनके दो लड़के १७ और १२ वर्ष के और एक लड़की ११ वर्ष की है—पिछले १६ वर्ष

अपनी ओं का वास्तव में पुनर्विवाह । चाहते हैं, घर-घर निन्दा होने ी है और बहिष्कार कर देता है।

‡ अर्थात्, आर्यसमाजी नियमानुसार।

की एक विधवा से विवाह कर लाए, लेकिन मुझ दुखिया पर, जिसका न पिता के घर जीविका का सहारा है और न ससुराल में, किसी को परमात्मा के भय का भी ख़्याल नहीं होता। दिन भर सारे कुटुम्ब की सेवा करते रहने पर भी रोटी का सहारा नहीं दी ! हर समय सबकी घुड़कियों और तानों से अति दुखित हो रही हूँ। कई बार जी में आता है कि कुएँ में छलाँग मार कर इस मुसीबत से छुटकारा पा लूँ।

हे दयालु ! मैं आपसे इस बात की प्रार्थना करती हूँ कि इस पत्र का पता मेरे सम्बन्धियों को न हो और यदि किसी प्रकार आप मेरा पुनर्विवाह कर दें या करवा दें तो आजीवन आपका अहसान न भूलूँगी और ईश्वर आपको इस दया का शुभ देंगे। मेरे पिता का पता यह है :—

लाला......................मौज़ा ....तहसील .... और मेरे ससुर ....

। .... में रहते हैं। मेरी खुफ़िया कोशिश करो तो पिता जी से ही करना। ससुर जी से न करना। मेरे पास कोई पत्र न डालना। मैं अबला दुखिया पराधीन हूँ। यदि मेरा कर दें तो मानो मुझे मरने से बचा लेंगे। सिवाय ईश्वर के या आप ऐसे परोपकारियों के मेरा कोई नहीं। आशा है, मेरी प्रार्थना पर शीघ्र ध्यान देकर कोई उचित प्रबन्ध कर देंगे।

आप-से परोपकारियों की शुभचिन्तिका—

दीन दुखिया......वैश्य अग्रवाल

अभी ही की बात है। एक रानी साहिबा ने ी एक ी मित्र (स्त्री) को इस आशय का एक पत्र लिखा था :—

बहिन,

तुमने कई बार मुझसे ऐसे प्रश्न किए हैं जिनसे मैं अत्यन्त लज्जित हूँ, पर मैं तुम्हें अपनी कहानी जी खोल कर सुनाऊँगी.........

मैं १२ वर्ष की ही में वि हो गई। अपने पति की मैं तीसरी स्त्री थी। वे जीवन-पर्यन्त वेश्याओं के हाथ की कठपुतली बने रहे। उनमें और भी कई दुर्व्यसन की शिकायतें थीं। पर थे तो—मेरे धैर्य धरने को यही बहुत था। उनके देहान्त के बाद जब मैंने १६ वें वर्ष में पदार्पण किया तो मुझे जिन कष्टों का

पड़ा उन्हें मैं ही जानती हूँ। मैंने अपनी सास से एक दिन बातों-बातों में विधवा-विवाह की सराहना की। मेरा मतलब यह था कि शायद यह मेरा व समझ सकेंगी। पर वह तो ी आग-बबूला हो गई और न जानें क्या-क्या बकने लगीं। मेरे जी में तो आया कि बुढ़िया का गला घोट दूँ, पर जी मसोस कर रह गई, क्योंकि वह जानती थी कि जब से मेरा विवाह हुआ, मैंने एक दिन भी पति का मुँह नहीं देखा था। परदे का मेरे यहाँ बड़ा कड़ा प्रबन्ध था। सन्तरी बर्छी-तलवार लिए पहरे पर खड़ा रहता था। केवल नौकर-चाकर या मेरे सम्बन्धी ही कोठी के भीतर आ सकते थे। मैंने मन ही मन अपनी काम-वासना को शान्त करने की बात स्थिर कर ली। पर सोचने लगी कि इन इने-गिने लोगों में से किसको अपने प्रेम का पात्र चुनूँ। एक नौकर (बारी) पर एक दिन मेरा दिल आ गया। मैंने अपना सर्वस्व उसीको सौंप दिया

और यहाँ से मेरी पाप-वासना का 'श्रीगणेश' म हुआ। कुछ दिनों के बाद लोग कुछ-कुछ भाँप गए। मैंने उसको (वारी को) निकलवा दिया। पर मुझे चैन नहीं पड़ा। फिर पति के एक नज़दीकी रिश्तेदार पर मैं मुग्ध हो गई। पर उनसे भी पटी नहीं। फिर रामलाल ख़िदमतगार से मेरा सम्बन्ध हो गया। कहने का सारांश यह कि केवल बीस के भीतर ही क़रीब तीस व्यक्तियों का आश्रय मैंने लिया। पर किसी से भी मैं सन्तुष्ट नहीं हुई। अन्त में एक दिन मैंने मन ही मन बड़ा पश्चात्ताप किया। अपने को धिक्कारा भी बहुत, पर मैंने अपने को अन्त में दोषी नहीं पाया। इन कुल व्यभिचारों का दोष मैंने ज के सर छोड़ा। मैं पहले ही पुनर्विवाह चाहती थी, वह क्यों नहीं ा गया? क्या जहाँ पानी नहीं होता वहाँ प्यास भी नहीं लगती? उस दिन बजाय इसके कि मैं अपने किए पर पश्चात्ताप करूँ, मैं नित्य आनन्द लूटने लगी, पर मेरी पापात्मा को शान्ति कभी भी प्राप्त नहीं हुई। कहते लाज आती है कि चौदह बार मुझे गर्भ रह चुका, पर आदि से दाइयाँ बुलवा कर मुझे ख़ासी भ्रूण-हत्याएँ करनी पड़ीं। फिर भी मेरे स्वास्थ्य का अन्त नहीं हुआ।

जिस प्रकार विधवाओं को शास्त्रानुकूल रहना चाहिए, मैं ठीक उसके विपरीत रहती भी थी। मैं नित्य कामोत्पादक वस्तुएँ खाती। मेरा आहारादि भी, कहने की ज़रूरत नहीं, रानियों ही की तरह होना चाहिए। में लिखा है कि विधवाओं को एक बार भोजन चाहिए; वह भी रींधा हुआ चावल, लपसी और केवल एक साग; सोना चाहिए पर अथवा ज़मीन पर;

ओढ़ना चाहिए और कफ़नी पहननी चाहिए; पान-इत्र आदि से परहेज़ करना चाहिए, इत्यादि। अब मैं हाल क्या कहूँ? प्रातः ४१ बादाम और सेर दूध, बंसलोचन और इलायची आदि कर पीती हूँ, फिर हलुआ या ऐसी ही कोई पुष्ट चीज़ ९ बजे खाती हूँ, दोपहर को रसोई और खीर वग़ैरह, फिर सो रहती हूँ। मेरा ·क के Whiteway Laidlaw के यहाँ से ५८०) रुपए में आया है। उस पर से तो उठने का जी नहीं चाहता। फिर शाम को आदि पीती हूँ। मेरे कहने का मतलब सिर्फ़ इतना ही है कि यह ख़ुराक आदि खाकर कौन ऐसा पुरुष अथवा स्त्री है जो अपने को वैधव्य में सँ सके। हाँ, एक बात तो कहना मैं भूल ही गई। मैं कम से कम पाँच-छः सौ पान प्रति दिन खाती हूँ, यहाँ तक कि मेरे दाँत घिस गए हैं। मेरी अवस्था इस समय ५० वर्ष के ऊपर है; पर मैं अब भी उन युवतियों के कान काटती हूँ, जिनको १५ या १६ वर्ष की नवयुवती होने का है।......तुमसे कोई बात छिपी तो है नहीं। ज. मेरा न्ध एक......से है, पर नहीं कह सकती कि यह प्रेम कब तक रहेगा। मैंने भी प्रतिज्ञा कर ली है कि अब मैं बदनाम तो काफ़ी से ज़्यादा हो चुकी हूँ, मेरे बहुतेरे सम्बन्धियों ने भी मुझे छोड़ दिया है और जो आते-जाते हैं उनको मुझसे 'पैदा' की आशा है। धन मेरे पास काफ़ी है और ऐसा है कि अभी हज़ारों वर्ष इस दौलत पर चैन कर ती हूँ। बहिन! क्या करूँ, मेरे हृदय में अग्नि दहक रही है। मैं भीतर से तो समझती हूँ कि घोर नरक की यातना है, पर बिना लिखी-पढ़ी

हूँ। कथा-पुराण मैंने बहुत सुने हैं। पूजा भी वर्षों की है, पर आत्मा को शान्ति नहीं! फिर सोचती हूँ कि मनुष्य का चोला -बार थोड़े ही मिलता है। पर साथ ही बहिन, मैं कहे देती हूँ कि यदि मेरा विवाह दुबारा हो गया होता तो मैं ऐसी व्यभिचारिणी कदापि न होती। पर यह मैंने इतना उपद्रव -बूझ कर किया है, इसलिए कि हमारे बिरादरी वाले देखें और मुझसे सबक़ लें। नवयुवतियों का, जो विधवा हैं और जिनको पति की आवश्यकता है, उनका पुनर्विवाह करें और पापमय जीवन से उनकी रक्षा करें। मुझे आशा है कि मेरी कहानी से लोग ज़रूर सबक़ सीखेंगे और यदि वास्तव में ऐसा हुआ तो मेरी आत्मा बहुत-कुछ शान्ति लाभ कर सकेगी और तभी मैं अपने दुष्कर्मों का प्रायश्चित्त करूंगी। पर रखना, नहीं तो लोग मुझसे नफ़रत करेंगे। बहिन! यदि लोग मुझे प्रेम से वश किए होते तो ही अच्छा होता।

ता०...५-१९-१७ तुम्हारी..................

रानी........



इस पत्र का उत्तर बङ्गालिन-स्त्री ने इस प्रकार दिया था :—

रानी बहिन,

नमस्ते!

तुम्हारा पत्र मिला। जितनी बार पढ़ती हूँ, उतना ही आनन्द और दुःख दोनों ही होते हैं। मैं आपके प्रेम की पात्र हो सकी,



अपमान

यम-आमन्त्रित बूढ़े पति से, तरुणी का जीवन हो भार !
सहज करेला कड़ुआ है फिर, मिले नीम उसको उपचार !!

यह कर मुझे बड़ा ही हर्ष हुआ। आप जानती हैं कि मैं भी वेदना का बहुत नहीं, तो कुछ अंशों में अनुभव कर चुकी हूँ और करती भी हूँ। मेरा विवाह कब हुआ और मेरे पति-देवता कब चल बसे, इसका मुझे भी नहीं है। मेरी अवस्था केवल वर्ष की थी, तभी मेरा सब कुछ हो चुका था। पर पिता जी ने मेरी शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। मैंने १० वर्ष तक संस्कृत अध्ययन करने से बहुत-कुछ सीखा और देखा भी। मेरे पिता पुनर्विवाह के पक्ष में थे और मैंने स्वयं ऐसा । उचित तो , पर किया नहीं। मैंने मन ही मन इस बात की प्रतिज्ञा अवश्य की कि आजीवन मैं तन-मन इस आन्दोलन में लगाऊँगी कि मेरी अन्य बहिनों का कष्ट नाश हो सके। मैं परमात्मा का स्मरण करती थी। घण्टों प्रार्थना ी थी कि मुझमें इतना बल दें कि मैं अपने कठिन व्रत को कुछ अंशों में पूरा कर सकूँ। आपको यह जान कर हर्ष होगा कि मैं बहुत-कुछ करने में हो सकी। इस मेरी अवस्था ४२ की है। मैं अन्य बहिनों से विशेष सन्तुष्ट हूँ। -समय पर मुझे अपार आनन्द प्राप्त होता है।

मनुष्य को ी बुद्धि के अनुसार परमात्मा का ज्ञान होता है। ज्यों-ज्यों वह परमात्मा की कृपालुता, दयालुता और प्रेम को अपने चित्त में स्थापित करके उसे अनुभव करता है, त्यों-त्यों वह सर्वशक्तिमान परमात्मा के समीप होता जाता है।

मैं भी आज दिल खोल कर अपना हाल कहूँगी। पर आपके की शपथ कहती हूँ, वास्तव में मैं प्राणिमात्र को देवता ती हूँ और उनकी सेवा करना अपना कर्तव्य।

मैंने आपका पत्र पढ़ा, और कई बार पढ़ा। आपके चित्त की स्पष्टता और सचाई देख कर मैं गद्‌गद्‌ हो गई हूँ। आपने सच्चे दिल से अपने हार्दिक भावों को मुझ पर बड़े ही मार्मिक शब्दों में प्रकट किया है। मैं आपको सादर एक सलाह दूँगी या यों कहिए कि आपका सर्वनाश करूँगी।

आप जानती हैं कि संसार भर के भाग्य का निबटारा होने वाला है। भारत की जानों की भी बाज़ी लगी हुई है। विजय-लक्ष्मी भारत-माता की गोद में कब आवेगी, यह कोई नहीं कह स ; पर उद्योग करना भारतीय का, चाहे वह स्त्री हो वा पुरुष, लक्ष्य होना चाहिए। समय . उत्तम है। मैं जानती हूँ कि आपके नक़्द सम्पत्ति अपार है और गोकि उसे बेच नहीं सकतीं, पर साथ ही मैं यह भी जानती हूँ कि नक़्दी भी है। मेरी राय में, यदि उचित तो यह धन राष्ट्रीय कोष में मेरा पत्र पहुँचते ही दान दे दें! स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करें। अपने नौकर-चाकर और सम्बन्धियों को भी यही सलाह दें। अपना रहन-सहन बड़ा ही सीधा और सरल कर लें। हर साल आपको एक लाख से ऊपर धन मिलेगा, इसे आप किसानों की उन्नति में व्यय करें। यही सब ऐसे-ऐसे हैं, जिनसे इस पाप का वास्तविक प्रायश्चित्त हो सकेगा और आपकी आत्मा शान्ति लाभ कर सकेगी। अन्य कोई भी मार्ग शान्तिदायक नहीं हो सकता।

परमात्मा को साक्षी देकर आपको दिल से अपने इन कामों के लिए पछताना होगा। तभी में धैर्य और आत्म-

शक्ति का होगा। अपने चित्त को सदैव और

नितान्त आवश्यक है।

आपको शिक्षा नहीं देती ; नहीं, दे ही नहीं ी। आप स्वयं बड़ी हैं, बुद्धिमान हैं और यदि ज़रा भी ध्यान दें तो बड़ी सरलता से सकती हैं। आपके पत्र द्वारा मैं स्पष्ट रूप से समझ सकी हूँ कि आप अवश्य ही इस ओर ध्यान देने की कृपा करेंगी।

सदैव की—

....................."

("समाज-दर्शन" से उद्धृत)

बाल-ह

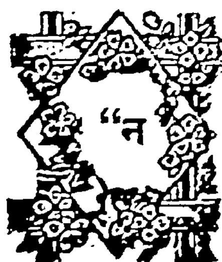
श्री० छेदालाल सिंह, बी० ए०, हेडमास्टर गव

स्कूल फ़ैज़ाबाद ने सहयोगी "विधवा-सहायक" में प्रकाशित है कि नवेली नाम की एक विधवा बालिका को, जो ज़िला पीलीभीत की रहने वाली है, अनुचित सम्बन्ध से एक बच्चा हुआ। उसने बालक के मुँह में रुई ठूँस कर एक ता में डाल दिया, ताकि ी बदनामी न हो। लेकिन दुर्भाग्यवश बच्चे की पानी पर तैरती हुई पाई गई। पुलिस ने जाँच करके स्त्री को गिरफ़्तार कर लिया और उस पर मुक़दमा या गया। गत १६ मार्च १६१३ को पीलीभीत के सेशन जज ने स्त्री को आजीवन कालेपानी की सज़ा दी। हाईकोर्ट में अपील की गई। स्त्री का ख़्याल करके हाईकोर्ट ने नवेली को केवल ६ मास का कठोर दण्ड देकर छोड़ दिया।

चौदहवाँ अध्याय

विद्वानों की सम्मतियाँ

महात्मा गाँधी   विचार



वजीवन" में विधवाओं के विषय में मि॰ खाण्डे ल ने एक ` लिखा था। उसमें उन्होंने समस्त भारत की मनुष्य-संख्या से निम्न-लिखित अङ्क दिए थे। मुसलमान और हिन्दुओं में विधवाओं की संख्या साथ व - नीचे दी जाती है:—

उमर	विवाहित बालिकाएँ	विधवाएँ
१ महीने से १२ महीने तक	१३,२१२	१७,०१४
१ वर्ष से २ वर्ष तक	१७,७५३	८५६
२ ,, ३ ,,	४६,७८७	१,८०७
३ ,, ४ ,,	१,३४,१०५	६,२७३
४ ,, ५ ,,	३,०२,४२५	१७,७०३
५ ,, १० ,,	२२,१६,७७८	६४,२४०
१० ,, १५ ,,	१,००,८७,०२४	२,२३,०३२

	हिन्दू वि एँ	मुसलमान विधवाएँ
१ महीने से १२ महीने तक	८६६	१०६
१ वर्ष से २ वर्ष तक	७५५	६४
२ ,, ३ ,,	१,५६४	१६६
३ ,, ४ ,,	३,९८७	५,८०६
४ ,, ५ ,,	७,६०३	१,२८१
केवल ५ वर्ष की	१४,७७५	२,१३३
५ से १० वर्ष की	७७,५८५	२४,२७६
१० से १५ ,,	१,८१,५०७	३६,२६४

भिन्न-भिन्न प्रान्तों में विधवाओं की इस है :—

बङ्गाल ...	१७,५८३	यू० पी० ...	१७,२०९
बिहार ...	३६,२७५	बड़ौदा ...	७८३
बम्बई ...	६,७२६	हैदराबाद ...	६,७८२
मद्रास ...	५,०३८	× ×	×

इन संख्याओं पर त्मा गाँधी ने यह टिप्पणी की थी—"जो इन अङ्कों को पढ़ेगा वह रोवेगा। अन्धे सुधारक यह कहेंगे कि वि -विवाह इस रोग की सबसे अच्छी औषधि है; किन्तु मैं यह नहीं कह । मैं -बच्चों आदमी हूँ। मेरे कुटुम्ब में भी विधवाएँ हैं। किन्तु मैं उनसे यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि तुम पुनर्विवाह कर लो, पुनर्विवाह करने का ख़्याल तक उनके दिल में न आवेगा। इसका म यह है कि

पुरुष यह प्रतिज्ञा कर लें कि हम पुनर्विवाह न करेंगे। किन्तु इसके अलावा और भी उपाय हैं, जिनको हम में नहीं लाते, नहीं उन्हें हम काम में लाना ही नहीं चाहते, और वे यह हैं :—

(१) बाल-विवाह एकदम रोक दिया जावे।

(२) जब तक पति और पत्नी इस अवस्था तक नहीं पहुँचें कि एक-दूसरे के साथ रह सकें, तब तक उनका विवाह न होना चाहिए।

(३) जो बालिकाएँ अपने पति के साथ नहीं रही हैं उन्हें केवल विवाह करने की आज्ञा ही नहीं, किन्तु पुनर्विवाह करने के लिए उत्साहित भी करना चाहिए। ऐसी लड़कियों को तो विधवा ख्याल ही न करना चाहिए।

(४) वे विधवाएँ, जिनकी अवस्था १५ से है या जो अभी जवान हैं, उन्हें पुनर्विवाह की इजाज़त देनी चाहिए।

(५) विधवा को लोग अशुभ ते हैं, किन्तु इसके विपरीत उन्हें पवित्र समझना चाहिए और उनका सम्मान करना चाहिए; और :—

(६) विधवाओं की शिक्षा का उचित प्रबन्ध होना चाहिए।



श्री० ई रचन्द्र जी विद्यासागर के विचार

अनन्य -सुधारक और विधवाओं की मुक्ति के कार्य में अविरल परिश्रम करने वाले प्रसिद्ध विद्वान् पं० ईश्वरचन्द्र जी

विद्यासागर ने भारतीय विधवाओं को घोर दुःख से छुड़ाने के लिए पुरुष-समाज से कितने मार्मिक शब्दों में अपील की है :—

"देश-निवासियो! आप धोखे और निद्रा में कब तक पड़े रहेंगे? एक बार तो अपने नेत्र खोलिए और देखिए कि हमारे ऋषियों और पूर्वजों की वही धर्म- भूमि भारत-मही, जो एक में के सर्वोच्च पर विराजमान थी, आज व्यभिचार की प्रबल धार में बही जा रही है। भयङ्कर और गहरे खड्ड में आप गिरे हुए हैं। अपने वेद और ों की शिक्षाओं की ओर दृष्टि फेरिए और ी आज्ञाओं पर चलिए, तब आप अपने देश की -कालिमा को धो सकेंगे। परन्तु अभाग्यवश सैकड़ों वर्षों के पक्षपात से आप ऐसे प्रभावित हो गए हैं और पुरानी रीति-रिवाज के ऐसे 'लकीर के फ़क़ीर' हो गए हैं कि मुझे भय है कि आप शीघ्र ही अपनी मर्यादा पर आकर शुद्धता और ईमानदारी के मार्ग पर नहीं आ सकेंगे। आपकी आदतों ने आपकी बुद्धि पर ऐसा परदा दिया है और आपके विचारों को ऐसा सङ्कुचित कर दिया है कि आपको ी विधवा-बहिनों पर दया का भाव कठिन हो गया है।

जब -शक्ति के आक्रमण के कारण वे वैधव्य के नियमों का उल्लङ्घन कर देती हैं उस आप उनके व्यभिचार से मूँद लेते हैं। उस उचित प्रबन्ध न कर और अपनी -मर्यादा खोकर उन्हें व्यभिचार करने देते हैं। किन्तु कितने आश्चर्य का है कि अपने शास्त्रों की नहीं मानते और शास्त्रों की आज्ञानुसार पुनर्विवाह करके उन्हें भयङ्कर

दुखों से छुटकारा नहीं दिलाते। उनका पुनर्विवाह करने से आप भी अनेक पाप, दुख और अधर्म से बच गे। आप सम्भवतः यह ख़्याल करते हैं कि पति के मर जाने के बाद स्त्रियाँ मनुष्यता तथा प्रकृति के प्रभावों से सर्वथा शून्य हो जाती हैं और ी कामेच्छा भी उन्हें नहीं सताती। किन्तु व्यभिचार के नित्य नए उदाहरण से का विश्वास सर्वथा ग़लत सिद्ध हो है। खेद है कि आप जीवन के वृक्षों से ज़हर के बीज बो रहे हैं। यह कैसा शोक का स्थान है! जिस देश के मनुष्यों का हृदय दया और तर्स से शून्य है, जिन्हें अपने भले-बुरे का ज्ञान नहीं है और जहाँ के मनुष्य साधारण शिक्षा देना ही अपना बड़ा भारी कर्तव्य और धर्म समझते हैं, उस देश में स्त्रियाँ कभी उत्पन्न ही न हों।"



विचार

डॉक्टर सर तेजबहादुर सप्रू महोदय, एम० ए०, -एल० डी०, के० सी० आई० ई० से विधवाओं के सम्बन्ध में उनके विचार जानने के लिए 'चाँद' के ख़ास प्रतिनिधि ने उनसे भेंट की थी, अतएव आपके विचार हम प्रश्नोत्तर के रूप में नीचे देते हैं :—

प्रश्न—विधवाओं के पुनर्विवाह के न्ध में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर—मैं बहुत ज़ोरों से विधवा-विवाह के पक्ष में हूँ। विधवाओं का पुनर्विवाह अवश्य और ज़रूर होना चाहिए। ऐसा न करना मैं मनुष्यता के ख़िलाफ़ समझता हूँ।

प्रश्न—यह ख़्याल समस्त विधवाओं के लिए है केवल बाल-विधवाओं के लिए?

—बाल-विधवाओं का पुनर्विवाह तो ही होना चाहिए, पर विधवाओं की इच्छा पर ही पुनर्विवाह का प्रश्न छोड़ देना चाहिए। यदि स्त्री की इच्छा है कि वह पुनर्विवाह करे तो इसमें किसी प्रकार की रोक-टोक न होनी चाहिए और में उनके प्रति अ के भाव न उत्पन्न होने चाहिए।

प्रश्न—जो विधवाएँ दिन अपने पति के साथ रह चुकी हैं अथवा जिन्हें बच्चे उत्पन्न हो चुके हैं, उनके बारे में आपके विचार हैं?

उत्तर—मैं इन विधवाओं में और उनमें कोई भी फ़र्क़ नहीं । यदि वे चाहें तो फ़ौरन विवाह कर देना चाहिए।

प्रश्न— सुनते और समाचार-पत्रों में पढ़ते होंगे कि प्रायः स्त्रियाँ और ख़ासकर विधवाएँ भगाई और बेची जा रही हैं, इन्हें किस प्रकार रोका जावे और किस ी रक्षा हो ती है?

उत्तर—स्त्रियों की शि का उचित प्रबन्ध होना चाहिए, ताकि वे बदमाशों के बहकावे में न आ जावें। जो लोग विधवाओं को इस तरह बहका कर उनका जीवन नष्ट करते हैं, उन्हें की ओर से कठोर से कठोर और सख़्त से सख़्त दण्ड मिलना चाहिए। इतना ही नहीं, समाज को चाहिए कि ऐसे बदमाशों का ाजिक बहिष्कार अवश्य करे और यथाशक्ति उन्हें कड़े से कड़ा दण्ड दिलाने का प्रयत्न करे। इसके लिए क़ानून मौजूद हैं।

प्रश्न—क़ानून मौजूद तो हैं, पर होता कुछ भी नहीं। की ख़ुफ़िया पुलिस की समस्त शक्ति तो अपने बचाव में लगी है। वह राजनैतिक आन्दोलनकारियों के पीछे लगी रहना ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री ी है तो भला इन की जाँच किस प्रकार हो?

उत्तर—मैं यह बात मानने के लिए तैयार नहीं हूँ। किसी दूसरे मामले में पुलिस भले ही आनाकानी करे, पर ऐसे म में वह अवश्य काफ़ी जाँच-पड़ताल करती है। जब तक उसे ऐसी घटनाओं का ही न लगेगा, वह कर सकती है?

प्रश्न—सो बात तो नहीं है। पञ्जाब की इस को भली-भाँति जानती है कि वहाँ लड़कियों की ख़रीद-फ़रोख़्त प्रान्तों से अधिक है। सन् १९११ में स्वयं पञ्जाब की सरकार ने हिन्दू-सभा की रिपोर्ट को सत्य बतलाया है और इस को तसलीम किया है। लेकिन जानते हुए भी कोई ख़ास प्रबन्ध मेरी समझ में तक नहीं किया गया। रही लगाने की, सो यह असम्भव है कि यदि वास्तव में इन मामलों की जाँच की और न चले। असल तो यह है कि भारत-सरकार को ऐसी बातों की परवाह ही नहीं है। क़ानून पास कर देने ही से होता है?

उत्तर—यह सच है कि ऐसी घटनाओं की उचित रीति से नहीं की जाती, पर मैं तो हूँ कि जनता को यह कार्य करना चाहिए। जहाँ कहीं भी ऐसे धूर्तों का पता लगे ऐसी सुनें, उन्हें तुरन्त पुलिस में इसकी सूचना देना चाहिए

और में पुलिस का देना चाहिए। मैंने अक्सर देखा है कि लोग यथाशक्ति ऐसी को, बदनामी के भय से, छिपाने की कोशिश करते हैं, पर ऐसा कदापि न होना चाहिए।

प्रश्न—ख़ैर। विधवाओं की वास्तविक सहायता के लिए क्या उचित समझते हैं?

—मेरा तो ख़्याल है कि विधवाओं का यदि पुनर्विवाह कर दिया जावे तो इससे काफ़ी संख्या में विधवाओं की तकलीफ़ें घट सकती हैं, पर साथ ही विधवाओं के लिए जगह-जगह आश्रम खुलने चाहिए और उनका इन्तज़ाम बहुत ही माक़ूल होना चाहिए; और बाल-विवाह की कुप्रथा, जिससे हिन्दोस्तान को बेशुमार हानि हो रही है, जल्द से जल्द अवश्य रोकना चाहिए।

प्रश्न—भारत जैसे अन्धपरम्परा के चक्कर में पड़े हुए देश में -विवाह की प्रथा रोकने के लिए बहुत समय की ज़रूरत है। मेरा ख़्याल है कि इस प्रथा को रोकने में हमें तब तक सफलता कभी प्राप्त नहीं हो सकती, जब तक सरकार इसके विरुद्ध कोई क़ानून पास न करे। क़ानून पास हो जाने से अन्य नियमों की भाँति जनता इस आज्ञा का पालन अवश्य करेगी और तभी कुछ सफलता भी हो सकती है।

—पर सरकार धार्मिक मामलों में दख़ल ही क्यों देने लगी?

प्रश्न—अव्वल तो यह मामला बिलकुल सामाजिक है और धर्म से इसका सम्बन्ध ही नहीं होना चाहिए, पर यदि थोड़ी देर के लिए इसे धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप ही मान लिया जावे

तो लॉर्ड बेंटिक (Lord Bentick) ने विधवाओं का सती होना ही क्यों रोका था ?

उत्तर—वह और था और अब और है। यह बात उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य की है। उसके बाद सरकार ने और भी कई ऐसे क़ानून कर डाले थे, पर इसके पहले कि उन्हें असली जामा पहनाया जावे, सन् ५७ का बलवा हो गया और इससे सरकार बहुत डर गई। मैं तो समझता हूँ कि कोई भी विदेशी सरकार (Foreign Government) ऐसे म में हाथ न देगी।

प्रश्न—सन् ५७ से ज़माना बहुत बदल गया है। सभी लोग आज दिन बाल-विवाह को बुरा ने लगे हैं और जनता इस प्रथा को मिटाना चाहती है अवश्य, पर भिन्न-भिन्न जात-पाँत होने के कारण सभी लोग अपने-अपने वि के अनुसार काम करते हैं। हिन्दुस्तान की तो सभी बातें धर्म से मढ़ी हैं—" करना हिन्दुओं का धर्म है, गीला कपड़ा पहन कर भोजन धर्म है।" कहने का मतलब यह है कि इसी प्रकार वर्ष की बालिकाओं का विवाह कर देना भी 'धर्म' है। देखिए न, मुसलमानों के शासनकाल में उनके पापपूर्ण नेत्रों से बालिकाओं के सतीत्व की रक्षा करने के लिए धर्म-ग्रन्थों में नए श्लोक जोड़-जाड़ कर ही यह बात सिद्ध की गई थी कि बाल-विवाह धर्म है। क्योंकि उस भी विचारशील नेता इस को भली-भाँति जानते थे कि जब तक धर्म में कर कोई बात न कही जायगी, भारतवासी उसे मानने के लिए तैयार न होंगे,

और यह था भी ठीक। जैसा मैं पहले कह हूँ कि स्वभाव से अन्धवि ी और सरल हृदय होने के कारण जब तक भारतवासी किसी बात को धर्म अथवा क़ानून के जामे में नहीं देख लें उनको वि ही नहीं होता और वे उसे मानते भी नहीं।

उत्तर—यह तो ठीक ही है, पर तो इतना ही है कि यदि र ने कोई ऐसा क़ानून पास कर दिया तो कल ही एक बड़ा भारी आन्दोलन खड़ा हो । कि "हिन्दू-धर्म में हस्तक्षेप किया गया और इसकी रक्षा करो।" "Hindu Religion in danger" की घोषणा कर दी गी।

प्रश्न—यह बात तो हुई सरकार के क़ानून पास करने के सम्बन्ध में। मैं आपसे केवल यह बात पूछना चाहता हूँ कि किसी यदि ऐसा क़ानून पास हो जावे तो उससे -विवाह की प्रथा रुक भी ती है कि नहीं?

उत्तर—ज़रूर! इससे निस्सन्देह बहुत- लाभ हो है। पर इस विषय में स को दोषी ठहराना होगा। यह कार्य तो काउन्सिल के मेम्बरों का है। सरकार इन ों में बिलकुल दख़ल न देगी। स्वयं जैसा चाहें कर सकते हैं, पर मुश्किल तो यह है कि आम तौर से काउन्सिल के मेम्बर स्वयं ही ऐसे महत्व-पूर्ण सामाजिक मामलों से दि स्पी ही नहीं लेते। यदि वे चाहें तो बहुत-कुछ कर सकते हैं।

प्रश्न—यही तो मैं भी कहता हूँ कि यदि डॉक्टर गौड़ जैसे सुयोग्य मेम्बर लोग इन मामलों को उठावें और प्रस्ताव द्वारा

की नब्ज़ टटोल कर इन्हें कार्य-रूप में परिणत कर सकें तो बात की में बहुत कुछ हो सकता है।

उत्तर—मैं आपकी इस राय से बिलकुल सहमत हूँ।



पं० कृष्णाकान्त वीय विचार

विधवाओं के सम्बन्ध में पण्डित कृष्णाकान्त जी मालवीय, बी० ए०, सम्पादक "अभ्युदय" के विचार जानने के लिए 'चाँद' के ख़ास प्रतिनिधि ने उनसे भेंट की थी। आपके विचार भी हम प्रश्नोत्तर के रूप में नीचे दे रहे हैं :—

प्रश्न—विधवाओं के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं? उनका पुनर्विवाह कर देना आप उचित समझते हैं कि नहीं?

उत्तर—अवश्य। जो विधवाएँ विवाह करना चाहें उनके मार्ग में अड़चनें न होनी चाहिए। इसके साथ ही बाल-विधवाओं से, उनकी अवस्था और भविष्य जीवन पर ध्यान रखते हुए यह परामर्श देना कि वे अपना विवाह कर लें अनुचित न समझा जाना चाहिए।

प्रश्न—जो लोग अपने घरों की विधवाओं का पुनाववाह चाहते हैं, उन्हें समाज बुरी निगाह से देखती है। हमेशा ही ऐसे लोग, उचित समझते हुए भी, स के डर से अपनी कन्याओं का विवाह नहीं कर सकते। इस विषय में स का सुधार किस प्रकार हो स है?

उत्तर— ज को सुधारने के लिए कोई पथ नहीं बत-

लाया जा । को किसी विशेष मत को स्वीकार करने के लिए समय की आवश्यकता है। समाज ी अवहे के लिए कठिन से कठिन दण्ड देना । कर्त्तव्य स है। अपने सिद्धान्तों के लिए तैयार होवे, "क्या करें?" यह हमारी समझ में उठता ही नहीं। जिनमें आत्म-बल की कमी है या जो अपने सिद्धान्त के लिए कष्ट सहन करने को तैयार नहीं हैं, उनको बातचीत, व्याख्यान, पुस्तकों और लेखों द्वारा ज के मत में परिवर्त्तन करने की चेष्टा करनी चाहिए।

प्रश्न—जो विधवाएँ कुमार्ग के पथ में पड़ चुकी हैं मुस-नों या ईसाइयों के हाथ में पड़ चुकी हैं और अब पश्चात्ताप करती हैं, आप उन्हें फिर अपने ज में ले लेना उचित समझते हैं या अनुचित?

उत्तर—जो पवित्र जीवन व्यतीत करने को तैयार हों उन्हें फ़ौरन ले लेना चाहिए। प्रायश्चित्त के बाद ो में ले लेना सर्वथा उचित है, समाज में िलित होकर वे शीघ्र ही विवाहित जीवन कर लें।

प्रश्न—आप रोज़ ही देखते और सुनते होंगे कि धूर्त लोग स्त्रियों और ख़ास कर विधवाओं को भड़का कर दूसरे प्रान्तों में ले जाते हैं और उन्हें बेच कर बेजा फ़ायदा उठाते हैं, इ क्या इलाज हो है?

—विधवाओं को शिक्षा देना, उन्हें इस योग्य कि वे दुष्टों के बहकाने में न आ जावें—समाज का कर्त्तव्य है। समाज कर्त्तव्य करेगा तो कन्याओं और विध-

वाओं की बिक्री की समस्या इतने विकट रूप में न के ने न उपस्थित होगी।



स्वामी राधाचरण गोस्वामी के विचार

कट्टर सनातनधर्म के आचार्य वृन्दावन-निवासी श्रीस्वामी राधाचरण जी गोस्वामी महोदय के विचार :—

२९-३० वर्ष से बड़ी कॉन्फ्रेन्सें हो रही हैं। हज़ारों रुपए ख़र्च हो रहे हैं। हर एक जाति के नेता अपनी नोक-झोक में मस्त हैं! मामूली कामों में बहुत सी नुक़्ताचीनी करते हैं, पर विधवा-विवाह का नाम सुनते ही होश फ़ाख़्ता! हमारी जाति के लोग हमसे बिगड़ न जायँ, हमारा नेतृत्व न मारा जाय, इससे विधवा-विवाह का प्रकरण आते ही चुप! चुप! हमारी सभा न टूट जाय! भीतर से कुछ लोग विधवा-विवाह के सपक्ष भी हैं, पर क्या करें अन्धपरम्परा के तोड़ने योग्य साहस नहीं। न इतना बल, न स्वार्थ-त्याग! इन अनाथ विधवाओं का उद्धार भी बिना पूर्ण कष्ट उठाए न होगा। पानीपत की गौड़-महासभा में कुछ ग्रामीण गौड़ों ने अपनी विधवाओं को जाट-मुसलमान आदि के द्वारा नष्ट-भ्रष्ट होते देख कर, सभा से विधवा-विवाह की आज्ञा माँगी, पर सभा ने केवल चिकनी-चुपड़ी बातों में टाल दिया। दिल्ली में भटनागर कायस्थों की सभा में स्त्रियों की अर्ज़ी पेश हुई कि विधवा-विवाह की आज्ञा हो, परन्तु दाख़िल दफ़्तर! कब तक यह बहाना चलेगा?



पन्द्रहवाँ अध्याय

कविताएँ

अपने दुखड़े

[कविवर पण्डित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय]

(१)

देखता हूँ कि जाति डूबेगी,
है जमा नित्त हो रहा आँसू !
लाखहाँ बेगुनाह बेवों की—
से है घरों बहा आँसू !!

(२)

सोग बेवों का देखती वेला,
बैठती आँख, टूटती छाती !
जो न रखते कलेजे पर पत्थर,
आँख पथरा अगर नहीं जाती !!

(३)

ब्याह दी जायँगी न बेवाएँ,
कौन सिर पर कलङ्क ले जीवे !
नीच का घर बसा-बसा करके,
मूँछ नीची करें भले ही वे !!

(४)

सुन सकें गोहार बेवों की,
गले पर छुरी न हो फिरती !
हम गिरेंगे कभी न ऊँचे चढ़,
गिर गई मूँछ तो रहे गिरती !!

(५)

जाति कैसे भला न डूबेगी,
किस लिए दे खेवा !
जब नहीं सालती कलेजे में,
चार और पाँच की बेवा !!

(६)

दिन बदिन बेवा हमारी हीन बन,
दूसरों के हाथ में हैं पड़ रही !
बन रही हैं आँख का वहीं,
जो हमारी आँख में हैं रही !!

(७)

जब रख सके न बेवों की,
तब बि एँ वे !
घर बसे किस तरह हमारा तब,
जब कि घर और का ब वे !!

(८)

गोद में ईसाइयत इसलाम की,
बेटियाँ, बहुएँ कर हम लटे !

! घाटा पर हमें हुआ,

मान वेवों का घटा कर हम घटे !!

(६)

बेवा निकलने लग गई,

पड़ गया तो बढ़तियों का भी !

आबरू जैसा रतन जाता रहा,

खो गए कितने निराले भी !!

—'चाँद'



जग-निठुरई

[पण्डित श्रीधर जी पाठक]

सखिरी रीति बैरिनि भई।
प्रीति मान मृजाद की विधि मूल सों मिटि गई।
निरपराधिनि बालिका लघु बैस मृदु लरिकई।
ब्याहि राँड बनाइए यह कौन सी सुघरई।
जन्म भर त्रिय देह जारत बल कठिनई।
निबल प्रान सताइबे में, कहु कहा ठकुरई।
स्वार्थप्रिय पाषान सो हिय निपट शठ निरदई।
भयो आर्य अनार्य भारत कुमति मन में छई।
होय छिन छीन तन सहि आपदा नित नई।
मूद सर्वस खोय निज-हित-सीख नेक न लई।

विधवा-स्राप-वस यह भूमि पातक-मई ।
होत दुःख अपार सजनी निरखि जग-निठुरई ।

—'मनोविनोद' से



बाल-विधवा

[श्री० "विनय"]

(१)

कोमल कुसुम कली के ऊपर, क्यों निष्ठुर बिजली टूटी ?
स्वयं बाल-परिणय की आँखों से वह -धारा छूटी ?
किसका तारा सा टूटा है, भाग्य-जगत के नभ में ?
जिसकी जली चमक सी सजती, चिता-झपट, करुणा का साज ?
सदय-दिवाकर किस नलिनी का, आज सदा को हुआ ?
आज चन्द्रमा किस कुमुदिनि का, ग्रहण से ग्रस्त हुआ ?

(२)

औचक किसकी ऐंठ गई हैं, भावी आशाएँ अज्ञात ?
बाद -मधु के ही तप है, फिर है आँसू की बर !
में हाय ! खुल गए, सदा को किसके केश ?
किस जीवित पुतली में पाया है मुर्दे ने आज प्रवेश ?
किसे जलाने वाला है, आ करके यौवन का अङ्गार ?
आहों की बारूद भरी है, -हृदय का अनार ?
वि विधि के कोप में, हुआ सारा शृङ्गार ?
किसकी छाया शुभ-कार्यों में, हुई छूत की अब आगार ?

(३)

किसके लोचन बदन-श्री में, लगे हुए से दो अङ्गार ?
देख-देख कर जला करेंगे, कभी जगत का सौख्य-प्रसार ?
और जलावेंगे दर्शक-गण को पड़ उन पर र।
रह कर नित करते, व्यक्त वह्निमय हृदय-विकार ?
कि ी दृष्टि गिरेगी भू पर, खो करके आधार ?
खो देंगे किसके कटाक्ष हृद्-भेदन का अपना अधिकार ?
किसकी आँखों में दिखता है, हमको यह अद्भुत व्यापार ?
चरम-शुष्कता-मरु से ट आँसू का पारावार ?

(४)

छिपा आज किसकी बेफ़िकरी में चिन्ता का नीरागार ?
जिसकी सरल हँसी की सीपी में है जल मद-मुक्ताहार ?
रस-नायक की छाया भी छू नहीं सकेगा कि प्रेम ?
शारीरिक सुख से विरक्त होकर ही होगा कि क्षेम ?
किस दुखिया का हटा रहेगा सदा बाह्य दुनिया से ध्यान ?
हुई क्रूरता से समाज के नष्ट कौन बाला ?
देखेंगे चित्र में किस दुखिया के लोचन म्लान ?
देख-देख कर किया करेंगे मन में वह गत-मूर्ति विधान।

(५)

सुना करेंगे गत जीवन की गुण-गाथा ही किसके कान ?
किया करेगी कम्पित रसना, जिसके विगत गुणों का गान।
जीते जी ही किसे मिलेगा श्वेत वस्त्र का शव-परिधान ?
गूँजा सदा ी किसके मन में नीरव करुणा-तान ?

पारस के विपरीत धातु ने, किसका सोने का संसार,
    धन करके वैधव्य, बनाया आज लोहमय जगत अपार ?

(६)

जैसे शिशु हँस कर बढ़ता है, छूने को जलता अङ्गार।
    हँस कर श्वेत वस्त्र पहनेगी, रोएगा सारा संसार ॥
खसक गया है छोड़ अधर में, तुझे हाय ! तेरा आधार।
    अगर सार* होता तुझमें तो गिर कर हो जाती निस्सार ॥
रोती है इसलिए कि सुन्दर, चूड़ी फोड़ी जाती है।
    क्या समझे ! तेरे सुहाग की छाती तोड़ी जाती है ॥

(७)

हाय ! करेगा भाल न भूषित अब तेरा प्यारा सिन्दूर।
    रङ्ग चिरञ्जापन जीवन के नभ का होगा उससे दूर ॥
उसकी नील छटा भी होगी सतत मेघमाला का ग्रास।
    तारों की मृदु चमक न होगी, और न शशि का हास्य-विलास ॥
हाय जलाया सदा करेगा, तुझे चन्द्रमा का आभास।
    उषा और सन्ध्या सखियाँ होकर भी देंगी तुझको त्रास ॥
ऋतु-पति का स्वागत करने को, मुग्ध प्रकृति का नूतन साज।
    तेरे मन की मरुस्थली में, ला देगा निदाघ का राज ॥

(८)

तारे छेद करेंगे उर में, प्रभा करेगी तमः प्रसार।
    शीतल पवन स्वेद लावेगा, झुलसावेगा चन्दन सार ॥

---

* भार, समझ।

पवन, , स्तिक, कोइलियों की कूक रसाल।
जगाती, हूक उठाती, हुई हृदय में होंगी ॥
शोभा, सुख-विकृति का देगी उपहार।
हरियाली हर लेगी सुख-श्री कर पीला अन्तर्संसार ॥

(९)

कर घन उथित कर देंगे मन में हाहाकार।
चमक- कर मन में, चिलक उठावेगी हर बार ॥
इन्द्रधनुष को देख आँख में, सुख पर रङ्गों का ।
वर्षा की रिमझिम में आँसू, उमड़ पड़ेंगे बार ॥
करेगी जुगनू की, मन में चिनगारी का ।
कूक मोरनी की करती दो टूक हृदय को, होगी पार ॥
हिलती हुई अधखिली कलियों पर भौरों की मृदु गुञ्जार।
देगी नस-नस में, दहक उठेगा तृष्णा-भाण्डार ॥

(१०)

शशि से देख निशा का मिलना, करके तारों से शृङ्गार।
तुमसे आ चै मिलेगा, पहने रों का हार ॥
सागर को ज्योत्स्ना में, स्नात-सरित का स्वच्छ ।
देख, हृदय पर बह जावेगा, द्रव लपटोंमय अन्तर्दाह ॥
देख घन की गोदी में, चपला का सानन्द विहार।
अन्धकार से भरे हृदय पर, होगी तड़ित व्यूह की मार ॥
देख नई वधुओं की व्रीड़ा, प्रौढ़ा का स्वच्छन्द विलास।
मुग्धाओं की न क्रीड़ा, पीड़ित होंगे नयन उदास ॥

(११)

नाव पर देख सकुचमय, पति-पत्नी का सलिल-विहार।
छूटेगा तेरे हाथों से, जीवन-नौका का पतवार॥
देखेगी सर में ललना-गण की ब्रीड़ामय जल-क्रीड़ा।
निकल वहीं कमलों से तेरे, मन को खाएगा कीड़ा॥
देख-देख फूले फूलों को, स्थिर मन कुम्हला जाएगा।
उन पर बिखरी देख ओस, दृग रुधिर-बिन्दु टपकाएगा॥
देख शरत्शोभा का आना, दिल मुँह को आ जाएगा।
रङ्ग-बिरङ्गा देख गगन को, मुँह का रँग उड़ जाएगा॥

(१२)

सुन कर मत्त खगों का गाना, तुझको रोना आएगा॥
देख मौज से उनका उड़ना, मन तेरा उड़ जाएगा॥
बहते देख नदी मन करुणा-धारा में बह जाएगा।
झरनों की झर-झर सुन कर, वह हहर-हहर रह जाएगा॥
देख मीन की केलि हृदय पर, लोट साँप-सा जाएगा।
देख सुखी पशुओं की क्रीड़ा, मानस पीड़ा पाएगा।
मन्द की मृदु सर-सर से, वह थर-थर कँप जाएगा।
अर्द्ध निशा के झन्नाटे से, सन्नाटे में आएगा॥

(१३)

देख झूलना पत्तों का मारुत-लहरों के झूलों में।
मन झूलेगा झूले के अनुरूप गुण-ग्रथित शूलों में॥
दिन में देख को विकसित, मन होगा सङ्कुचित नितान्त।
देख कुमुद के दृग खुलना निशि में दृग होंगे बन्द अशान्त॥

किन्तु देख कर देह जीव के, किया करो मन में सन्तोष।
सूखी हुई नदी को देखो, नहीं ीं पर विधि का रोष॥
दिन को दशा कुमुद की देखो, और का निशि में ।
एक तुम्ही को नहीं फँसाए है कितनों को दुख का ॥

(१४)

साँझ सवेरे सूर्य-चन्द्र की, महिमा का देखो ान।
तम का शोक-वस्त्र पहने वसुधा का देखो मुखड़ा म्लान॥
देखो कोयल का दुखियापन, जब बौरें हों नहीं रसाल।
एकाएक सूखता देखो, कोई मीन-वृन्द का ॥
देख प्राणियों को कितने ही, कतिपय दुःखों से न्त।
एक ही अपने दुख को, तुम हो जाओ कुछ तो ॥
दुष्पति के दुर्व्यवहारों से, का भी विधवापन।
देख- कर सोचो समझो, तनिक उठाओ ा मन॥

(१५)

फिर देखो दुनिया के सारे सुख हैं कैसे क्षणिक नितान्त।
कभी चार दिन भी रह पाता, कहीं एक रस कोई ?
आते-जाते ही रहते हैं, सुख-दुख एक-एक के बाद।
रक्खेगा आह्लाद मूल्य क्या, जो होगा ही नहीं विषाद?
इस पर भी सन्तोष न हो तो, फैले हैं आशा के हाथ।
उससे मिल जाओ, पाओगी, जन्मान्तर में पति का साथ॥

—'चाँद'

✱

अबल वि वा

[श्री० "विक्रम"]

(१)

हरे चन्द्र ! तू क्यों करता है, मुझ पर अत्याचार ?
सह न सकूँगी तेरी शीतल, वि का मैं कोमल भार !!
तेरी सुधामयी किरणें हैं, वि तीरों की बौछार।
लम्पट पुरुषों के सम तू, क्यों करता है गर्हित व्यवहार ?

(२)

विराग के श्वेत- पर, उठे न क्या श्रद्धा के भाव ?।
क्या इन -हीन पर, हुआ न करुणा-रस का
इस सेंदुर-हीन माँग पर, तुझे न आई चाँद ?
क्या मेरे बिखरे बालों पर, तूने न खाई चाँद ?

(३)

इस बिन्दु-विहीन भाल को, देख नहीं तू चाँद ?
मुझे दे किस धोखे से, मेरे ढिग तू चाँद ?
आदि काल से देख रही हूँ, कलुषित तेरा कोमल अङ्ग।
क्या ईर्षा से प्रेरित होकर, मुझे लगाएगा "अकलङ्क" ?

(४)

हाय ! विवशतः होता है मेरे तन में रोमाञ्च।
किसका पाहन हृदय न पिघला देगी तेरी मधुमय आँच ?
हरे निर्दयी ! किस अनर्थ का है तू आयोजन।
किस अनिष्ट की ओर खींचे जाता है तू मेरा मन ?

(५)

दौड़ो ! बल लेकर हे स्मृति के पावन दूत !
टूट न जाए , खाकर मर्यादा का कच्चा सूत ॥
तितर-बितर होती आती है संयम की सारी सेना ।
इस दुर्बल मानस के कारण मुझे न फिर गाली देना ॥

(६)

अखिल-प्रकृति की प्रबल शक्तियों से करती हूँ मैं संग्राम ।
कब तक रमणी की लज्जा का व्यूह सकेगा रिपुदल थाम ?
बच न सकूँगी उच्चादर्शों के इस सूक्ष्म-कवच की ओट ।
सह न सकेगी ख़्याली बख़्तर व्यवहारिक शस्त्रों की चोट ।

(७)

मानस-सर में रह कर मुझको है जल-कण छूना भी पाप ।
-कुण्ड के बीच बसूँ पर, लगे न मेरे तन को ताप !
हरे-भरे उपवन में रह कर है निषिद्ध फूलों का वास ।
मधुर रसीले इन अधरों पर कभी न वाञ्छित सुखमय हास ॥

(८)

है विकसित यौवन, पर दूषित है मादकता का सञ्चार ।
बहती वेग की आँधी, पर वर्जित है मुझे बयार ॥
धार में फेंक दिया, पर दिया न बहने का अधिकार ।
डूब मरने पाती मैं, तो भी हो निस्तार ॥

(९)

कैसे देवी बन सकती हूँ भगवन् ! इन असुरों के बीच ।
जिधर निकलती उधर छेड़ते हैं, कुत्सित मन वाले नीच ॥

किया विधाता ने नारी को पुरुषों पर आश्रित निर्माण।
यदि आश्रयदाता धोखा दे, हो किस विधि अबला का त्राण॥

(१०)

हे भगवन्! दो इन पुरुषों को निज मर्यादा का सम्मान।
या वह बल दे जिससे, अपने कर से हो अपना कल्यान॥
विधवापन की जो महिमा का करते हैं गौरवमय गान।
वही चलाते हैं क्यों उन पर मतवाले नयनों के बान?

(११)

उच्च शिखर से विश्व-प्रेम का जो हमको देते उपदेश।
वही हमारा मन हरने को धारण करते नाना वेष॥
धृष्ट कुटिल भ्रमरों से घिर कर, रहे अछूता क्योंकर फूल?
कब तक पौधा जी सकता है, पाकर जल-वायू प्रतिकूल?

(१२)

उठें न क्योंकर प्रलोभनों से उत्तेजित हो मनोविकार।
सुस्थिर सर में भी झोंकों से उठे न क्यों लहरों का तार?
मनोवेग की रगड़ मिटा देती है अस्फुट-स्मृति का दाग़।
मोह की आँधी में बुझता विवेक का मन्द चिराग़।

(१३)

जो बहिनें इस कठिन परीक्षा से निकला करतीं बेदाग।
त्रिभुवन का स्वामी करता है उनके चरणों में अनुराग।
सीता, सावित्री का सत् भी, है उनके चरणों की धूल।
स्वयं विधाता उन्हें चढ़ाता, है अपनी श्रद्धा का फूल॥

(१४)

मुझ दुर्बल-हृदया को दुर्लभ है वह दैवी पदाधिकार।
यद्यपि लज्जा-वश न करूँगी खुल कर दुर्व स्वीकार॥
पर तुमसे क्या छिपा हुआ है, हे समाज के चतुर सुजान!
कर सकते हो सहृदय होकर मेरे भावों का अनुमान!

(१५)

यदि निर्बल को घृणित समझ कर जाने दोगे उसकी राह।
अधः के साथ उसी के होगी सारी सृष्टि तबाह॥
कर निर्बल का त्याग न होगा केवल सबलों का उत्कर्ष।
लेकर डूब मरेगी अबला, सबला के ऊँचे आदर्श!!

(१६)

हे ज! यदि तुझको दुनिया में रखना है ऊँचा माथ।
तो आगे बढ़ जीवन-यात्रा में विधवा को लेकर ।
उच्चकोटि की विधवाओं का कर देवी-सम तू न।
अधम कोटि को समझ मानवी, रच दे उनके योग-विधान॥

—'चाँद'

स्वर्गीय प्रीतम के प्रति

[श्रीमती विमला देवी जी]

(१)

पता नहीं तुम क्या करते हो, स्वर्गलोक में ?
करते हो विरह-व्रत न, या परियों के सङ्ग विहार?

करते थे अद्वैत हृदय से, हा ! प्रियतम, तुम मुझको प्यार ।
फिर भी यों शङ्का करना हा ! हन्त !! मुझे सौ-सौ धि !

(२)

पर जो कुछ मैं देख रही हूँ, जग में पुरुषों के व्यवहार ।
उससे अनायास उठते हैं, मन में शङ्का के अविचार ॥
एक प्रेयसी से ख़ाली जो, आज हुई प्रियतम की गोद ।
अन्य प्रियतमा उसमें आकर, कल करती है मनोविनोद ॥

(३)

प्रथम प्रेयसी के विछोह में, आज बहे नैनों से नीर ।
लगी दूसरी के हित हा ! पति—को, कल पुनर्व्याह की भीर ॥
यदि वसुधा में पुरुष-जाति के, क्षणिक प्रेम का है यह हाल ।
तो सुनती हूँ स्वर्गलोक में, सुन्दरियों का नहीं अकाल ॥

(४)

हा ! मेरे मन में उठते हैं, क्यों ईर्षा के कलुषित भाव ?
किन्तु कहाँ मेटा जा सकता, मानव-हिय का सहज स्वभाव ?
आत्मा के अनन्त जीवन-हित, जिसको अपनाया इक बार ।
अखिल विश्व में जिसे समझतीं, हम अपनी सम्पति का सार ॥

(५)

पञ्चभूत में मिल कर भी, जो नारी-जीवन का आधार ।
क्या उस पति पर तनिक नहीं है, हम पत्नीगन का अधिकार ?
रुष्ट न होना प्यारे प्रियतम ! सुन कर मेरे नए विचार ।
निशिवासर-सा साथ लगा है, कर्तव्य के पीछे अधिकार ॥

(६)

प्यारे पति का हृदय छोड़ कर, जिस का स्थान न और !
हा ! उससे भी वञ्चित होकर, कहाँ उसे त्रिभुवन में ठौर ?
मुझे दो ाय यदि, बना हुआ मेरा वह ।
तो मैं इस वैधव्य-क्लेश को, समझूँगी तृणमात्र समान ॥

—'चाँद'

विधवाएँ

[श्री० अनूप शर्मा जी, बी० ए०]

[चौपदे]

(१)

थी बदी भाग्य-हीन भारत की, इस हाय ! दुर्गती होना ।
इन दुराचार के ों से, श्रेय था अग्नि में सती होना ॥

(२)

देश की ये असंख्य विधवाएँ, बालिकाएँ विदीर्ण-हृदय-सी ।
रो रहीं फूट-फूट कर दिल में, की बनीं दासी ॥

(३)

हाय ! इनके जले कलेजे से; पूछिए तो भला इनकी ।
कौन सहृदय न कह देगा, 'हो रही दुर्दशा वृथा इनकी ॥'

(४)

हो गया भाग्य सङ्कुचित जैसा, हो है क्षीण बदन वैसा ।
, बहू बनी विधवा, हो जहाँ, स्वाँग है सदन कैसा ?

(५)

विश्व भर की असीम इच्छाएँ, हृदय में जिस उछलती हैं ?
ये बिना भाग्य के विधाता के, भाल को ठोंक, हाथ मलती हैं ?

(६)

कामिनी, ये अस्वामिनी होकर, मारतीं चित्त कर डाढ़ें।
सारा ज हो जावे, चित्त से आह ! आह ! जो काढ़ें ॥

(७)

माँग है शून्य, स्वल्प इच्छा है, की चूड़ियाँ चढ़ीं दो ही।
देके छीना कठोरता द्वारा, ईश लोभी हुआ महा द्रोही ॥

(८)

प्राणेश जो जाते, पूजती बैठ व्यर्थ ब्रीड़ा क्यों ?
बुद्धि विपरीत है विधाता की, आँख फोड़ी, हरी न पीड़ा ?

(९)

सारे जग से वियोगिनी बन कर, नारियाँ—वीतराग कैसे हों ?
भक्ति का हेतु ही नहीं उनके, युग नहीं, योग-याग कैसे हों ?

(१०)

जिनके हों वे तहा डालें, जिनके हो धैर्य वे ढहा डालें।
नेत्र को फोड़-फोड़ कर अपने, जितने आँसू हों, वे डालें ॥

—'चाँद'

विधवा-विनय

[श्रीयुत "किरीट"]

हाय विधाता ! उठा लिया क्यों, तुमने मेरा जीवन-धन ?
सुना, सदा हित ही करते हो, है यह कैसा हित-साधन ?
विधि, मैं तुम्हें पूजती थी नित, चढ़ा-चढ़ा कर कितने फूल ?
तुमने मन में चुभा दिए, चुन-चुन कर उनके सारे शूल !
इस वियोग के द्वारा ही क्या, देना है अनन्त संयोग ?
याकि परीक्षा है की, 'विधवापन' है 'अग्नि-प्रयोग' ?
वह कैसा कमनीय कुसुम है, लगा हुआ जिसमें यह शूल ?
है तो नहीं तुम्हारी, बोलो, विधि यह कोई भारी भूल ?
निष्ठुर ! कर रहस्य, कुछ तो कम कर दो मन का भार ।
लिए हुए हूँ अभी तुम्हारे लिए, एक अन्तिम उपहार ॥
मत बोलो, प्रतिकूल स्वयं हूँ, यदि तुम मुझसे हो प्रतिकूल ।
तुम्हें न दूँगी फटे हृदय का, भुवन-पूज्य यह वि फूल ॥

—'चाँद'

विधवा

[श्रीमती महादेवी जी वर्मा]

(१)

क्यों व्याकुल हो, विरहाकुल हो, शोकाकुल प्यारी भगिनी ?
सन्तापित हो, अविकासित हो, सर-भारत की न्यारी नलिनी ?

(२)

आशा नहीं, अभिलाप नहीं, निस्सार तुम्हारे जीवन में !
क्यों तोप नहीं, परितोप नहीं, निर्दोष दुखारे जीवन में !!

(३)

पावनता की पूर्ति अहो, मृतप्राय हुई वैधव्य हनी।
कल्लोत्पादक मूर्ति लखो, अति दीन हुई दुखरूप बनी ॥

(४)

हा हन्त ! हुई यह दीन दशा, फिर स्वार्थ दबी दुर्दैव छली।
नव कोमल जीवन की कलिका, हा सूख चली दिन पूर्ण खिली ॥

(५)

अम्बर तन जीर्ण मलीन खुले, कुच रुक्ष हुए शृङ्गार नहीं।
मधुराधर पै मुसकान नहीं, उर में आशा-सञ्चार नहीं ॥

(६)

अश्रु-भरे नयनाम्बुज में, दीना-कृत है तन क्षीण अहो।
लख कर तव दीन दशा भगिनी, है कौन, धरे जो धैर्य कहो ?

(७)

तुमने क्या कण्टक ही आकर, इस जग-उपवन में पाए हैं।
नए मुकुल तव आशा के कैसे, हा ! हा ! मुरझाए हैं !

(८)

जला मनोरथ कञ्ज दिया हिम, वैधव ने क्या मञ्जु खिला !
हृदय हुआ मरु-भूमि गया, सिन्दूर साथ सौभाग्य चला !!

(९)

प्रकृति-विपिन की कलिका हो, तुम पुत्री भारत- की।
प्यारी आर्य कुमारी हो तुम, सृष्टि पुनीत विधाता की॥

(१०)

शान्ति सौम्यता की प्रतिमा, तुमने थी अपनाई।
सुविचारों ने सद्भावों ने, उत्पत्ति तुम्हीं से थी पाई॥

(११)

स्वार्थ-अन्ध, स्वेच्छाचारी, पुरुषों ने किन्तु सताया है।
हृदय-हीन निर्दय हो, तुमको अवनत दीन बनाया है!!

(१२)

जब तुम थी निर्बोध मृदुल, कलिका ही जीवन-डाली की।
करती मधुर विकास मधुर, प्यारी रचना थी माली की॥

(१३)

शैशव में ही प्रिय स्वजनों ने, तुमसे कैसा बैर लिया।
-अर्थ-अनभिज्ञ बालिका, का विवाह अविचार किया॥

(१४)

भाग्य-चक्र ने उस पर तुम पर, किया घोरतर ।
उजड़ गया सौभाग्य दीन का, बिगड़ गया सुखमय ॥

(१५)

होकर बाध्य पड़ी हो, कठिन आपदाएँ लेनी।
ज्वालामय संसार-कुण्ड में, पड़ी जीवनाहुति देनी॥

(१६)

किया किसी ने दोष और, प्रतिफल ऐसा हमने पाया।
नहीं किसी को किन्तु तुम्हारा, मुख-दर्शन भी अब भाया॥

(१७)

करके सेवा-वृत्ति र की, जीवन धारण ी हो।
होकर कुमति अधीन कभी फिर, पद कुपन्थ में धरती हो॥

(१८)

ध्यान न देते किन्तु अहो, निद्रित हो सारे ा।
लज्जा पाते नहीं, नहीं, बनते अबलाओं के त्राता॥

(१९)

स्वयं साठ के होने पर भी, विषय-वासना से जलते।
प्रिया-वियोग कठिन लगता है, मरघट के मग में चलते॥

(२०)

पाके किसी नवल कलिका को, वृद्ध-भ्रमर! हरपाते हो।
होगा क्या भविष्य कलिका का, नहीं ध्यान में लाते हो॥

(२१)

विधवाओं, अबलाओं ने है, किया कौन अपराध अहो!
ी अवनति देख तुम्हें क्यों होता है आह्लाद कहो?

(२२)

दीन हुई, श्रीहीन हुई, मँझधार बही भव-सागर में।
आधार गया, सुख-सार गया, और आश रही में॥

(२३)

देशबन्धु यदि नहीं कभी तुम, इनकी ओर निहारोगे।

देव-पीड़िता विधवाओं का, दारुण कष्ट निवारोगे।

(२४)

पाप-मूर्ति बन जाएँगी, हैं जो पावनता-मूर्ति अभी।

तुम भी होगे हीन, नहीं पाओगे उन्नति, कीर्ति कभी॥

—'चाँद'



विधवाओं की आ

[श्री० 'बहादुर']

(१)

सावधान! पाण्डित्य परम प्रकटाने ो!
कर पुरोहिती-धर्म, धर्म बिनसाने वालो!!
बाल-विवाह करा कर, कुछ न लजाने वालो!
गणना विधवाओं की सदा बढ़ाने वालो!!
सँभलो बड़वानल बनी, विधवाओं की आह है!
इन आहों की दाह में, भला कहीं निर्वाह है!!

(२)

सुन विधवा की आह आसमाँ हिल जाता है,
और कलेजा सहृदय का मुँह को आता है,
क्रूर हृदय पर नहीं तनिक भी शर्माता है,
कौन नहीं कुत्सित कर्मों का फल है?

फलतः हो सकता नहीं, कुछ भी जाति-सुधार से ।
विधवाओं की वेदना, औ आहों की मार से ॥

(३)

सनातनी हो तो नियोग मत करो कराओ,
पर झट बाल-विवाह-प्रथा का नाम मिटाओ,
प्रौढ़-विवाह कराय वीर सन्तति उपजाओ,
नृतप्राय मत दिव्य जाति का नाम धराओ,
यत्न करो अब वह सन्ते, निज अदम्य उत्साह से ।
जिसमें हो न विकल महा, विधवाओं की आह से !

(४)

बाल-ब्याह कर वंश न जो निर्बल उपजाते,
प्लेग महामारी न हमें यों चट कर जाते,
कभी विपक्षी मनमानी हमको न सताते,
बतलाते हम उन्हें हमें जो हवा बताते,
सब अनर्थ का मूल बस, विधवाओं की आह है ।
ध्यान इधर भी दें जिन्हें, देशोन्नति की चाह है ॥

—'चाँद'

फ़रियादे विधवा

[श्री० मोहनलाल जी मोहियाल]

(१)

दुख-दर्द सहती हूँ, ग़मों से नीमजाँ होकर ।
टपकते ख़ून के आँसू, इन आँखों से रवाँ होकर ।

सिधारे त, डेरा जमाया पास हसरत ने।
बिसारी सुध गुलिस्ताँ की, उन्होंने बाग़बाँ होकर।

(२)

ससुर ससुराल ने त्यागा, व ताने दे करें ।
हुई दूबर हूँ मैके में, मुफ़्त बारे गिराँ होकर।
न पुरसाँ हाल है कोई, न दुख और दर्द का साथी।
सुनाएँ किसको ग़म अपना, जो पूछे मेहरबाँ होकर?

(३)

बुलावे जो कोई हमको, बराबर पुत्र या भाई।
वह ख़ुद-बदनाम होता है, हमारा पासबाँ होकर।
किया मोहताज क़िस्मत ने, ग़ज़ब की बेबसी डाली।
ज़मीं लरज़े फ़लक काँपे शफ़क़ से ख़ूँ-फ़िशाँ होकर।

(४)

हज़ारों रहतीं, हमारे ताक में म।
डुबाने के लिए अस्मत, हमारी बेइमाँ होकर।
ग़रज़ रुसवाई है हरसू, तलख़ जीना हुआ अपना।
न मिलती मौत भी माँगे, है डरती बेगुमाँ होकर।

(५)

पछत्तर वर्ष के रण्डवे, हैं शादियाँ देखो!
मगर हम सितम सहती हैं, ख़ुर्द-साला जवाँ होकर।
गुज़रती दिल पै जो-जो है, दिल ही सहता है।
मज़े से ऐश करते हो, मरें हम नातवाँ होकर।

(३)

तुम्हें तो नींद प्यारी है, हमें अख़्तर शुमारी है।
निकलती फ़ाक़ों से, बेहालो रायगाँ होकर।
ग़रज़ मजबूर हो 'मोहन' धरम से, गिरती जाती हैं।
मिटा देंगी तुम्हे ऐ क़ौम, ईसाई मुसलमाँ होकर।

—'विधवा-सहायक'

एक बेवा की फ़रियाद

[श्रीयुत 'फ़िदा,' बी० ए०]

(१)

हिन्दुओ तुमको अगर कुछ भी दिखाई देता,
धर्म पर नालः मेरा यों न दोहाई देता।
मैं वह बेकस हूँ कि जुज़ नालः कोई काम नहीं,
दर्द होता तो तुम्हें भी वह सुनाई देता।

(२)

तीरे बख़्ती से शबे ग़म है भयानक ऐसी,
हाथ को हाथ नहीं इसमें सुझाई देता।
इस मुसीबत की ख़बर होती जो पहिले मुझको,
मैं न लेती जो ख़ुदा साथ ख़ुदाई देता।

(३)

इससे बेहतर तो यही था कि ख़ुदा के हाथों,
माँग लेती जो मुझे मौत बन-आई देता।

कौन से जुर्म में गर्दानी गई हूँ रिम,
और, तो और तसल्ली नहीं भाई देता ?

(४)

फूल से मिलने की उम्मीद जो जाती रहती,
कौन बुलबुल को सरे नग़मे सराई देता।
मेरे गुलशन को भी मकलूस बिहारी मिलती,
काश आहों का मेरा बख़्त रसाई देता ?

*

ऐ 'फ़िदा' ग़म में न वि एँ ों घुलतीं,
क़ैदे-ग़म से जो इन्हें कोई रिहाई देता।

—'चाँद'

समाप्त